

भासनाथ श्री रत्नानाथ ( प्रा ) जर्म महानुभवे गपांगपि पण्डितप्रवरैः  
परिविलोकनेन पादितप्रपि सुदणे कृतौ मुजफ्फरपुर राजकीय  
महा पाठशालाया मठवापनस्य परवशतया मया कदाचिदिहत्यछत्य  
वित्तप्रमान मानसत्वेन कदाचिदसीपशीघ्रता विवरीकृतत्वेन, कदाचिदधिष्ठिति विधेः प्रातिकुल्या दाधारपत्रपत्तेन, कदाचिदवधानेन  
संशोधनकर्मतां यथासमुचितं नेतुं नापारि । तथापि प्रकृति सुहृदः  
सदयहृदयाः सहृदयाः संशोधयन्त एव यमेनान्तर्याम् सकृदपिट्ठिष्ठि  
दानेन पदीय अपद्रुमं सफलयिष्यन्त्यात्मायते, उपहृतिथोक्त-  
महानुधावाना प्राजन्म न विस्मिष्यते इन्द्र्यलम् ।

बाहुष्णिमिश्रः



# समर्पणम् !

तदेतन्नव्यकाव्यकुसुमं विविधविशदावलीविराज  
मान मनोन्नत महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह  
(वहादुर जी. सी. आह. ह.) कनिष्ठ धर्मपत्न्याः  
प्रतीत सुकृत कीर्ते श्री ५ लक्ष्मीश्वरी देव्याः पादयो  
र्भया समर्प्यते, प्रार्थ्यते च तदीग गङ्गल मनङ्गा-  
सतिरिति ।

वालकृष्णमित्रस्य





# लाजीश्वरीनिति प्रधान दिप्याला लक्ष्मीपत्रम् ।

|                      | दिप्या: | पृष्ठां: |
|----------------------|---------|----------|
| प्रधान चर्चा—        |         |          |
| स्वर्णादिप्य         |         |          |
| स्वर्णी-हर्षीया      | १५      |          |
| स्वर्णादिप्य         | २५      |          |
| स्वर्णादिप्य         | ११      |          |
| स्वर्णादिप्य         | ११      |          |
| स्वर्णादिप्य         | ११      |          |
| स्वर्णादिप्य         | ५०      |          |
| स्वर्णादिप्य         | ७५      |          |
| स्वर्णादिप्य         | ६१      |          |
| स्वर्णादिप्य         | ६६      |          |
| स्वर्णादिप्य         | ८५      |          |
| स्वर्णादिप्य         | ९१      |          |
| अरण्यान्याः          | ९८      |          |
| स्वर्णादिप्य         | १००     |          |
| पर्यायाः             | १०१     |          |
| काष्ठमप्स्य          | १०१     |          |
| ट्यार्णीदस्य         | १०५     |          |
| द्वितीयोच्छवासे—     |         |          |
| जिह्वादिप्य          | १०७     |          |
| पुरस्य               | १०९     |          |
| दाखिणशितिपाय         | " "     |          |
| सन्ध्यायाः           | " "     |          |
| स्वदनस्य             | " "     |          |
| द्युदनपाषगोविन्दयो   |         |          |
| इत्यादिप्य           | " ११३   |          |
| भीरस्य               | " ११५   |          |
| शोकस्य               | " ११६   |          |
| निर्विदस्य           | " ११७   |          |
| दत्तस्वदेशस्य        | " ११९   |          |
| राजगृहेगोविन्दगमनस्य | , १२०   |          |
| प्रभातस्य            | १२०     |          |
| शजगोविन्दाद्यापयोः   | , ०१२   |          |
| द्वितीयोच्छवासे      |         |          |
| सन्ध्यायाद्यर्णानम्  | १२६     |          |
| प्रभातस्य            | १२७     |          |
| कृष्णस्य             | १२८     |          |
| जगन्नाथपुर्ण्याः     | १४१     |          |
| भुवनेश्वरस्य         | १४५     |          |
| सन्ध्यायाः           | १४६     |          |
| गोविन्दतनयानाम्      | १४८     |          |
| बसन्तस्य             | १५१     |          |

( २ )

| पदार्थः   |       | प्रया-  |
|---|-------|---|
| „ प्रभातस्य   | „     | प्रभातस्य   |
| „ कौटिल्याः   | „     | कौटिल्याः   |
| „ वर्गनगरस्य  | „     | वर्गनगरस्य  |
| „ भागपन्दितस्य  | „     | भागपन्दितस्य  |
| „ देवनाथोशायनस्य  | ,     | देवनाथोशायनस्य  |
| „ प्रभातस्य   | „     | प्रभातस्य   |
| „ कामाख्यायाः   | „     | कामाख्यायाः   |
| „ ग्रीष्मस्य  | „     | ग्रीष्मस्य  |
| „ वृद्धापतिसन्ततीन् सु,                                     | २७०   | वृद्धापतिसन्ततीन् सु,                                     |
| „ जन्मभूति परिणयं—<br>यायत् श्री ३ लक्ष्मीश्वरी—<br>देव्याः | , २७१ | जन्मभूति परिणयं—<br>यायत् श्री ३ लक्ष्मीश्वरी—<br>देव्याः |

उत्तरी विवरणी समाप्ती विषयानी वा निरुपिता सुहृत्याकानानुस्त्रियं विषय विषयाणां  
वर्द्धापन् ।

|        |                           |
|--------|---------------------------|
| विवरणी | शरविष्टद्वये              |
| विवरणी | न वर्णेताः प्रदित्पापन-   |
| विवरणी | दामनम्                    |
| विवरणी | परिवक्षावन्ते रक्षेऽन्वयः |
| विवरणी | भन्मावद्युपलम्            |
| विवरणी | द्वनुगामदय त्पलम्         |
| विवरणी | त्रः                      |
| विवरणी | द्वन्त्यत्पलम् । एकणम्    |
| विवरणी | श्रुत्यतु गीतस्य ..       |
| विवरणी | इत्प्याह्नप्राप्तस्य ..   |
| विवरणी | पाघुट्येऽप                |
| विवरणी | भसादरय ..                 |
| विवरणी | गुणस्य                    |
| विवरणी | युक्तिः                   |
| विवरणी | वितिः                     |
| विवरणी | गीतिका                    |
| विवरणी | भग्नाः                    |
| विवरणी | ख्यक्तम्                  |
| विवरणी | परिणापः                   |
| विवरणी | वाच्यावस्तुत्येशा         |
| विवरणी | सन्देशः                   |
| विवरणी | विरोधाभासध्वनिः           |



|                              |                    |
|------------------------------|--------------------|
| दद्यत्वम्                    | पदसंदिग्धत्वम्     |
| काव्यष्ट्रणम्                | न्यूनत्वम्         |
| दर्पणकारमतनिरागः             | शमः                |
| विदेशः                       | षुन्दरीवृत्तम्     |
| समाख्यिः                     | भेषोऽवद्वारः       |
| ममता                         | वैश्वराम्          |
| परिकरास्त्वरः                | पृष्ठादशास्त्रम्   |
| अधर्णन्तरसङ्कुमितनान्यज्ञनिः | मोक्षोपयोगिपदार्थः |
| प्रसृतास्त्वरः               | देवताकुतिगणनम्     |
| गार्दुल विक्रीटितम्          | पूजप्रकृतिः        |
| गणः                          | योगान्तरायः        |
| घोक्रियः                     | जातिगणनम्          |
| पनोऽकल्पता                   | संख्यात्वयः        |
| प्रसक्तम्                    | अभिधामूलदण्डना     |
| हृष्टरेतर्कः                 | आगमविरोधपरिर्दितः  |
| आदतदिसर्गता                  | अप्यूपत्व नियमादम् |
| दिभावना                      | प्रसाणारप्यत्वम्   |
| आयुः                         | दितप्ता            |
| दीपकम्                       | विद्यि             |
| अतिशयोत्तिः                  | साराद्वागदीर्द्वाग |
| क्षितिगमयः                   | आपेक्षितिः         |
| एनरक्तदापामः                 | देशार्थिता         |
| उदाचम्                       | दर्शणो इन्द्रियता  |
| त्यापारः                     | अद्यताणामानद्      |
| स्त्रम्भ                     | स्त्रद्वयमता       |
| स्त्रेष्ठिः                  | साहित्य उत्तमा     |

( ४ )

|                      |                                |  |
|----------------------|--------------------------------|--|
| अग्निः               | जगदध्यामः                      |  |
| ब्राह्मणस्थ एवनिषेधः | ब्रह्मणोऽविद्याश्रयत्वम्       |  |
| ,, विजपा निषेधः      | “अवाद्युपनसगोचरंसनसैवा         |  |
| उल्लेखः              | नुद्रष्टव्यमित्येतयो विरोधः    |  |
| साङ्कृकर्यम्         | परिधारः                        |  |
| गोत्रस्त्वलक्ष्म     | ईशाङ्गपद्मम्                   |  |
| केन्द्रस्थानम्       | शुक्रस्तम्भोपायः               |  |
| उच्चनीचस्थानम्       | चूलिका                         |  |
| वाहुलक्षम्           | ग्रहमैत्री                     |  |
| वाचिरुजपः            | संशयात्मिकानुमितिः             |  |
| षट्कर्म              | शून्यवादः                      |  |
| महायज्ञपञ्चकम्       | विषयाणांसङ्कलनेन संख. १        |  |
| परिणाम भेदः          | एतेषु लक्षितपद्ये विषया अनेकैः |  |
| अनिर्वचनीयरजतम्      | स्थलेषुविभिन्नप्रकारेण पतिपाठी |  |
| अपस्तुतपशंसा         |                                |  |

४१।

लःर्मः श्रीकृष्ण दीन । टिष्ठणी प्रतिपादितानां  
श्रन्यानां नामधेयानि ।

| ( रथावरणेषु )           |    | ( कामशालेषु )        |    |
|-------------------------|----|----------------------|----|
| पाणिनि                  | १  | कामसूत्र भाष्यम्     | १  |
| दात्यायन वार्तिकेषु     | २  | तिरतस्यम्            | २  |
| ८१ भाष्येषु             | ३  | ( अवक्षारेषु )       |    |
| ( शोशेषु )              |    | काव्यप्रकाशः         | १  |
| नाय विद्वानुशासनम्      | १  | माहित्यदर्पणः        | २  |
| मेहिना                  | २  | रसगंगाधरः            | ३  |
| दिल्लपकारः              | ३  | दशरथसूत्रम्          | ४  |
| रेपदन्द्राभिधानम्       | ४  | काव्यप्रदीपः         | ५  |
| शब्दवस्त्वपृष्ठमः       | ५  | चन्द्रालीकः          | ६  |
| शब्दार्थेषु             | ६  | कुवङ्गयानन्दः        | ७  |
| शब्दरसायना              | ७  | वापनसूत्रम्          | ८  |
| दहुरत्त्वम्             | ८  | वापनसूत्रवृत्तिः     | ९  |
| अनेदार्थविनायजरी        | ९  | अद्वारसर्वस्वयम्     | १० |
| एवाधरकोहः               | १० | माहित्यसारः          | ११ |
| ( उन्दस्तु )            |    | काव्यादर्शः          | १२ |
| पितॄवसूत्रम्            | १  | काव्यादर्शविवृतिः    | १३ |
| दृचरत्नाकरः             | २  | काव्यप्रदीपोद्योतः   | १४ |
| उन्दोमज्जरी             | ३  | रसगंगाधरमर्मकाशिका   | १५ |
| पाणीभूषणम्              | ४  | शाकुन्तलार्थोत्तनिका | १६ |
| दृचरत्नाकरस्य नारायणीय- |    | ( काव्येषु )         |    |
| व्याख्या                | ५  | पात्मीकीयरामायणम्    | १  |
| कृतदर्पणः               | ६  | लक्ष्मीसहस्रम्       | २  |

|                            |    |                          |    |
|----------------------------|----|--------------------------|----|
| किरातार्जुनीयम्            | ३  | भगवद्गीता                | ५  |
| मेघदूतम्                   | ४  | ( धर्म शास्त्रेषु )      |    |
| गीतागोविन्दम्              | ५  | स्मृतिदीपिका             | १  |
| वासवदत्ता                  | ६  | तन्त्रधेदाधिकारि निर्णयः | २  |
| ईर्षचरितम्                 | ७  | ( तन्त्रेषु )            |    |
| कादम्बरी                   | ८  | स्वतन्त्रः               | ३  |
| पारिजातहरणनाटकम्           | ९  | तारापारिजातः             | २  |
| शकुन्तलानाटकम्             | १० | व्रह्मसंहिता             | ३  |
| ( वेदेषु )                 |    | नीळः                     | ४  |
| यजुर्वेदः [ पुरुषसूक्तम् ] | १  | समयाचारः                 | ५  |
| कठः                        | २  | भाषचूडामणिः              | ९  |
| मुण्डकम्                   | ३  | कृञ्जार्णवः              | ७  |
| बृहदारण्यकम्               | ४  | गेहः                     | ८  |
| इतेताख्यतरः                | ५  | वगस्त्यसंहिता            | ९  |
| छान्दोग्यम्                | ६  | बृहच्छ्रीकमसंहिता        | १० |
| तैतिरीयम्                  | ७  | महाकाळसंहिता             | ११ |
| ईदृः                       | ८  | मैरवः                    | १२ |
| ( कल्पसूत्रेषु )           |    | तारामत्तिसुधार्णवः       | १३ |
| पारम्परागृह्णसूत्रम्       | ?  | ( दर्शन शास्त्रेषु )     |    |
| ( पुराणेषु )               |    | न्याय सुत्रण्            | १  |
| पार्कश्चेष्यपुराणम्        | १  | न्याय वार्तिकम्          | २  |
| मीनमुगाभम्                 | २  | न्यायकन्दली              | ३  |
| भीमदद्मागवतम्              | ३  | पद्मावतरस्नाकरः          | ४  |
|                            | ४  |                          |    |

( २ )

|                          |    |                               |    |
|--------------------------|----|-------------------------------|----|
| स्त्रीरक्षादा:           | ५  | स्त्रीरक भाष्यम्              | १९ |
| स्त्रीरक्षादात्मादा:     | ६  | भासती                         | २० |
| दुत्तिदा:                | ७  | पहचानादिकादिवरणम्             | २१ |
| मन्त्रार्थदादमणिदीषिति:  | ८  | संसेप स्त्रीरकम्              | २२ |
| दिष्टिः                  | ९  | अद्वैतसिनिः                   | २३ |
| मन्त्रतिपश्चादीषिति:     | १० | खण्डनखागम्                    | २४ |
| न्यायदृष्टदत्तितात्मर्थ- |    | चित्तस्त्वीयम्                | २५ |
| दिष्टिः                  | ११ | तिदान्तलेशः                   | २६ |
| मासात्तात्मूष्म          | १२ | देदान्तपरिमाणा                | २७ |
| अधिकरणमाणा               | १३ | पञ्चदशी                       | २८ |
| न्यायमकान्तः             | १४ | ( ज्योतिषशाखेषु )             |    |
| साहस्र लक्षम्            | १५ | ज्योतिषसारः                   | ?  |
| मात्रस्त्व भाष्यम्       | १६ | सामुद्रिकम्                   | २  |
| सादूख्यतत्त्वद्वौमुद्दी  | १७ |                               |    |
| योगसूक्ष्म               | १८ |                               |    |
| देदान्तसूक्ष्म           |    | सङ्कलने ग्रन्थानां संख्या १०६ |    |



# \* श्रीलक्ष्मीस्त्रीचरितम् \*

## → \* मङ्गलाचरणम् \* ←

युज्जदलिमगुवगुल यमुनाकुञ्जे किमपि तिमिरपुञ्जम् ।  
जयति समभासि ललितं हरिदग्धशोभिचपलयाऽमिलितम् ॥ १ ॥

टीका ।

एदाम्भोजप्रान्तप्रणतरेतिपाणिक्यमुकुट  
रुद्रोधन्तुष्ठांशुप्रमुदितचकोराक्षियुगला ॥  
थियं लावण्याविष्टमरविद्विनिर्मन्त्यनभवां  
दधाना श्रीराधा मम विविधवाधां तिरयतु ॥ १ ॥  
नैषा दर्शनसादित्यदर्शनाल्पा विधीयते ।  
परन्तु छृद्गुमामोदो गदाड्येनैव दीप्यते ॥ २ ॥  
वित्तयोक्तिमर्यीशृतिः परेषां कर्त्तिदर्पणे ।  
नैद निक्षेपणीयेति प्रार्थना मात्सरे गणे ॥ ३ ॥

प्रारिप्सित समक्षार्थी[१]धनेकार्थक काव्यविशेष वक्ष्यमाणषक्षण ऋक्षमी-  
श्वरीचरिताख्याप्रख्याताख्यायिका समाप्तिसप्ततसन्देशमानान्तरायसन्तति  
शान्तिकामस्वान्तेनातन्यमानानि स्तवात्ममङ्गलानि स्वान्तेवासिना मतुशास

(१) आयमर्थपदे विभवस्य, द्वितीयस्य प्रयोजनस्य बोधपृष्ठ । आदिना व्यवहारमानादीनापरि-  
मह तदुक्त वाव्यप्रकाशे “काव्यप्रशारेऽपर्कृते व्यवहारविदे शिवेतथतय, इत्यादिना



वास(१)नात्मक स्थायिभाव नव[२]कान्यतम निस्करतिगमकसुरतयोग्यता  
घोतक तदीयकलविशेषाभिभावकत्वव्यज्ञजकतयो—भयथापञ्जुतोपकारि-  
तया च गुञ्जदलित्व विशेषणस्य विवक्षितार्थ[३]वाधप्रयोजकानुपादानत्वे  
ननापुष्टार्थता । अतएव प्रकृतार्थोपपादकचमत्कारिव्यञ्जकत्वानुमिति  
करणत्व सामान्यविशेषप्रभावानालिङ्गित (४) प्रकृतार्थनिश्चयजनकज्ञानगो-  
चरत्वरूपयोः परिकर(५)काव्यलिङ्गयो र्धालङ्घारमात्रयोः “लिङ्गपतीन  
तमोऽङ्गानि वर्षतीवाङ्गनं नभः । असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गतेत्यादा-  
बुत्प्रेसोपमयोस्त्रिव परस्परनैरपेक्षेण तिलतण्डुलन्यायात् संसृष्टिः “सैषा संसृष्टि  
रेतेषांभेदेन यदिहस्थिति, रितिकाच्यप्रकाशोक्तेः । यदपि गुञ्जदलित्वमेवा  
भिव्यञ्जयितुं प्रभवति मञ्जुतां, तथापीतरथापि तत्प्रत्यायनाय मञ्जु-  
पदोपादानम् । वञ्जुलकुञ्जनस्यातिसान्द्रतया परदर्शनायोग्यत्वं ध्व-  
न्यते तेनच रहःकेलिक्षपत्त्वम् । अत्रादिमाचाच्यार्थमूला पराच व्यञ्जना  
र्थमूला व्यञ्जनावोधया “ सर्वेषांप्रायशोऽर्थानां च्यञ्जकत्वमपीप्यत ” इति  
दर्पणाभिवानात् । यमुनापदप्रतिपादित एव व्यक्ति(६)ष्ट्रिवलेन वाच्यार्थ

१ संस्कारः पृतमये निष्पत्यस्येष्टदायाअपि संस्कारजगत्वम् तदवच्छेदके विशेष्यमागस्यानि  
येषात् ।

२ रतिहत्साक्षोको विस्मयोहासो भय छुणपता शोष निवोद इति ।

३ अगार्थत्वं याच्यटक्षव्यहृत्य साधारणम् ।

४ अनुमानार्थात्म्यात्माराणायानालिङ्गितान्तविशेषणम् । न च पश्यादिप्रतिपादितहेतुते व्यव्य  
मानहेतुपरिहिष्यहृन्दरेतावति व्यासिस्तारश्योचरत्वेन शब्दादोभित्वस्य निषेधत्वात् ।

५ ननापुष्टार्थताभावेन शक्यते परिकरधरितार्थितुं, यमकादावपुष्टार्थताया दोषत्विरेण सामि  
प्राय विशेषे “वनवासाङ्गताभिमिद्येत्यादौ हटुपगमस्यावश्यकत्वात् ।

६ ‘व्यक्ति’ व्यञ्जना ।

( ४ )

## ❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀

प्रवाहतादात्म्यमतिक्रोडीकृते तदीयतीरे(?) प्रतिपिपादयिपितम्य शेष्यात्म  
प्रयोजनस्यात्यन्ततिरकृतवाच्यध्वनितया तेन च सौरगतथ्रपापनोदनगोम्य-  
ता, तयापि च रहः केलिक्षमत्वं पर्युशक्तिमुलकं संलक्ष्य क्रम(२) तयाव्यञ्जयते,  
पदेन राम मन्वय व्यतिरेकयोरभावात् । एतच्च म्यायिधावाङ्गतया गुणीभृतं  
नीरक्षीरन्यायेन ध्वनिसङ्कीर्णतामाथ्रयति “संकरेण त्रिरूपेण संसृष्ट्या चैव  
रूपया वेदखादिविविद्यन्द्रा,, इतिः वनिभेदप्रकरणे प्रकाशाभिधानात् ।  
किमपीत्यनेन प्रसिद्धतमः पुञ्जापेक्षया व्यतिरेकालङ्कारो वोध्यते, कुञ्ज-  
गतत्वं साधारणधर्मसङ्गावेन शाब्दत्वार्थत्वयोरभावेऽयालङ्कारिकाभ्युपग-  
तातिरिक्तपदार्थत्वस्य सादृश्यस्य(३) “क्रतिपयदिवमविलासं नित्य-  
सुखासङ्गमङ्गलसवित्री । खर्वयति स्वर्वामि गीर्वाणवुर्नीतटस्थितिनिरामि-  
ति रसगङ्गाधरोक्ते व्यतिरेकोदाहरणऽवेहापिव्यंज्ञयत्वागगपयार्यायाक्षिसत्त्व-  
सत्त्वात् । तिमिरपुञ्जमित्यत्र चपलयेत्यत्र चानुग्राहकस्यनिगरणान्तरस्या-  
भावान्निरवयवा रूपकातिशयोक्तिसङ्कीर्णते पुराभिहिताभ्यामलङ्काराभ्याम्,  
साच विपयिवाचकपदज्ञातमात्रकरणकं तदीयवाच्यतावच्छेदकरूपेण विप-  
यस्य वोधनम् । जयतीत्यनेन वर्तमानकालिकोत्तरपार्मिधानात् तत्पकारक-  
ज्ञानानुकूलस्यैतस्य स्तुतिरूपतया मङ्गलत्वमवसेयम् । ननु गुरुकार्यारम्भे  
प्रणतिरवश्यं दृश्यते प्रेक्षावताम् अभिहितं च श्रीधराचार्यैः प्रशस्तपादभा-  
ष्यविवरणे न्यायकन्दल्यां “नहिकश्चिदपरः प्रेक्षावान् म्लेच्छोऽपि तावत्का-  
र्ये प्रवर्तते यावदिष्टान् न नमस्यतीति, तथा च स्तुतिमात्रमाचरन्नेपक्षिः

(१) यदा शक्यतावच्छेदकरूपेणवलक्ष्यार्थमानं तावताऽपि गङ्गातीरघोपहतिप्रयोक्तव्ये गङ्गायाघोष  
इति प्रयोगप्रयोजन खातस्यति ।

विज्ञेयपौर्वाप्येण ।

## ॐ श्रीलक्ष्मीश्वरीचरितम् ॐ (५)

कथमिव नवाच्योभवेदितिचेत् । न, जयत्यर्थेनैव वक्तृचिपयैलक्षण्यसहकारे  
ण भगवद्विषयकप्रणतेस्सवासना । १) नामभिद्यज्ञनात्, अतएव जयत्विति  
नाभ्यधायि, तथासति विधिनोत्कर्षस्यानिप्नत्वध्वनेन नमस्कारद्योत  
कत्वं नोपपद्येत् । इयम् २) वार्थी व्यञ्जना यदाह मम्पटः “वक्तृवोद्धव्य  
काङ्गनां वृक्षयवाच्यान्यसन्निधेः प्रस्तावदेशकालादेवैशिष्टयात्प्रतिभाङ्गपाम्  
योऽर्थस्यान्यर्थाहेतु व्यापारोव्यक्तिरेवसा,, इति । अनयैवदिशाऽग्रेपि स-  
माकलनीयम् । श्रीकृष्णविषयिणीरति देवावलम्बनतया भावरूपा पुरोदि-  
तेन व्यतिरेकालङ्गरेण सम्भोगशृङ्खा । ३) रस्य च ध्वनिना जयत्यर्थाभिव्यञ्य  
मानेन नमस्कारेण चाङ्गपाणिता कवितात्पर्यविषयाभूताऽसंलक्ष्य क्रमतया  
पण्डितराजानुमतया संलक्ष्यक्रमतयावा ध्वन्यते, सचायमष्टविधेभ्यो । ४) गु  
णीश्वरव्यञ्गयेभ्योव्यतिरिच्छमानोऽप्रधानीभूतशब्दार्थालङ्गरोवाच्यातिशयी  
तिपारिभाष्यध्वन्या । ५) त्वक्तव्यैतदुत्तर्मकाच्यम् “इदमुच्चममतिशयिनि व्यद्भ-  
ग्येवाच्यादिति प्रकाशनिरुक्तेः । एतेन प्रधानव्यञ्गयस्यातिशयि विच्छिन्नि  
विशेषाधायकत्वेन तदभादस्य प्रध्यमकाच्यतायाः प्रयोजकस्य, कवितात्पर्य  
गोचरतया च तदनाश्रितव्यद्वयकल्पात्मकस्याधमकाच्यतायाः प्रयोजकस्य

(१) नवनयोऽमेषशारिरन् प्रदा प्रतिभा सैववासने दुष्टते, तत्क्षमावश्य दक्षतेहिंडादिना गत्वा  
व्यज्ञस्यप्रतीतिः । कतएव न शान्तिकाना रसप्रतीति । उच्च च “रुद्रासना नायादौ रस  
स्यानुभवोभवेद् । निर्वादनारुद्रात्तेवैऽमङ्गुडयाश्म समिग्मा,, इति ।

(२) एवज्ञारोऽप्यर्थे ।

(३) सच चित्तगृतिविशेषस्योगकाटादस्तित्वारति ।

(४) असुन्दरितिरुद्रुद्वाक्षवादिस्वाध्यतसाधनं दूररितिरुद्वल्य राधादस्पेभ्य ।

[५] तथारि द्विविधोष्ठनि । तर्तुष्टोप्यल्पयहामा यामा । परथोक्तमवाच्यतान्तर्कूलवाच्यमिशयि-  
व्यद्वयविशेषात्मेति ।

विरहान्तयोः प्रसङ्गः । इहापि ध्वनिसङ्करोरसस्याङ्गतया रसवदकड़कारथं । “रसभावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमस्तथा । गुणीभृतत्वमायान्ति यदाद्युक्तयस्तदा । रसवत्प्रेयज्ञर्जस्ति समाहितप्रितिक्रमादितिवचनात्” । भावं तद्युक्ते विभावादिव्यज्यमाननिर्वेदाद्यन्यतमत्वं तच्च “निर्वेदग्रानिशङ्का अमधृतिजड़ताहर्षदैन्यौग्रयचिन्तास्त्रासेष्यामर्षगर्वास्मृतिमरणमदास्मृति निद्राविवोधाः । ब्रीडापस्मारमोहास्समतिरक्षसतावेगतकर्विहितथा व्याघ्रं न्मादौ विषादोत्सुकचपलयुतास्त्रिशदेते त्रयथे,,ति दशरूपके प्रतिपादितम् एतदुपलक्षणं गुरुदेवनृपुत्रादि विषयाणां रतीनाम् एतेन पुत्राद्यालम्बनं वा- त्सल्याभिधं रसान्तरमिति परास्तम् । यदाहुः “रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाज्ञित,, इति । तदाभासश्चानुचितविभावालम्बनः । ‘प्रशमो, नाशः ॥ पुरोदीरितनियताकाङ्क्षया विशेषणत्रितयोजने “जयतीत्यन्तेन वाक्यपरिसमाप्तौ पुनस्तदवयवाभिहिते विशेषणान्वये समाप्तपुनराचता- प्रसक्ति,, रित्याक्षेपोनिरस्तः, अनियताकाङ्क्षयैव हि तदन्वये भवति तदापाद- नं, नियताकाङ्क्षाराहित्यस्य तत्र दूषकता वीजत्वात् । अतएव “प्रागप्राप्त निशुम्पशास्त्रवधनुर्देवाविधाविर्भवत्क्रोधप्रेरित भीषमार्गवभुजस्तम्भापविद्धः क्षणात् । उज्ज्वालः परशुर्भवत्वशिथिलस्त्वत्कण्ठपीठातिथि येनानेन ज- गत्सु खण्डपरशुर्देवोहरः ख्याप्यत,, इत्यत्र नोक्तदोषानुवृच्छिरिति प्रति- पादितं काव्यप्रदीपे । समभासिता च, तस्यैव भासा विश्वमिदं विभातीति श्रुते(क०मु०)रितरेपां जडत्वेन(१)परिच्छन्नत्वेन(२)तथात्वायोगाच्च । एव

(१) अशानत्वेनानामत्वेन वा ।

(२) स्वधमानसत्ताकात्यन्ताभावशतियोगितेन तादृशान्योन्याभावप्रतियोगितेन, खंसप्रतियोगिते न चेत्यर्थः । वसुत्रात्मावृत्तित्वनिशेषप्रतियोगितासम्बन्धेनात्यन्ताभावेन भेदेन येति गौडव्रह्मानन्दकृता यापद्वैतिशिद्व्याग्यायांदृष्ट्यम् ॥

इचन शब्दप्रमाणालङ्कारः । णिनिपत्ययेनाभिधीयमानेन शीलेनशा श्वतिक  
भासनयोग्यत्वं व्यञ्जयते । एतेनासाधारणधर्माभिधानेन ब्रह्मतादात्म्यं,  
ललितत्वेन च कार्येणानन्दरूपत्वं तत्साधकत्वं वा जयत्यर्थसाधनं गम्यते ।  
ललितपदं शोभनं ब्रूतइति वा । अथवा समेत्यादेः समं, सद्वशगुटिका  
कलितं शोभनं वा ‘भासि, दीसिमत् । तुल्येन शोभनेन वा भासेनाश्रीय  
माणं वा ‘ललितं, हारविशेषोयस्येत्यर्थः । नचान्तिमे पक्षे “न कर्मधारया-  
न्मत्वर्धीय,, इत्यनुशासनविरोधः भासोस्त्यस्मिन्नितिव्युत्पत्तेरेवोक्तार्थवो  
धायाश्रयणीयत्वादिति च्य, ‘ममुच्चत, इतिमहाभाष्यनिर्देशात् महाक-  
वीनां तादृशप्रयोगवाहुल्याच्च निरुक्तानुशासनं हि भ्रमविषयत्वेनांशतःक-  
ल्पनीयम् । वस्तुतस्तु समत्वं भासिपदार्थस्य भासविग्रहस्य विशेषणमेव च  
रूपविशिष्टोऽप्य इत्यत्र वेदान्तपरिभाषोदाहृतेऽनित्यत्वस्य रूप इत्र  
प्रकृतेऽपि भासेऽपि धर्मितावच्छेदके विशिष्टैशिष्यवोधमर्यादया समत्वस्या  
न्वयेनोक्तार्थलाभोऽनपवादएत् । ननु शब्दाश्रयो गगनं नित्यमित्यादौ  
शब्देऽपि नित्यत्वस्य तुल्यन्यायादन्वयः प्रसञ्जयेत, यद्विशिष्टे यद्वासते  
तत्रासतिवाधके तदन्वयस्य नियतत्वादिति । एतैरशेषैरपि पक्षे जयत्यर्थ-  
साधनैर्व्यतिरेकाङ्ग काव्यलिङ्गाङ्गारै रतिः प्रतीयते । “ललितं हार-  
भेदेस्यादीप्सितेऽपि च,, तिविभ्वप्रकाशः । किञ्च शेषैः सकलैर्भासिभि  
‘ललित, धीप्सित मितिवाऽर्थः सुभगाअपीदमीयदीप्त्यै स्पृह्यन्ति, प्रयो-  
जनभृतेन तेन निरतिशयं रामणीयकं तेन चोक्तर्पसाधनेन रतिर्ध-  
न्यते । हरिद्वसनपरिधानेन भवति शोभा गौराङ्गनानामिति तच्छोभि-  
त्वं प्रकृतेनानुपपन्नम् । हरिद्वरशोभीत्यनेनावसीयमानं प्रसिद्धच-  
पलाविसद्वशत्वमुपजीवति प्रधानव्यतिरेक इत्यनयोरड्डाह्निभा-  
वसङ्करः । यद्वा हरिद्वति खण्डयति हरिदस्तं हरेरिन्द्रस्य काक्षियाशी-

विषयवा खण्डकं दर्पविनाशकं, गोवर्धनाभिधमहीधसमुदारणे  
 संवर्तसंवर्तप्रतिमधाराधरनिकरसर्वतो—मुखासारतो ब्रजरक्षणात् परिजि  
 तपादपाहरणात् प्रधर्षणादन्यत्र प्रेषणाच्च । वृश्यन्त उत्कर्षपिहारक  
 इपि खण्डन पदस्य प्रयुक्तयः, एतच्च परिपुण्णाति पुरोदीग्निता मुक्तुष्टाम  
 “हरिरिन्द्रो हरिस्सर्प” इत्यनेकार्थध्वनिपञ्चर्गा । ‘वरशोभिन्या, श्रेष्ठा  
 कुंकुमेनजनितयावा, ‘शोभया, कान्त्या । ‘वरस्य, वरप्रदानस्य ‘शोभया,  
 समीहया । स्वोपासकेषु वा श्रितयेत्यर्थः । प्रकृष्टकान्तिमत्या कुड्कुमानुलेपं  
 विराजितया उपासकेषु साकाङ्क्षेयेत्यावत् । अन्तिमे सदयत्वं व्यङ्ग्यम्  
 “वरोऽभीष्टे देवतादेश्व्रेष्टे काश्मीरजेष्ट,, इति विश्वः । अत्र लोकोत्तर ति  
 पिरपुञ्जत्वेन स्वपेण भगवतः प्रतिपादने विशेषणाना मानुगुण्यं वेदितव्यम् ।  
 अथवा वज्रजुलस्याशोकस्य निरुक्तकुञ्जे तिमिरपुञ्जं तस्येनाध्यवसित  
 कालीमूर्तिः वृन्दावनाधिष्ठातृ देवता, तम्याश्च चिन्छक्षिरुपत्वेन समाप्तिल  
 दक्षिन्वच्च । हरिदम्बरशोभि, दिग्म्बरशोभि । “वज्रकाञ्चीं दिगंशुका,,  
 पिति इवतन्वतन्वे । ‘चपल्या, तन्येनाध्यवसितया तत्परिचारिक्यादेव्या,  
 ‘पितिनं’ सेवितम् । ‘चपल्या, विमूषया वा ‘गवोऽकारगुक्तां च मुण्डगाका  
 विभूषिता, पितितचिन्तनात् । यदा गृणणस्या काली । हरिदम्बरत्यादेः  
 पुरोदीग्निपवार्थः, कृष्णस्य कालीस्तदता गमम्यन्त ताग्नीस्तपत्वेत्यागमस्य  
 रक्ष्यद । एतन्यदेव्यन्यन्यन्यर्थं पूर्ववद्वांगमिति ॥ अनुपागदृपर्णः प्रमिदि  
 द्युर्द्वितीय वृत्तिर्गीर्वः स्यानपितिहापुष्ट्रार्थं प्रतिकृद्वर्णवाननिरित्य-  
 एते गिरिद्वर्ती वृत्तिशूलवशामान्याया परमार्थमिति गमन्यानुभागेनादेव  
 इत्यहम् लूप्तिर्गीर्वः स्यानपितिहापुष्ट्रार्थं प्रतिकृद्वर्णवाननिरित्य-  
 एते गिरिद्वर्ती वृत्तिशूलवशामान्याया परमार्थमिति गमन्यानुभागेन  
 इत्यहम् लूप्तिर्गीर्वः स्यानपितिहापुष्ट्रार्थं प्रतिकृद्वर्णवाननिरित्य-

## ❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀ (९)

प्रानन्दो भवति,, इतिश्रुतेः, रत्यादि स्थायिभावावच्छिन्नाया विभावाद्य  
लन विनिवृत्ताद्यतेस्स्वप्रकाशानन्द चेतनाशक्ते रसात्मिकायाः परम्परयो  
कारकत्वे सति व्यञ्जनवर्णसाम्यं वा । एतन्मतेऽनुप्राससमाख्याऽपि साधु  
द्वृन्द्वते । नच रसस्य तादृशचैनन्यरूपत्वे रस उत्पद्यते नश्यतीत्यादि  
तीते नैवधा तद्विभागस्य चानुपपत्तिः, तस्य ब्रह्मात्मकत्वेन नित्यत्वादे  
कात्माच्चेति वाच्यं तदवन्द्वेदकरत्यादीनामुत्पादविनाशशालित्वेनैव तत्र  
प्रतीतेः रवाश्रयावच्छिन्नत्वं आख्यातस्य लक्षणाया उपगमात् । नैवधा-  
विभागस्यापि रत्यादिस्थायिभावोपाधिकत्वात् जीवेष्वरब्रह्मभेदेन विधा  
चैतन्य विभागवत् प्रतिपादितमेतद्विस्तरेण रसगङ्गाधरे ।

वृत्त्यनुप्रासत्वज्ञवर्णवर्णित्वं, वै० स्ववृत्तिव्यञ्जनत्वं विशिष्टजा-  
तिमत्त्वं स्वाव्यवहितपूर्ववर्तितावच्छेदक निरुक्तं जातिमद्वर्णव्यवहितोत्तरत्वं  
स्वाव्यवहितं पूर्वं स्वरसजातीयं स्वराव्यवहितोत्तरत्वं समानाधिकरणं स्वा  
व्यवहितोत्तरस्वरसजातीयस्वराव्यवहितं पूर्वत्वं संमर्गावच्छिन्नं स्वनिष्ठाव-  
च्छेदकदत्ताकं प्रतियोगिताकभेदवत्त्वं स्वविशिष्टं वर्णं विशिष्टत्वं तत्सम्बन्ध-  
चतुष्यावच्छिन्नं स्वनिष्ठं प्रकारतानिरूपितं प्रभीयदिशेष्यतावत्त्वं स्ववि-  
शिष्टभेदवत्त्वान्यतरसम्बन्धेत ।

प्र० वै० स्वसामानाधिकरणं स्वसमानाधिकरणभेदं प्रतियोगितावच्छेदक-  
त्वाभ्याम् । स्वाव्यवहितपूर्ववर्तित्वं च स्वविशिष्टत्वं वै० स्वानुकूलकृतिसम-  
वायिसमवेतकृतिप्रयोज्यत्वं रवविशिष्टक्षणोत्पत्तिकत्वाभ्याम् । वै० स्वप्राग  
भावाधिकरणत्वं स्वविशिष्टवृद्धजननप्रागभावाधिकरणत्वसम्बन्धावच्छिन्नं  
स्वावच्छिन्नभेदवत्त्वाभ्याम् । वै० स्वपटित्यटकत्वं स्वप्रागभावाधिकरणत्वा  
भ्याम् । अव्यवहितोत्तरत्वमपि स्वप्रागभावस्थाने स्वक्षणधर्मं व्यञ्जन-  
स्थाने स्वरं निवेश्य निर्वाच्यम् । एषा च परिष्कृतिर्यथायथं कार्या । हिै.

विपस्यता खण्डकं दर्पविनाशकं, गोवर्धनाभिघमहीघसमुद्धारणे  
 संवर्तंसंवर्तंप्रतिमधाराधरनिकरसर्वतो—मुखासारतो ब्रजरक्षणात् परिज  
 तपादपाहरणात् प्रधर्षणादन्यत्र ऐषणाच्च । दृश्यन्त उत्कषीपहार  
 ऽपि खण्डन पदस्य प्रयुक्तयः, एतच्च परिपुण्णाति पुरोदीरिता मुक्तुष्टा  
 “ हरिरिन्द्रो हरिसर्प ” इत्यनेकार्थध्वनिपञ्चरा । ‘वरशोभिन्या, श्रेष्ठ  
 कुंकुमेनजनितयावा, ‘शोभया, कान्त्या । ‘वरस्य, वरप्रदानस्य ‘शोभया,  
 समीहया । स्वोपासकेषु वा श्रितयेत्यर्थः । प्रकृष्टकान्तिमत्या कुड्कुमानुलेपन  
 विराजितया उपासकेषु साकाङ्क्षेयेतियावत् । अन्तिमे सदयत्वं व्यङ्गयम् ।  
 ‘वरोऽभीष्टे देवतादेशश्रेष्ठे काश्मीरजेमत,, इति विश्वः । अत्र लोकोत्तर ति-  
 मिरपुञ्जत्वेन रूपेण भगवतः प्रतिपादने विशेषणाना मानुगुण्यं वेदितव्यम् ॥  
 अथवा वज्जुलस्याशोकस्य निरुक्तकुञ्जे तिमिरपुञ्जं तत्वेनाध्यवसिता  
 कालीमूर्तिः वृन्दावनाधिष्ठातृ देवता, तस्याश्च चिन्हक्तिरूपत्वेन समभासितं  
 लक्षित्वज्ञ । हरिदम्बरशोभि, दिग्म्बरशोभि । “वद्धकाञ्ची दिगंशुका,,  
 मिति स्वतन्त्रतन्त्रे । ‘चपल्या, तत्वेनाध्यवसितया तत्परिचारिक्या देव्या,  
 ‘मिलितं’ सेवितम् । ‘चपल्या, विभूषया वा ‘रार्द्धांकारगुक्तां च मुण्डमाला  
 विभृषिता, मितितचिन्तनात् । यद्वा कृष्णरूपा काली । हरिदम्बरेत्यादेः  
 पुरोदीरित एवार्थः, कृष्णस्य कालीरूपता रामस्यच तारिणीरूपतेत्यागमरथ  
 रहस्यम् । एतत्पक्षेऽप्यन्यत्सर्वं पुर्ववद्वोऽध्यमिति ॥ अनुप्राप्तपूर्णः प्रसिद्धि  
 वैधुर्यं वैकल्यं वृत्तिविगेवैः ख्यातविमुद्रापुष्टार्थं प्रतिकूलवर्णत्वान्तिरिद्य-  
 मानेगदिताभ्यां वृत्तिशून्यनुप्राप्ताभ्यां परार्थावस्थितेनान्त्यानुप्राप्तेनताद्योन  
 शृददा लङ्घने भेदेषा मर्थांकागणां मंगुष्ठिः । वृत्त्यनुप्राप्तेन शून्यनुप्राप्तस्य  
 मादचर्या देवाश्रयानुपर्यंशः तर्यद तयोरन्यतानुप्राप्तेन माकं संकरः ।  
 अनुप्राप्तवत्त्रच द्युक्तवृत्त्यायन्यतपन्वं, “ रसोर्व मः रसं रीवायं लक्ष्मा

## ❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀ (९)

आनन्दो भवति,, इति शुतेः, रत्यादि स्थायिभावावच्छिन्नाया विभावाधा कलन विनिवृत्तावृतेस्त्वप्रकाशानन्दं चेतनाशक्ते रसात्मिकायाः परम्परयो पकारकत्वे सति व्यञ्जनवर्णमात्र्यं वा । एतन्मतेऽनुप्राससमाख्याऽपि साधु शङ्कुन्ठते । नच रसस्य तादृशचैतन्यरूपत्वे रस उत्पद्यते नश्यतीत्यादि प्रतीते नवधा तद्विभागस्य चानुपर्तिः, तस्य ब्रह्मात्मकत्वेन नित्यत्वादे कृत्वाच्चेति वाच्यं तद्वच्छेदकरत्यादीनामुत्पादविनाशशालित्वेनैव तत्र प्रतीतेः रवाथ्रयावच्छिन्नप्रत्य आख्यातस्य लक्षणाया उपगमात् । नवधा-विभागस्थापि रत्यादिस्थायिभावोपाधिकत्वात् जीवेभ्वरब्रह्मेदेन विधा चैतन्यं विभागवत् प्रतिपादितमेतद्विस्तरेण रसगङ्गाधरे ।

वृत्त्यनुप्रासत्वज्ञवर्णविशिष्टवर्णत्वं, वै० स्ववृत्तिन्यज्ञनत्वं विशिष्टजातिमत्वं स्वाव्यवहितपूर्ववर्तितावच्छेदक निरुक्तं जातिवद्वर्णाव्यवहितोत्तरत्वं स्वाव्यवहितं पूर्वं स्वरसजातीयं स्वराव्यवहितोत्तरत्वं समानाधिकरणं स्वाव्यवहितोत्तरस्वरसजातीयस्वराव्यवहितं पूर्वत्वं संमर्गावच्छिन्नं स्वनिष्ठावच्छेदादताक प्रतियोगिताकभेदवत्त्वं स्वविशिष्टवर्णं विशिष्टत्वं तत्सम्बन्धचतुष्प्रयावच्छिन्नं स्वनिष्ठं प्रकारतानिख्पितं प्रभीयदिशेष्यतावत्त्वं स्वविशिष्टमेदवत्त्वान्यतरसम्बन्धेन ।

प्र० वै० स्वसमानाधिकरणं स्वसमानाधिकरणभेदं प्रतियोगितावच्छेदकत्वाभ्याम् । स्वाव्यवहितपूर्ववर्तित्वं च स्वविशिष्टत्वं वै० स्वानुकूलकृतिसमायिसमयेतकृतिप्रयोज्यत्वं रवविशिष्टप्रयोज्यत्वाभ्याम् । वै० स्वप्रागभावाधिकरणत्वं स्वविशिष्टवर्णजननप्रागभावाधिकरणत्वसम्बन्धावच्छिन्नं स्वावच्छिन्नभेदवत्त्वाभ्याम् । वै० स्ववर्णितवर्णत्वं स्वप्रागभावाधिकरणत्वाभ्याम् । अव्यपदितोत्तरत्वमपि स्वप्रागभावस्थाने स्वक्षणधर्मं व्यञ्जनस्थाने स्वरं निवेश्य निर्वच्यम् । एषा च परिष्कृतिर्यथायदं कार्या । द्वितीयं

पूर्वोक्तसंसर्गत्रयेण । त्रु. वै. स्वभिन्नत्व, स्वघटितपादघटकत्वाभ्याम्  
 च. वै. निरुक्तसंसर्ग युगलावच्छिन्न स्वावच्छिन्न भेदवद्वृत्तित्व. स्वरूप  
 व्यञ्जनत्व विशिष्ट जातिसामानाधिकरण्य स्वाव्यवहित पूर्ववर्तितावच्छिन्न  
 दक्षिणत्वविशिष्टजातिमदूर्णाव्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धावच्छिन्नस्वावच्छिन्न  
 अ प्रतियोगिताकत्वैः । इह च वैशिष्टययुगलं पूर्वोक्ताभ्यामेव सम्बन्धाभ्यां प्रवेश्यम् । प्रकागतावच्छेदकेषु संसर्गेषु तृतीयस्य निवेशाद्य  
 दानुप्रासयमकयोस्तुरीयस्य निवेशाच्छेकानुप्रासस्य व्यावृत्तिः । अता स्वभिन्नत्वमपि तत्र निवेशितम् । अन्यतरत्र द्वितीयसंसर्ग विवक्षणादेकं  
 र्णेन वृत्त्यनुप्रासेऽव्यवहितपूर्वत्वोत्तरत्वयोस्तथापरिष्करणात् स्वरेणान्  
 रितेऽनन्तरिते च स्थलविशेषे तत्र नानुपपत्तिः । इतरेषां फलं स्पष्टम्  
 मिति न तत्प्रदर्शितम् । अधिकं स्वयमेव सूक्ष्मबुद्धिभिरालोचनीयमित्ये-  
 पा सरणिः ॥ श्रुत्यनुप्रासत्वं च हलवयवर्णविशिष्ट तादृशवर्णत्वं, वै. स्व-  
 भिन्नत्व स्वजनकं पवनाभिघातानुयोगि कण्ठादिस्थानानुयोगिकं पवनाभि-  
 घाताजन्यत्वाभ्याम् । विभिन्नसमानोच्चारणस्थानकैर्मकारं नकारादि-  
 धिर्विटिं निरुक्तालंकारानभ्युपगमेऽताहश स्थानानुयोगिकं पवनाभि-  
 घाताजन्यत्वमपि तृतीयसंसर्गतया निवेश्यम् ॥ अन्त्यानुप्रासत्वं च पदवि-  
 शिष्टपदत्वं, वै० स्वभिन्नत्वसहचरित स्वविशिष्टव्यञ्जनविशिष्ट व्यञ्जन-  
 विशिष्टत्व. स्वघटितपादविशिष्ट[?]पादघटकत्वान्यतरसंसर्गेण । प्र. वै. स्व-  
 घटक व्यञ्जनप्रापावानधिकरणत्व म्बघटकत्वाभ्याम् । द्वि. वै. स्ववृत्ति-  
 व्यञ्जनत्व व्याप्यजातिमत्व. स्वाव्यवहितपूर्ववर्तितावच्छेदक स्वरत्वावा-  
 न्तरजातिमदूर्णाव्यवहितोत्तरत्व. स्वाव्यवहितपूर्ववर्तितानयच्छेदक व्यञ्जन-  
 ताव्याप्यनान्यवच्छिन्नाव्यवहितोत्तरत्वापावयत्व. स्वाव्यवहितोत्तर स्वा-

विशिष्ट स्वराव्यवहितपूर्वत्वैः । वै. स्ववृत्ति स्वरत्वव्याप्यजातिपत्त्वं  
स्ववृत्तिन्दस्वत्वं दीर्घत्वान्यतरवस्त्वं, स्ववृत्तित्वाभावनद्वर्माभाववस्त्वैः । वृत्तिं  
त्वाभावप्रतियोगितयोरवच्छेदकमम्बन्धश्च स्वावच्छिक्षाव्यवहितोत्तत्वम् ।  
तृ. वै. स्वघटितत्वं स्ववृत्तित्वाभ्याम् । वृ. प्रथमविशिष्टयघटकसंमर्गा-  
भ्याम् । सर्वं चेदं सहृदय हृदयावर्जकत्वेन विशेषणीयम् ॥ चेतोद्रवमया  
द्लादव्यञ्जकानां मध्यवृत्तिमुपेयुपां टवर्गमिन्नानां स्ववर्गान्त्यष्टर्णफ्रान्त  
मूर्धां वर्णानां रचनया सम्भोगशृङ्गारोचितं माधुर्यं गुणः क्षुतिपात्रेणान्य  
स्थावगम्यमानतया प्रसादोऽपि । गुणत्वं च रसस्योत्कर्पस्त्वे सति तद-  
व्यभिचारि स्थितित्वं, रसगदं च रस्यत इति योगेन भावादीनामपि रसल-  
ग्राहकम् । युक्तिश्वात्र लक्षणम् बुंजगतत्वसमभासित्याश्वयेन तपः पुंज  
विशेषत्वस्य सिद्धेः । तदुक्तं चन्द्रालोके “युक्तिर्विशेषसिद्धिश्वेद्विचित्रार्थान्ति  
रान्वयात्,, इति ॥ लाटी गीतिः “द्वित्रिपदा पांचाली लाटीया पञ्च सप्त वा  
यावत्, शब्दाससमासवन्तो, भवति यथाशक्ति गौदीया,, इत्यभिधानात् ॥  
गीतिकावृत्तम् “आर्या प्रथमर्धमम् यस्या अपरार्धमाद् हांगीतिम्,, इति  
केदारभट्ट भाषितलक्षणात् । प्रकृतभावातुकृत्येन नाश दत्तवृत्तता शद्वित्तुं  
शरणा । अत्रैतन्मङ्गलश्लोकस्याख्यायिकेतिवृत्तानाक्षेपस्त्वेऽपि न क्षतिः,  
नान्यादाषेव तज्जिपमात् कर्यचित्प्रहृतेऽपि सम्भवापि । इदादौ भगवः ॥  
“मादिगुरुः,, इतिलक्षणात् “भेन्दुर्यशोनिर्मलम्,, इतितत्फलशृतेनाश्रि गण  
दोपः । सर्प च रेत्तानक्षरं, गुरुर्वासरः, देवता जातिः, हृष्टवोर्णः,  
प्रभावती पुरी, हुमं फरम्, अं भं भगवान्यनम् इतिमनः, इति सर्वं चकु-  
समिति संक्षेपः ॥ १ ॥

चेतोवसुनि वृजमानिनीना मामोषितुं सद्गुलिशालिन् ॥  
वेणुं शयेसन्धिमिवादधानं मान्यं युवानं जगतानमामः ॥

चेतोवसुनीति । समीचीनाभिहिंवलिभिरेववलि ॥३३०८॥

(१) परहारकत्वाच्च, शोभिनीनां, इलेपनिवन्धनतयोपमेयतावच्छेदक् । स्कारेणोपमेये शब्दान्निश्चीयमानस्योपमानतादात्म्यस्य रूपकरूपत्वे ॥१  
तद्विशेषस्य परस्परसापेक्षरूपकसमुदायात्मकस्य सावयवस्य दिरहात् ॥२  
त्मकत्वायोगाच्च केवलनिरवयवरूपकस्य सङ्करः । अतएव ब्रजभिष्म  
देशस्य, ननु कस्य च नैकग्रामस्य । ‘मानिनीनां, रामणीयक मुखानां  
विषयाभिमानवतीनाम् । ननु पानिन्याः । मानसान्येव धनानि चां  
यितुम् । सद्गुलिशालिनीनाभिन्यनेन कार्यकारणभावविधया सौन्दर्ये  
पूर्णतारूप्यं, ताटीनां वसुचौर्येऽतिदुष्करत्वं । तत्र प्रवर्तनेन युनि प्रवीणते  
च ध्वन्यते । चेतोहरणेन च ब्रजमानिनीषु श्रीकृष्णविषयिणी प्रीतिः ।  
अभिमाने सौ-दर्यादिव्यद्वयद्वारा सद्गुलिशालित्वस्योपयोगितया ॥५८७॥  
णीयव्यञ्जय वरापारस्य नेयायिकाभ्युपगतलिङ्गव्यावर्तकेन काव्यविशेषणे  
नोपेतस्य काव्यलिङ्गस्याप्रमत्त्या पुणीदीरितइलेपभित्तिक रूपकानुपाणि  
ततया सङ्कीर्णः परिकराकङ्कारः । वक्तव्यद्विराश्रितत्वस्य “मदीयं धनं न  
केनाप्यपर्वतुशक्यम्,, इत्याव्यभिमाने नाशादेन हेतुतया तथाभूतं काव्यलि  
ङ्गं वा । चेतम्मतेयस्यामभवितया तत्र धनतादात्म्यारोपस्य प्रकृतार्थोप  
योगितया “पर्वेद्यांस पृत्रस्य श्रावं श्रावं वचस्मृशाम् । अभिमन्युसु-  
तोगामा परा मुद्रपवासवान,, इतिरसगङ्गावरोक्तोदादरणउष गगासगः ॥५-  
८

(१) सादग्य । अभिमानस्य न दात्म्यस्य लृपत्वम् । अनेषो “एता मनोरमा रामा,, इत्यादी  
ताति प्रसन्नः ।

) पुरस्त्रादर्शनापादृप्त्यान्तिमर्ति शयोऽस्मि निर्दृप्त्यादाराणा धूदायः । शस्त्रादि  
लृपेन व अर्द्धदृशादृप्त्यादात्म्यस्य “पर्वेद्यांस पृत्रमि दृप्त्यांस एवात् शयादेषः । निष्ठी  
वशाम्भृते,, उपरेष्टु वा तिगम

रेणामालङ्कारः । आगोपस्य प्रकृतवाक्यार्थानुकूलतायां परिणामः, बत-  
प्रात्वे च रूपक्रमित्यनयोर्विशेषः । चौर्यगाधनमनतिदीर्घकृतिरस्त्रविभेद  
स्त्रिसहेति मैथिलमापया विश्रुतस्त्रन्धिः तमिव वंशां करे धार्यन्तम् “श्रेते  
सर्वमस्मिन्नितिशयो हस्तः,, प्रायेण कार्यमात्रस्य कराधीनत्वात्,, इति  
शब्दकल्पद्रुमः । सन्धेवेणुतया सम्भावनाया इव शब्द प्रतिपाद्यमानाया  
स्त्रज्ञावात्मकारविशेष्ययो स्त्रपदाभिधेयतयोक्तविषया वाच्या वस्तृत्प्रेक्षा  
(१)लङ्कारः तयोरनेकत्वात् । सन्देहे कोटिषुगलस्य तास्म्यमिह तु तर्वेक्त्र  
कोटी निर्णीत प्रायत्व मितिविवेकः । एवं भूतमपि ‘जगता परिवल सु-  
बनानाम् न तु जगतः । मान्यम् । अपेक्षिरोधमभिद्यतोऽनुवत्या “आ-  
भामत्वे विरोधस्य विरोधाभासाऽप्यत,, इति कुञ्चलयानन्देऽप्यद्यदीक्षित  
विहितलक्षणस्य विरोधाभासालङ्कारस्य ध्वनिः । केचिच्चु अपेरनभिधाने  
अपि विरोधालङ्कारसेवाङ्गीकुर्वन्ति, तन्मते प्रकृते निरुक्तालङ्कारएवेति वि-  
भावनीयं तादित्यरसिक्कः । युवानं नतु वालं स्थिरिं वा, तेन सद्वलिशालि  
नीनां धनाद्वरणस्यासम्भवात् । जगतां मान्यत्वेन कार्येण भुवननिवृद्धिर्ति  
जनसगुदायनिष्ठा श्रीकृष्णविषयिणीरतिभवित्तिका, वज्रमानिनीषु दर्म-  
पाना तादृशीरतिशशुङ्काररसस्थायिगावरूपा व्यज्यगाना नमाम इत्यनेन  
योत्यमानायां कविगतायां रतो भाषेऽङ्गभादमाध्यत इति ऐयोऽलङ्कार  
रसवदलंकारयोस्त्रेषुषिः । उदितरीत्या परिभाष्य भाषध्वनिः, तेनैव द-  
प्यारोदुपर्दत्युत्तमकाव्यस्य पदवीम् । शब्दालंकारध्वनि संश्लाश विस्तर-  
भयेनाप्रपञ्चता दर्शितदिशा सर्वत्र रवयाऽनीया पर्तीदिभिः । प्रसादोगुणः  
“शैयिन्यं प्रगादः,, इति वामनसूक्तस्य ( १ अधि. ५ माध्याय. ६ चं.)

( १ ) साय स्वतरिस्त्रेषु द्विष्ट अस्मद्विहरा शास्त्रम् ६ द्वितीयुक्त त्रिदाम्य इष्टम् ५८ । इष्ट  
प्रोत्कृतोद्वितीयुक्त ६८ । ६८ ७ द्वा ७५४३ रिषेषु १५३ शद्यामीनि इष्टम् ५८ ।

चेतोवसुनिवृजगानिर्नाना मार्गोगिनु लद्विशालिर्नाना  
वेणुं शयेसन्धिगिनाद्भानं शान्तं युताने उगतां तगामः ॥

चेतोवसुनिर्नानि । मार्गीनानाभिभिर्लिपिरेवत्तिमि ॥५३॥

(१) परहारकत्वाच्च, शोभिर्नाना, इत्येषनिर्वननर्गोपमेयनावन्देत्त  
स्कारेणोपमेये शब्दान्निर्गमानस्योपमाननादान्म्यम्य रूपकल्पत्वं  
तद्विशेषस्य परस्परसापेभरुपहमगुदागात्मकम्य मानयवस्य विहान ॥  
त्मकत्वायोगाच्च केवलनिरवगवरुपकस्य भृत्यः । अतएव व्रजाभि  
देशस्य, ननु कस्य च नैकग्रामम्य । 'मानिर्नानां, रामर्णायक नमुन  
विषयाभिमानवर्तीनाम् । ननु पानिन्याः । मानमान्येव धनाति  
यितुम् । सद्वलिगालिनीनामिन्यनेन कार्यकारणभावविघया सौन्द  
पूर्णतारुण्यं, ताहशीनां वसुचोर्येऽतिदुर्क्षमत्वं. तत्र प्रवर्तनेन युनि प्रवृत्तिः  
च ध्वन्यते । चेतोहरणेन च व्रजमानिर्नायु श्रीकृष्णविषयिणी प्रीतिः  
अभिमाने सौन्दर्यादिव्यद्वयद्वारा सद्वलिगालित्वस्योपयोगितया ८नपे  
णीयव्यङ्ग्य व्यापारस्य नैयायिकाभ्युपगतलिङ्गव्यावर्तकेन काव्यविशेष  
नोपेतस्य काव्यलिङ्गस्याप्रमत्तया पुरोर्दास्तित्वलेपभित्तिक रूपकानुपां  
ततया सङ्कीर्णः परिकराळङ्कारः । वलवद्विशाश्रितत्वस्य “मदीयं धनं ..  
केनाप्यपहर्तुशक्यम्,, इत्याद्यभिमाने जाक्षादेव हेतुतया तथाभूतं काव्यलि  
ङ्गं वा । चेतस्तेयस्यासम्भवितया तत्र धननादात्म्यारोपस्य प्रकृतार्थोप  
योगितया “महर्षेव्यास पुत्रस्य श्रावं श्रावं वचस्मुधाम् । अभिमन्युसु-  
तोराजा परां मुदमवासवान्,, इतिरसगङ्गाधरोक्तोदाहरणइव समाप्तगः प-

( १ ) सादृश्य निमित्तकस्यव तादात्म्यस्य रूपकत्वम् । अतएव “सृत मनोरमा रामा,, इत्यादौ  
नाति प्रसक्ति ।

( २ ) पुरस्कारेणेत्यन्तेनापहर्तुतिप्रान्तिमदति शयोक्ति निर्दर्शनालङ्काराणा व्युदासः । शब्दादि  
त्यनेन प्रात्यशिकाहार्यं गोचरतादात्म्यस्य “मुखमिदवन्द,, इत्यादौ प्रत्यदेशः । निश्ची  
यमानस्त्वेतेनोद्योक्ताया निराप ।

रेणापालद्वारः । आगेपत्त्वं पक्षहत्वास्याद्दनुद्गूलतायां परिणामः, वान-  
यात्वे च स्वप्समित्यनयोर्बिंदेषः । चौर्याधनपतिर्दीर्घाक्षनिरस्त्रविषेद  
स्मिहेति पैथिलपापया विश्रुतस्तन्त्रिः नमिव वैर्णी दारे धारयन्तम् “द्वेने  
सर्वपदिमन्त्रितिशयो दस्तः,, प्रायेण कार्यपात्रम्य वरगार्थानन्वात,, इति  
शब्दकल्पषुपः । मन्त्रेवंणुतया सम्भावनाया इति शब्द ग्रन्तिपापमानाया  
स्सद्ग्रावात्मकारविशेष्ययो स्सदपदाभिषेषतयोक्तविषया वाच्या वर्णन्त्येता  
(१)लद्वारः तयोरनेतत्वात् । रात्मेदै वोटियुगलत्रय गारपमिट तु मन्त्रद्वय  
कोटी निर्णीत प्रायत्वं प्रितिविषेकः । एवं भूतपि ‘जगता परिवर्त्तु  
वनानाम् न तु जगतः । मात्यग् । अपेक्षिणीभाषणिद्वत्तोऽनन्तया “रा-  
भासत्ते विरोपरय विरोधाभासाप्यत,, इति नाम्यन्यानां इष्टादर्शाभिमा-  
यिदितदध्यारय विरोधाभासालद्वारस्य एवनिः । तेजित् शंखरमभिपानं  
इपि विरोधालद्वारगेताङ्गाकर्वन्ति, तन्मते प्राते निःसावद्वारण्येति प्रि-  
भावनीयं तात्त्विक्षिकिः । युदानं न तु तां रपतिं पा, तेन सद्विशाल-  
नीनां पनादरणस्यासम्भवात् । जगतां पात्यत्वेन वायेण दुर्वानिदर्शनं  
जनमगुदायनिष्ठा भीमणिष्ठिर्विष्णीरतिर्गीतिर्गीतिका, तज्जानिर्विष्ठ-  
पाना तादर्शारतिश्यालद्वारस्याभिगादरया त्यर्थपाना नमामि । उद्देश-  
घोत्यपानायां विग्रहाया रत्नौ गार्ड्युभादमाप्यत् इति ग्रेद्याः ॥१४॥  
रमवद्वंसारयोरस्तेष्टिः । वदितर्थीत्या पारिभाष्य भास्त्रादित्, तेष्टि इ-  
प्पारोद्दृष्ट्युत्पादार्थय पद्मीग् । शद्वात्वारारनि रंभताम् ॥१५॥  
भवेताप्यपि चता दर्शितदिशार्थीरत्यर्थात्मार्थोदिमि, इति ग्रेद्याः  
“दीपितयं पनादः,, एवि यामदर्शन ॥ १६॥, १७॥, १८॥,

चेतोवसुनि वृजमानिनीना मामोषितुं सद्गुलिशालि । ता  
वेणुं शयेसन्धिमिवादधानं मान्यं युवानं जगतांनमामः ॥

चेतोवसूनीति । समीचीनाभिस्त्रिवल्लिभिरेववल्लिनिश्चालिना ॥

(१) परहारकत्वाच्च, शोभिनीनां, श्लेषनिदन्धनतयोपमेयतावच्छेष्ट ।  
स्कारेणोपमेये शब्दान्निश्चीयमानस्योपमानतादात्म्यस्य रूपकरूपत्वे ॥  
तद्विशेषस्य परस्परतापेक्षरूपकसमुदायात्मकस्य सावयवस्य विरहात् मात्  
त्मकत्वायोगाच्च केवलनिरवयवरूपकस्य सङ्करः । अतएव ब्रजाभिष  
देशस्य, नतु कस्य च नैक्यामस्य । ‘मानिनीनां, रामणीयक नमुखाना  
विषयाभिमानवतीनाम् । नतु मानिन्याः । मानसान्येव धनानि नां  
यितुम् । सद्गुलिशालिनीनामित्यनेन कार्यकारणभावविधया सौन्दर्य  
पूर्णतारुण्यं, तादृशीनां वसुचौर्येऽतिदुष्कात्वं, तत्र प्रवर्तनेन युनि प्रवीण  
च ध्वन्यते । चेतोहरणेन च ब्रजमानिनीए श्रीकृष्णनिषयिणी प्रीतिः  
अभिमाने सौन्दर्यादिवद्वयद्वयद्वयारा सद्गुलिशालिन्वस्योपयोगितया इनपे  
णीयव्यङ्ग्य व्यापारम्य नियायिकाभ्युपगालिकृव्यावर्तकेन वाव्यनिशेष  
नोपेनम्य क्वाव्यलिङ्गस्यापमन्या दुर्गोर्धारितइतेष्मितिरु रूपकानुपां  
ततया महीर्णः परिकराव्याप्ताः । वच्चवद्विग्नवित्वम्य “मर्दागं प्रतं  
केनाप्यपहर्तुशक्यम्,, इत्याद्यभिमाने वातादेव हेतुनामा तयाप्रतं काव्य  
हुं वा । चेतस्त्वेषम्यापमवित्या तत्र ननादात्म्यागमम्य प्रकृतार्थोऽप  
योगितया “मर्देवर्णात् दुरम्य वृत्तव्यावर्तन्वां वच्चाप्याप्य । गमिपन्तुपु-  
त्वागजा वरा प्रदमवाप्त्वान्,, इतिपगदावतानादादर्शात् समाप्ताः प-

\* ६५० \* ६५१ \* ६५२ \* ६५३ \* ६५४ \* ६५५ \* ६५६ \* ६५७ \*

६५८ \* ६५९ \* ६६० \* ६६१ \* ६६२ \* ६६३ \* ६६४ \* ६६५ \* ६६६ \* ६६७ \* ६६८ \* ६६९ \*

‘रेणामालङ्कारः । आरोपस्य प्रहृतवाक्याधीनुकूलतायां परिणामः, वत-  
यात्वे च लूपकमित्यनयोर्विशेषः । चौर्यमाधनमनतिदीर्घाकृतिरस्त्रविभेद  
स्त्रिसहेति मैथिलमापया विश्रुतस्त्रिन्धिः तमिव वंशी करे धारयन्तम् “शेते  
सर्वमस्मिन्नितिशयो हस्तः,, प्रायेण कार्यमात्रस्य कराधीनत्वात्,, इति  
शब्दकल्पद्रुमः । सन्धेवेणुतया सम्भावनाया इव शब्द प्रतिपाद्यमानाया  
स्सद्ग्रावात्मकारविशेष्ययो स्सपदाभिधेयतयोक्तविषया वाच्या वस्तूप्रेक्षा  
(१)लङ्कारः तयोरनेकत्वात् । सन्देहे कोटियुगलस्य साम्यमिह तु तवैकत्र  
कोटौ निर्णीत प्रायत्व मितिविवेकः । एवं भूतमपि ‘जगता मखिल भु-  
वनानाम् न तु जगतः । मान्यम् । अपेर्विरोधमभिदधतोऽनुकृत्या “आ-  
भासत्वे विरोधस्य विरोधाभासऽप्यत,, इति कुवलयानन्देऽप्यद्यदीक्षित  
विहितलक्षणस्य विरोधाभासालङ्कारस्य ध्वनिः । केचित्तु अपेरनभिधाने  
ऽपि विरोधालङ्कारमेवाङ्गीकुर्वन्ति, तन्मते प्रकृते निरुक्तालङ्कारएवेति वि-  
भावनीयं साद्वित्यरसिकैः । युवानं नतु वालं स्थविरं वा, तेन सद्विलिशालि  
नीनां धनाहरणस्यासम्भवात् । जगतां मान्यत्वेन कार्येण भुवननिवहर्वति  
जनसमुदायनिष्ठा श्रीकृष्णविषयिणीरतिर्भवात्मिका, ब्रजमानिनीषु वर्त-  
माना तादृशीरतिश्शुद्धाररसस्थायिभावरूपा व्यज्यपाना नमाम इत्यनेन  
घोत्यमानायां कविगतायां रत्नौ भावेऽद्भुभावमाथयत इति ऐयोऽलङ्कार  
रसवदलंकारयोसंसृष्टिः । उदितरीत्या पारिभाष्य भावध्वनिः, तेनैतद-  
प्यारोहुपर्वत्युत्तमकाव्यस्य पदबीम् । शब्दालंकारध्वनि संकराश्च विस्तर-  
भयेनाप्रपञ्चता दर्शितदिशा सर्वत्र स्वयमृदनीया पनीषिभिः । प्रसादोगुणः  
“शैयिलयं प्रसादः,, इति वामनसृत्रस्य ( ५ अधि. १ माध्याय. ६ सं.)

( १ ) साच स्वतस्सिद्धे विषयेऽस्मवितया शातस्य सादृश्येतुका तादात्म्य सम्भावना । एषा  
चोत्कृष्टकोटिकस्तदेहः । उत्तद्यत्वम् विषयताविशेष सम्भाषयामीति प्रतीतिदाःशिकः ।

चेतोवसुनि वृजमानिनीना गायोवितुं नदलिशालिनीना  
वेणुं शयेसन्धिमिवादधानं मान्यं युवानं जगतां नमामः ।

चेतोवसुनीति । समीचीनाभिन्निवलिभिरेववलिभिन्नऽभावः ।

(१) परहारकत्वाच्च, शोभिनीनां, इलेपनिदन्धनतयोपमेयतावच्छेदः । स्कारेणोपमेये शब्दान्निश्चीयमानस्योपमानतादात्म्यस्य रूपकरूपत्वे (२)  
तद्विशेषस्य परस्परसापेक्षरूपकममुदायात्मकस्य सावयवस्य विरहात् मान-  
त्मकत्वायोगाच्च केवलनिरवयवरूपकस्य सङ्करः । अतएव ब्रजाभिष-  
देशस्य, नतु कस्य च नैकग्रामस्य । ‘मानिनीनां, रामणीयक उखाने  
विषयाभिमानवतीनाम् । नतु पानिन्याः । मानसान्येव धनानि चोरा-  
यितुम् । सद्वलिशालिनीनामित्यनेन कार्यकारणभावविधया सौन्दर्य-  
पुर्णतास्थिर्य, तादशीनां वसुचोर्येऽतिदुष्करत्वं । तत्र प्रवर्तनेन यूनि प्रवीणत्वं  
च ध्वन्यते । चेतोदरणेन च ब्रजमानिनीषु श्रीकृष्णविषयिणी प्रीतिः ।  
अभिमाने सौन्दर्यादिव्यद्वयद्वारा सद्वलिशालित्वस्योपयोगितया इनपेष-  
णीयव्यङ्ग्य व्यापासस्य नैयायिकाभ्युपगतलिङ्गव्याख्यात्वं केन काव्यविशेषणे  
नोपेतस्य काव्यलिङ्गस्यापसन्तया पुणोदीरितक्लेपभित्तिक रूपकानुप्राणि  
ततया सङ्कीर्णः परिकराळङ्कारः । वलवङ्गिगथितत्वस्य “मदीयं धनं न  
केनाप्यपहर्तुशक्यम्,, इत्याद्यभिमाने भाक्षादेव हेतुतया तथाभूतं काव्यलि-  
ङ्गं वा । चेतस्तैयस्यासम्भवितया तत्र धनतादात्म्यारोपस्य प्रकृतार्थोप-  
योगितया “महर्षेव्यास पुत्रस्य आवं आवं वचस्मुधाम् । अभिमन्युसु-  
तोराजा परां मुदमवासवान्,, इतिरसगङ्गावरोक्तोदाहरणइव समाप्तगः प-

( १ ) सादस्य निमित्तस्थिर्यव तादात्म्यस्य रूपकत्वम् । अतपूर्व “हृष्ट मनोरमा रामा,, इत्यादौ  
नाति प्रसचि ।

( २ ) पुरस्कारेणेत्यनेनापहर्तुतिभ्रान्तिमदति शयोक्ति निर्दर्शनालङ्काराणा व्युदायः । शब्दादि  
त्यनेन प्रात्यशिक्षादार्थं गोचरतादात्म्यस्य “पुरस्मिदगन्ध,, इत्यादौ प्रत्यदेशः । निष्ठी  
यमानस्येत्येतेनोत्प्रेक्षया निरात

रिणामालङ्कारः । आरोपस्य प्रकृतवाक्याथानुकूलतायां परिणामः, अत-  
थात्वे च रूपक्षमित्यनयोर्विशेषः । चौर्यमाधनमनतिदीर्घाकृतिरक्षविभेद  
स्मिसहेति मैथिलपापया विश्रुतस्सन्धिः तमिव वंशी करे धारयन्तम् “शेते  
सर्वमस्मिन्नितिशयो हस्तः,, प्रायेण कार्यगात्रस्य कराधीनत्वात्,, इति  
शब्दकल्पद्रुमः । सन्धेवेणुतया सम्भावनाया इव शब्द प्रतिपाद्यमानाया  
सप्तद्वावात्पकारविशेष्ययो स्वपदाभियेतयोक्तविषया वाच्या वस्तूत्प्रेक्षा  
(१)लङ्कारः तयोरनेकत्वात् । सन्देहे कोटियुगलस्य साम्यमिह तु तत्रैकत्र  
कोटौ निर्णीत प्रायत्वं प्रितिविवेकः । एवं भूतमपि ‘जगता मखिल सु-  
वनानाम् न तु जगतः । मान्यम् । अपेक्षिगोधमभिदधतोऽतुक्त्या “आ-  
भासत्वे विरोधस्य विरोधाभासाऽप्यत,, इति कुषलयानन्देऽप्यद्यदीक्षित  
विहितलक्षणस्य विरोधाभासालङ्कारस्य ध्वनिः । केचिच्च अपेक्षनभिधाने  
अपि विरोधान्द्वारमेवाङ्गीकुर्वन्ति, तन्मते प्रकृते निरुक्तालङ्कारप्रवेति वि-  
भावनीयं रात्रित्यरसिक्कः । युवानं नतु वालं स्थविरं वा, तेन सद्विलिशालि  
नीनां धनाद्वारणस्यासम्भवात् । जगतां मान्यत्वेन कार्येण भुवननिवहवति  
जनसमुदायनिष्ठा श्रीकृष्णविषयिणीरतिर्भवात्मका, वजमानिनीषु वर्त-  
माना तादशीरतिशशुङ्काररसस्थायिभावरूपा व्यज्यमाना नमाम इत्यनेन  
घोत्यमानायां कविगतायां रतो भावेऽङ्गभावमाथयत इति मेयोऽलङ्कार  
रसवदलंकारयोस्संस्कृष्टिः । उदितरीत्या पारिभाष्य भावध्वनिः, तेनैतद-  
प्यारोद्गुर्मर्दत्युत्तमकाव्यस्य पदनीयृ । शब्दालंकारध्वनि संकराथ विस्तर-  
भयेनाप्रपञ्चता दर्शितदिशा सर्वत्र स्वयमृदनीया पनीषिभिः । प्रसादोगुणः  
“शेखिल्पं प्रसादः,, इति वामनसूत्रस्य ( ६ अधि. ५ पाद्याय. ६ सं.)

( १ ) सान् स्पतरिसरं विष्येऽसम्भवितया शात्रय सादृश्येतुवा । तादृश्यं सम्भाषना । ६ पा-  
दोऽक्षयोऽक्षरान्देशः । उत्तरात्मा विष्यताविशेष सम्भाषयामीति प्रहीतिषाशिषः ।

(१४)      ❁ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❁

“वन्धस्य शैथिलयं शिथिलत्वं प्रसाद,, इति वृत्तिस्वरसात् । वैदर्भीं रीतिः  
“ अष्टत्तिरत्प वृत्तिर्वा वैदर्भीं रीतिरिष्यत,, इति प्रतिपादनात् । गीतो  
वैदर्भ्यादि सपाख्या च विदर्भगोडपाञ्चालेषु देशेषु तत्रत्यैः कविभिर्यथा-  
स्वरूपमूपलब्धत्वात् “ विदर्भादिषु दृष्टत्वात्तसपाख्या,, इति हि वापन  
सूत्रम् ( ? मे.अधि. २ याध्याये १० प्रम् ) । इन्द्रवज्राद्युतं “ स्यादिन्द्र  
वज्रायदितौ जगौग,, इतिलक्षणादिति ॥ २ ॥

नवीन विलसत्प्रभश्रितवलाक कादम्बिनी  
विडम्बन सितोरग स्नगति दीप देहद्युतिः ।  
पिशङ्ग फणि सङ्ग्निनी शिरसि यौवनोङ्गासिनी  
मनागपि मदन्तरे स्फुरतु धूर्जटेः कामिनी ॥ ३ ॥

नवीनेति । वृष्टि प्राकालिक्या विलसत्प्रकृष्टकान्तेः उपर्गस्य वाचक-  
त्वेन(१)प्रकृष्टत्वस्य विशेषे हेतुतया काव्यलिङ्गम् । वक्षपड़क्तिश्रिताया, नतु  
केवलाया, अतएव रसगङ्गाधरोक्ते “वामाकलिप्त वामाङ्गो भासते भाल  
लोचनः । शम्प(२)या सम्परिष्वक्तो जीमृत इव शारद ” इत्यत्रेव  
प्रतिविम्बोपादान विरहकृता नोपमायां न्यूनपदता । जलदमालाया अनु-  
करण कृता घवला-हि मालयेन दीपा देह द्युतिर्यस्या इत्यर्थः । अत्र स्वत-  
स्विद्वेन वस्तुनोपमालङ्गारोऽति स्फुटतया वोध्यते, सा च यथोक्तकाद-  
न्ति ॥ ३ ॥ निरूपिता । तादेशेन चालङ्गकारेण सपदि तापशान्ति कारित्वं

१ ) उपर्गस्य वाचकत्वं भूख्याविशिष्ट घटादेष्टपदार्थत्वं प्रत्याख्यानयुक्तिभिर्यव-  
स्थापनीयम् ।

इयामङ्क शालित्वञ्च भावपोषकं व्यज्यते । “खर्वमूर्त्ति नीलवर्णम्” इत्येक जटाध्यान प्रस्तावे तारा पारिजातवचनात् । न च तयोर्धर्मस्थाहिमाल्य व लाकात्मकस्य पार्थक्यात्साधारणत्वाभावेन कथड्कारमुदितालड्कारो गम्ये तेति॒श्चाच्यं, “कोमलातप शोणाभ्र सन्ध्याकाल सहोदरः । कपाय वसनोपा ति कुड्कुमालेपनो यतिः” इत्यादाविव प्रकृतेऽपि निरुक्तधर्मयोर्विम्बप्रति विम्बभावस्य ऐदनिश्चयेऽपीच्छयैकत्वेनारोप रूपस्य सत्त्वा “साधारण धर्मस्थ क्वचिदनुगामितयैक्य रूपेण निर्देशः विम्ब प्रतिविम्बभावो वा दृष्टान्त वत्,, इत्यलड्कारमवर्वस्वकारोक्तेस्वसाजात्य स्वतादात्म्य स्वाभेद विपयकाहार्यं ज्ञातगोचरत्वान्यतम् सम्बन्धेनोपमानगतधर्मं विशिष्टधर्मवत्वं स्योपमानसाधारण धर्मवत्वं परिष्कृतस्योपमेये सद्भावात् । न च स्ववृत्तिं धर्मवत्वं स्ववृत्तिं धर्मसदृशं धर्मवत्वान्यतरेणोपमानविशिष्टवस्यैवोपमाप्रयोज कत्वपास्तां कृतं क्षिष्टकल्पनयोदीरितयेति साम्प्रतं, सादृश्यस्य निमित्तं सञ्चयपेक्षत्वेन तत्प्रवेशेऽनवस्थानात् साधारणधर्मेणोपमानोपमेययोस्तादात्म्य प्रतीति कृतस्यव चास्त्वस्योपमायामिष्टवेनान्तरेण धर्मयोरभेदाध्यवसायं तदुपपादनासम्भवात् । नचैव भप्युपमानोपमेय वृत्तिं धर्मस्य साधारणत्वेन तदनुपत्तिर्निरुक्तान्यतम् सम्बन्धेन धर्मविशिष्टधर्मस्य तथा त्वादित्यलमलड्कार मीमासयेति । देव्यास्त्रिता हि माल्यवत्त्वञ्च “स्फुरन्तीं लसच्छ्रैत नागेन्द्रधाराम्” इति ब्रह्मसंहिता प्रमाणयति । पिशंगेति । शिरसि पीतेन फणिना संगता, नतु साधारणेन भुजंगमेन । अयमेव चाक्षोभ्य कृपिः, तथा चैकजटा प्रकरणे नाल तन्वे “मौलावसोभ्यभृपिताम्,, इति । यौवनोद्धासिनीति णिनिप्रत्ययेन श्रीलप्रतिपादकेन यौवने सार्वकालिकत्वम् उतातुभासस्य शरीरमात्रे मातुमशक्तत्वेनोद्दमनात्तदतिशयोव्यज्यते । ईपदपि तादृशी, “धूर्जटेः,, धुरस्त्रैलोवयचिन्ताया ‘जटिः’

(१६) श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम्

संघातो यत्र, तस्य कामिनी, एतेन देव्यापि वैलोऽय चिन्ता समुद्रो  
थोत्यते “स्तीणां हि साहचर्यन्त्वेतांसि भवन्ति भर्तृ मटशानि । महुरा-  
पि मूर्च्छ्यते विष विटपि गमाश्रिता वर्णी,, इति यर्थान्तरन्यासालङ्कार  
प्रकरणेऽभिधानात् । ईषदपि स्फुरणस्य विधिना प्रार्थनयेष्ट दावृत्वं, धूर्जटै  
कामिनीत्यनेन शिव विषयिणी गतिस्तत्राभिवृज्यते । अन्य कामिन्यपे  
क्षया वैधर्म्यं प्रतिपादनेन व्यतिरेकालङ्कारः । पुराविहित व्यङ्ग्यार्थं  
जीवितस्य तावश कामिनी विषयक रत्यात्मभावस्य प्राधान्येन ध्वननात् भा-  
वध्वनिः तेन चोत्तमकाव्यता । रसस्य प्रधान व्यङ्ग्यभावाङ्गतया रसवदलंका-  
रः । ओजोमाधुर्यैच्चगुणः “गाढवन्धत्वमोज,, इति वामनसूत्रात् (३ वधि  
१ अ० स० ५ ) पूर्वार्द्धे गौडी तृतीय पादार्द्धे पाञ्चाली ततश्च वैदर्मी  
रीतिः असमासातुरी योर्धु समासा च यथेप्सितम् । तदेकान्त समासा च  
विज्ञेया सा यथा क्रममिति गुणरत्ने साहित्यमारे तागां लक्षणात् ॥ वस्तु  
तस्तु “प्रधानेन व्यपदेशाभवन्ति,, इतिन्यायाद्वौडी रीतिः पादद्वयविषयक  
तया व्यपदेष्टुमुचिता इतरीत्यपेक्षया व्यापकत्वेन प्राधान्यादिति ॥ पृथ्वी  
वृत्तम् एतस्य पादेषु ( १॥१॥१॥१॥१ ) एवं क्रमेण लघुगुरुवर्णाना  
मुचितानां न्यासादिति ॥ ३ ॥

मुनि प्रमदनं रामोदीपनं वा सुमाकरम् ।  
वीजं कवीनां वंशस्य प्राचेतसमुपास्महे ॥ ४ ॥

लक्ष्मीश्वरीचरितारूपा माख्यायिकां चिकीर्षुः कविस्तदङ्गतयाऽन्य  
कविवृत्तेषु वर्णनीयेषु प्रथमकवित्वेन वाल्मीकिमेवादौ वर्णयति मुनिप्रमदन  
मित्यादिना । आख्यायिकालक्षणं दर्पणे यथा “आख्यायिकाकथावत्स्या  
२०. २०१०. अस्यामन्यकवीनाऽच्चवृत्तं पर्यं कवचित् कवचित् ।

कथांशानां व्यवच्छेद आभास इति कथयते । आर्योवक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा  
येनकेनचित् । अन्यापदेशेनाभासमुखे भाव्यर्थसूचनम्,, इति । कथालक्ष-  
णमपि तत्रैव “कथायांसरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम् आदौपद्यै नैमस्कारः  
खक्कादेवृत्तकीर्तनम्, इति । आदिनाऽऽदिना चरित्रस्य द्वितीयेन सज्जनस्य  
परिग्रहः। आभासेत्युपलक्षणं लभ्मोच्छवासोष्ठासाभिधानानाम् । वक्त्रलक्षणं  
वृत्तरत्नाकरे “वक्त्रं नाथान्नपौस्पातामव्येष्येऽनुष्टुप्खि रूपातम्,, इति(१) ।  
अपरवक्त्रलक्षणं काव्यादर्शविवृतौ“अयुजिननरलागुरुस्समे तदपरवक्त्रमिदं  
नजौजरौ,,[२]वैतालीयं पुष्पिताग्राज्ञ्वेच्छन्त्यपरवक्त्रम्,, इति । वैताली  
यपुष्पिताग्रयोर्लक्षणं छन्दोमञ्जर्यां “पङ्कविष्मेऽष्टौ समेकला स्ताश्चसमेष्यु-  
नों निरन्तराः । न समात्र पराथिताकला(३) वैतालीयेऽन्तेरलौगुरुः । “अयु-  
जिनयुगरेफतोयकारो युजिनुनजौ जरगाश्चपुष्पिताग्रा,, इति । केचित्तु  
पुष्पिताग्राभिवं छन्दोपच्छन्दसिकमेवपन्वते, तदेतद्वृत्तरत्नाकरस्यनारा-  
यणीयव्याख्यायां प्रतिपादितविवृत्यस्तरेण । यत्तु “वृत्तमाख्यायतेयस्यां  
नायकेनस्वचेष्टितम्,, इतिवचसा ॐख्यायिकानिरूपण प्रकरणीयत नाय ॥  
एवाख्यायिका पभिदध्या दित्युक्तं, तज्जयुक्तम्, “अपित्वनियमोदृष्टे स्त-  
त्राप्यन्ये रुदीरणाद्,, इत्यार्थतमदृष्ट्याचार्थवचन प्रामाण्यात् । एतेनवै-  
तिवृत्तस्य नायका तुपनिवद्धत्वेषि नक्षत्रिलक्षणस्य । अत्र महाराज लक्ष्मी-  
श्वर सिद्धो नायकः, नायिकाच तदीयमहिषी लक्ष्मीश्वरी देवी । तच्चरित्र  
प्रितिवृत्तम् । अङ्गतया तयोः पूर्वजानामपि चरित मुपन्यस्तं घ्येऽनया

(१) आदशरामसगणौनस्यातौरुपीयाइरायण स्यात्, तदतिरिक्ताधरलाहृष्टपानिरेसिः।  
सुत्तर्दि अदाशरपादकेऽन्दसि ववद नामतद्वति ।

(२) विष्मेपादे वृत्तेण नगलौरगणोद्गुरुस्त, समपादेनजस्तया तदेतदपरवक्त्रम् ।

(३) ‘समा, द्वितीयाप्रभूति इति पराप्रिता न वापि ।

तयोरेव प्रशस्ततां वोधय द्रिति कविमाश्रितां परिपुष्णाति, सोऽय पर्ष  
शक्तिमूळकोऽसंलक्ष्यक्रमः प्रवन्धेधवनि भावस्य । उक्तेचचरित्रे क्वचित्  
शृङ्गारस्य, क्वचित् वीरस्य, क्वचित् करुणायाः क्वचित् अद्भुतस्य, क्व-  
चित् भयानकस्य क्वचित् शान्तस्य व्यञ्जकतया रसपदेनभावस्यापिग्रहण-  
दन्ततस्तद्वज्ञकत्वेन सरसत्वोपपत्त्याऽख्यायिकालक्षणावयवसङ्गगतिः  
इतराण्यपि विशेषणानि स्फुटतया, स्वयमेव समन्वेयानि ॥ वासुमाकर पिति  
बाशब्द सादृश्यमभिधते श्रौतोपमाळङ्कारविचारे “यथेववादिशब्दाना-  
म्,, इति प्रदीपेदर्शनात् । सुमाकरं वसन्तमिव मुनीनां प्रहर्षविह महड्कार-  
कारणंवा, अनेनैवत्रऽप्योऽभिमन्यन्त इति सर्वेभ्यस्तेभ्यउत्कर्षेभावाङ्  
तया व्यञ्यते, “प्रमदससम्मदे मत्त,, इतिविश्वः । परत्र मुनीनां तदाख्य  
विटपिनां प्रमदनं विकाशकं, प्रमदस्य चेतन धर्मतया वाधेन विकाशे जह-  
त्स्वार्थलक्षणायां वाच्यार्थस्यात्यन्ततिरस्तुतया तदतिशयो ध्यन्यते, भ-  
वतिच वसन्ते मुनिवृक्षेषु प्रसूनोद्रमः “मुनीनापयुत्कलिकाकरे,, इति  
वासवदत्तायांतस्यवर्णनात् । विष्णवशोभाभिवर्धनेन तत्रवासिनांतेपां हर्षपद  
पितिवा ॥ ‘रामस्य, गमचरिस्योदीपनं गमायणाभिध महाकाव्यविरचना-  
त्पकाशकं, ‘रामेण, रामेतिनाम्ना उदीप्यत उदीपनं “कृत्यलयुटोवहुलम्,,  
इति भगवनः पाणिने रत्नशासनात्, विराजमानंवा, मस्तिष्ठेतन राम-  
नामजपेनैव मदर्पित्व पर्मौलेभ इति पौराणिकीकथाऽत्र विशेषा । यद्वा रा-  
मस्य मनोक्षम्य गद्वावतरण विश्वापित्रवृत्त र्तु विलमितादे रुद्धीपनं व-  
र्णयिताम् । अन्यत्र रामाणां रमणीनां कापाभिवर्धनम् । रामंप्रकृत्य-  
“रापदेवाभित्वेतमनोत्तेषु,, इति “रामाऽङ्गना,, इति विश्वप्रकाशः । इप-  
म् च श्रीनी दृगोऽमा अद्गानां चतुर्णा मुपादानात् । एतस्याऽत्र क्षेष्मूळ-  
स्त्रय भूरः । काष्मादर्गेश्वर्येत् शब्दपरिवृत्यसदत्वेन शब्दश्वेष निपित-

## ❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀ (१९)

कतया क्लेषोपमाया अप्रसक्तत्वेनेयं समानोपमा, तद्विक्षणोदाहरणे यथातत्रैव  
 “सरुपशब्दाच्यत्वा त्सा समानोपमा यथा । वालेवोद्यानमाळेयं शाब्दका-  
 नन शोभिनी,, इति ॥ अत्रच प्रतिपाद्यतोपरागेण शब्दस्यैव साधारण-  
 धर्मत्वंवोध्यम् (१७४) पृ०८गड्गाधरे तत्प्रतिपादनात् । नच विद्यमान-  
 स्य शब्दवोधावलम्बनस्यैव तथात्वेनशब्दस्य स्वजन्येशाब्दाभिधे ज्ञाने-  
 ऽभासमानतया नोदितधर्मता सम्भवतीति साम्प्रतं, वैयज्ञनिकवोधेन दि-  
 प्यीकृतस्य शब्दस्य क्वचित्तादात्म्येन क्वचिद्वाच्यतया पदार्थेण शब्दवोध  
 विषयत्वस्यालंकारिकै रूपगमात्, नहिन्यायनयद्वेहाविशाब्दवोधप्रणाली,  
 नवाविद्यमानस्य साधारणधर्मस्याभिधेय तैवेतिनियमः एवंसति नकाप्यनु-  
 पपत्तिः, अतएव “उदेति मविताताम्र स्ताम्रएवास्तमेतिच । सम्पत्तौच  
 विपत्तौच महता मेकरूपता,, इत्यादौ प्रस्तुतस्य विशेषस्य सामान्येन  
 समर्थनात्मके धर्मन्तरन्यासे नकथितपदत्वस्य दोपता प्रसक्तिः, नवा  
 “दयातितिक्षासत्यञ्च युक्तं त्यक्तुं ननुत्तव्या । अपर्वग्न व्यष्टजनानि कथं-  
 स्यु भीमभूमिपे,, इत्यादौ भीमनापधेयेभूमीपतौ व्यद्वयेन भीमभूमिप पदेन  
 तदात्मतयाश्रुते तथाविधेन पदार्थिटकव्यञ्जनेन तदात्मतयाश्रुतानां दयाति-  
 तिक्षादीना मसम्भवस्य कथंस्यु रित्यनेन प्रतिपन्नस्य वाच्यार्थस्योपपादक-  
 तयोक्तयो इशब्दात्मार्थयोर्गुणीभूतव्यञ्जयत्वानुपपत्तिरिति ॥ कवीनां, लोको-  
 त्तर्वर्णनानिपुणानां, वंशएव कुलमेववंशो, पेणुः ‘दीर्घत्वात् तस्य ‘बीजम्,  
 अद्भुत्कुरकारणं, इलेपनिमित्तकसमर्थ्यसमर्थक भावोपेतारोपयुगललक्षणक-  
 मकद्वकारः इलष्टपरम्परितरुपकम् । कविकृद्वकारण मिति वा, कविकृ-  
 लस्य तत्त्वात्मक मिति वा । “बीजं रेतसि तस्येच हेतावरद्वार कारणे,, इति  
 विश्वः । प्रचेतसो ननुसाधारणमुनेरपत्यं प्राचेतसं दात्मीकि मुषास्महे ।  
 भावध्वनिः ॥ ४ ॥

यद्यवन्धकलनं किलसन्तनोति  
 काव्ये कृतौ कुशलतातिशयं सुवन्धुः ।  
 शक्तिस्फुरत्कविनतालि सुवन्धुराद्वि—  
 पद्मेन्द्रहोऽजयदयं नितरां सुवन्धुः ॥ ५ ॥

“ बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्,, इति प्रतीततमा युक्तरूपोक्तिर्वाणस्यैव मा  
 कवैः प्रतिपादयति सर्वतः प्रधानतां, पर मनेनापि इर्ष्वरिते “ कवीनां  
 गलद्दर्पेन्नुनंवासवदंत्या, शक्तयेव पाण्डुपुत्राणां गतयाकर्णगोचरम्,, इत्यभि  
 धानात् तदीयन्द्वायाया निज कादम्बिनीविरचने समुपादानात् तत्पदा  
 नामलङ्घकार निवन्धेषु निर्दर्शनदर्गनाद्व कविकुलकैरवकलाकरं महाकृ  
 पारभ्यमाणै—तद्गद्यकाव्यमसुचितस्तवंतन्निर्मतृषुप्रथानतमसुदक्षमन्या  
 यात्सुवन्धुं कीर्तयति यद्गद्यवन्धेत्यादिना , यदीय वासवदत्ताभिधा  
 गद्यकाव्यस्य ‘कलनं, सामान्य दर्शनं किलेतिनिश्चये, काव्यनिर्पाणे निपु  
 तरतां सम्यक् विस्तार्यति न तु केवलं करोति, यस्यकलनपरि कुशक्ता  
 तिशयं सन्तनोति किमुत तत्समाकलन मित्यर्थस्य प्रतीयमानतया दण्डा  
 पुष्पिकयाऽर्थान्तरापतनात्मिकायाअर्थापत्त्यद्वकृतेऽर्धनिः । सुवन्धुः शोभनो  
 ऽशयेनवा वन्धुस्तस्त्वक्त्यकरणात्कवीनां श्रवणादिनानन्दनत्वेन परेषामर्पाणी  
 सुवन्धुनाम्नि योगरूढत्वं व्यद्वय मभिधयेवावयवहृत्यापि तत्कविप्रत्या  
 कत्वात् । ‘शक्त्या, “नरत्वं दुर्लभंलोके विद्या तत्र सुदुर्लभा, कवित  
 दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा,, इत्याज्ञेयाभिनन्दितेनानुपहसनीयकाव्य  
 कारणतावच्छेदकतयाऽनुमितेन जातिविशेषेणाखण्डोपाधिनावा प्रतिभात  
 नावच्छिन्नाया शशबदार्थयुग्मलोपस्थिते सप्ताधनत्वेन शक्नोत्यनया काव्यं कर  
 मिति व्युत्पत्तिवद्वभ्येनादृष्टा परपर्यायेण संस्कारेण, ‘स्फुरतां’ प्रतिभाशा

लिना, कवीनां नमनान्येव मधुलिह स्तै शोभनं चरणपङ्कजं यस्थ  
तादृशः । सप्तस्तवस्तु विषयं साङ्गरूपकमलङ्गमः । “सप्तस्तवस्तु विषयं  
श्रौताज्ञारोपितायदा,, इति काव्यप्रकाशलक्षणात् । नतुपरम्परितं,  
नतावलित्वारोपमन्तरेणापि चरणे पङ्कजस्यारोपयितुं शब्दयत्वात् ।  
‘अयं, सः, नतु यच्छब्दस्य पूर्वार्धगतत्वेनोत्तरार्थे तदोऽभावेनानुपपत्ति  
रितिचेत्, न, “योऽविकल्पमिदमर्थमण्डकं पश्यतीश निखिलं भवदूपुः ।  
आत्मपक्षपरिपुरितेजगत्यस्य नित्यसुखिनः कुतोभयम्,, इत्यादाविद्यमोऽपि  
तच्छब्द सपानार्थकतायाः प्रदीपादौ व्यवस्थापितत्वात् । सुवन्धु रेत-  
क्षामधेयः । अजयदित्यत्रातीतकाङ्क्षिकोत्कर्षस्य पूर्वोक्त विशेषणानुगुणक-  
तया माळारूपं काव्यलिङ्गम् । इहापि न सपासु पुनरात्तता, विशेष्य  
दाचक पदस्यपश्चादभिधानात् । सत्कविश्रिताभिर्नृपनानुभावेन व्यज्यमा-  
नाभीरनिभिः परिपोपितायाः प्रकृतकविनिष्ठाया स्मृवन्धुविषयिण्णारते  
विच्छिन्नत्विशेषाधायकत्वेनध्वनिः तथा च प्रेयोऽलङ्कारोऽपि । वसन्तति  
लकावृत्तम् “ज्ञेयंवसन्ततिलकं तरसाजगौग,, इतिहि तल्लक्षणम् ॥ ५ ॥

सकलं प्रसादयन्ती विमलतमा धूतविधुमाना ।

नवकामिनीव कविजनशरणा सावाणभारती भाति ॥६॥

सुवन्धुकवेः परस्तादौचित्येन महाकविं वाणं वर्णयति ‘सकलमिति नव  
कामिनीव’ ‘नतु कामिनीव नवा नवयोपिदिव, ‘सकलम्, अशेषं कल्पोपेतं  
वाजनं ‘प्रसादयन्ती, प्रसन्नतां नयन्ती नतु प्रसादितवती प्रसादयिष्यन्ती  
वा, अभिहितं हि दृष्टान्तालङ्कारे दर्पणकृता “अविदितगुणाऽपि सत्कवि  
भणितिः कर्णेषु वपति मधुधाराम् । अनधिगतपरिमङ्गापिहि हरतिदृशं  
पालतीमाला, इति । अन्यत्र ‘सकलं, निखिलं युवानं वा । ‘सकलं, स

‘मधुरध्वनि । भूगणानामित्यर्थविः, पतञ प्रसन्नाप्रयोजके णित्रम् । तादात्म्गेनान्वेति, अतएवपद्वंद्वन्तीतिविद्वितीगा, भूगणप्रणन्कारेनात्म्पन्तीतियाव दिति वा । यदा ‘मकलं, मानलोकनं पुरंवैतदपि णित्रम् पारविशेषणम् अवलोकनेन प्रसादयन्तीत्यर्थः । लातण्यातिशयो व्यष्ट्यते’ “कास्यान्मूलविवृद्धौ शिल्पादाविशमानके । पोडशंगेन चन्द्रस्य कला काळयोः कला । कलं शुक्रे कलोजीणेष्यव्यक्तं पधुरध्वनौ,, इति विश्वकाशः । विमलतमादुश्वत्वादिना शब्दगतेन, अपुष्टार्थत्वादिनाऽर्थातेन, स्वशब्दाभिधेयत्वादिना रमगतेन, उद्देश्यप्रतीतिविद्यातप्रयोजकत्ववृक्षेण दोषेणरहिता, पश्चनानाविधै र्यक्षकर्दमं प्रभृतिभि रङ्गरामे रति निर्मला । अतएव ‘धूतः, तिरस्कृतः । विधो श्वन्दमसां, ‘मानः, उज्ज्वल ताभिमानोयया, चन्द्राधिकसमुज्ज्वलेतियावत् । इतरत्र ‘मान सौन्दर्याभिमानः’ वियोगिकलेशावहत्वेन सकलप्रसादकत्वस्य कलङ्कितया विमलतमत्वस्य विधौविरहात् कविजनशरणत्वं साधारणधर्मसङ्घावाहस्यसाहश्ये निरुक्तनिपित्तको व्यतिरेकालङ्कारः क्लेषसंकीर्ण इत्यनयोस्सङ्करः । व्युत्पत्ति वैशद्योपयोगि भूयोवलोकनविषयतया परत्रवर्णनीयतया कविजनस्यशरण भूता । यदा कविजनएवशरणं यस्या इत्यर्थः, प्रभवन्ति च विलोकितवात्स्यायनीयाः कवयएव नवकामिनौ रक्षितु मित्याश्रयः । ‘सा वाणभारती, प्रसिद्धा ईर्षचरितकादम्बिनीरूपा वाणस्य सरस्वती । अत्र च तच्छब्दस्य प्रतिष्ठार्थकत्वेन “कला च साकान्तिपतीकक्षावतः,, इत्यत्रेवनयच्छब्दापेक्षा, प्रकान्तं प्रसिद्धानुभूतव्यतिरिक्तार्थकस्यैवतदस्तदपेक्षणात् । इह पूर्वार्धस्थितयो विशेषणयो व्यतिरेकपोषकत्वेन तदन्तिके कविजनशरणे त्युपादानं व्यतिरेकाङ्गत्वविभ्रमावहतया नोचित पिति विधुकामिनी भारतीनां साधारणधर्मता प्रतिपत्तये द्वितीयार्थे तदवस्थापनं तथेति नापदस्य

पदत्वदोप प्रसङ्गः । प्रधममियं कामिनी तत्रापि नवीना इतीदमीयो पम-  
याऽति रूपेणीयत्वं वाणभारत्यां व्यज्यते । भावध्वनिः । उद्दीतिकाह-  
तम् “आर्याशकलद्वितये विषर्णीते पुनरिहोद्गीतिः, इतित्तुक्षणम् । न  
च तुरीयचरणे सप्तदर्शवसन्तिमात्रो इतिनोक्तलक्षणेन गत मितिशङ्ख्यं,  
पादान्तस्यलघोर्गुरुत्वस्य “गन्ते,, इति पिङ्गलसुत्रेण प्रतिपादनात्, अत  
एव पारिजातप्रणाटक इन्द्रायकुपितस्य वैनतेयस्योक्तो “सिन्दूरपूरकृत  
गंगिकरागशोभे शश्वन्मदसूचणनिर्झरवारिपुरे । सहग्रामभूमिगतमच्छुरेभ-  
द्गुम्भकृटे मदीयनखराशनयो विशन्तु,, इत्यत्रनवसन्ततिलकाळक्षण-  
क्षतिः, इति ॥ ६ ॥

शुद्ध मतिभेद ममृतप्रकृति श्रेयोमनीष मतिहृद्यम् ।  
परमार्थसत्प्रवृत्ति ब्रह्मात्मा वस्तु सज्जनो जयति ॥७॥

ब्रह्मामाधारणधर्मपदर्शनेन तदात्मतया सज्जन माख्यायिकाङ्गतयावर्णयति  
शुद्धमिति । निर्मलमानसं, परत्र मत्त्वादि गुणत्रयोपेतया विच्चित्रानेकश-  
क्तिशालिन्या ऽधितिघटनापटीयस्या सदस्त्वा परिवर्चनीयया ऽनादिभाव  
रूपत्वेसत्तिहाननिवर्त्यया भ्रमोपादानभूतया ऽहमज्ञोनजानामीति प्रतीति  
साक्षिण्या “विवादपदं प्रमाणज्ञानं स्वप्राप्तभावातिरिक्त स्वविषयावरण स्व  
निवर्त्य स्वदेशगतवस्त्वन्तर पूर्वकम्, अप्रकाशितार्थप्रकाशत्वा दन्धकारे प्रथ-  
मोत्पन्न प्रदीपमभावत्,, इत्यनुमानेन “रर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं  
ब्रह्मलोकं नविदन्त्यनृतेन प्रत्यूढा,, (८) इति श्रुत्याच सिद्धया ऽभाव  
शानस्प्रति योगितावच्छेदकरूपेण प्रतियोगिज्ञानपूर्वकतया ब्रह्माहंनजाना-  
मीत्यादि प्रतीतेरन्यथोपपादनस्याशक्यत्वेनावश्यंकल्पनीयाया विषयताया-  
निरूपिक्या “एवमेवेषामाया स्वाव्यतिरिक्तानि परिपूर्णानिषेत्राणि दर्श-

यित्वा जीवेशावाभासेनकरोति मायाचाविद्याचस्वयमेवभवति,, इति श्रुता  
सिद्धं मायैक्यया शुद्धपलिनसत्त्वाभ्यां विक्षेपावरणशक्तिभ्यां वा प्रधानाभ्या  
मुपाधिभ्यांकलिपततज्ञेदया ऽविद्ययाऽनवच्छब्दम् । “निष्कर्णं निष्क्रियं  
शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्,, इति ( श्व. ६ अ. ) श्रुते रञ्जनपदस्योक्ता  
र्थकत्वात् । “आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विभागचितिरेवकेवला, इति  
संक्षेपशारीरकानुसाराच्छुद्धब्रह्मणो वाचस्पतिमिश्रोक्तयुक्तेर्जीवस्यवाऽवि  
द्याश्रयत्वमित्यन्यदेतत् । अविद्यायां चित्प्रतिविम्बो विम्बवत्वाक्रान्तं चैतन्यं  
वेश्वरः अन्तष्करणे चित्प्रतिविम्बोजीवः शुद्धचैतन्यं ब्रह्मेति पृथग्विवानि  
मतानि प्रत्यपादिष्ठत सिद्धान्तलेशो ॥ ‘भेदं, विग्रह मतिक्रान्तं विग्रहस्ति  
प्रितियावत् । परत्र सजातीयेन विजातीयेनवा यद्वैतं तदतिक्रान्तं मद्वितीय  
प्रित्यर्थः “एकमेवाद्वितीयं व्रज्य,, इति(छा.वृ.) श्रुतेः । न च द्वितीयस्यसत्त्वे  
ऽसत्त्वेवोभयथाप्यद्वैतंव्याहन्येतेतिशङ्कितुं शक्यं, नहिवयं व्यावहारिकीपरि  
प्रतिपेदामो द्वितीयेसत्तां किन्तु पारमार्थिकीम्(?) । अन्योन्याभाव पृथ-  
कत्वैवधर्म्य भिन्नलक्षणयोगित्वलक्षणस्यचतुर्विधस्यापि भेदस्य “प्राग्लोका  
विनिगम्यत्वं प्रमाणावगर्पभवेत् । अनवस्थितिमास्थातुरचिकित्साविदां  
ता,, इत्यादिभिः खण्डनखाद्ये, प्रत्यक्तत्वप्रदीपिकाया(२)द्वितीयपरिच्छेदं  
विन्नरेण प्रत्याख्यातत्वात् । नचैव द्वृतप्रपञ्चस्य मृपात्वेकथड्कारमम  
ताश्रुत्यादिप्रमाणेनाहंतं वक्ष्यमिद्येदितिवाच्य मादर्शस्थवदनवृष्टान्तेनाह  
तोऽपि गम्याधकन्वस्यादिनसिद्धयादौ व्यवस्थापनात् । न च प्रत्यक्षाः  
ग्रन्थाणानापत्रविरोधः शुद्धं प्रमाणानां तदपेतयावलोयस्त्वात् । युक्त्या  
दयद्वचतन्यद्वकारिषुता इति ॥ यदा ‘शुद्धः, कल्पपापयोजको, ‘मति

(१) प्रारम्भिकद्वचतन्यद्वकारिष्याद्याग्नेदापत्रिमालिति मृदृतमिति न मिद्यप्रिदिग्मा ‘याद्य’  
स्व शब्दः । (२) विदुम् ।

श्री श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ४५

भेदो, शानविशेषो, यस्य, अन्यत्र 'शुद्धया'ऽनवच्छिन्नया 'मत्या, चैतन्येन  
भेद इतरेभ्यो व्यादहारिकोपस्थेत्यर्थः । अन्तःकरण तद्वृत्त्याद्यनवच्छि-  
न्नस्यैव हि चैतन्यस्य ब्रह्मात्मता "नित्यं विज्ञान मानन्दं ब्रह्म,, इति (तै-  
भृ-व- ) श्रुतेः विज्ञानपदेन हि निरुक्तमेवा भिधीयते चैतन्यम् अन्तःकर-  
णावच्छिन्नस्यचतस्य प्रमाणृचैतन्यत्वं, तद्वृत्त्यवच्छिन्नस्यच प्रमाणचैत-  
न्यत्वं, विषयावच्छिन्नस्य च प्रमेयचैतन्यत्वं मायावच्छिन्नस्यचेश्वरत्व  
मित्येभ्यो भेदस्तस्यशुद्धतयेतितात्पर्यम् तदुक्तं "मोहातीतोविशुद्धोमुनिभि-  
रभिहितो मोहसद्क्रान्तमूर्तिः । साक्षीस्वान्तेतदुत्येपतिफलितवपुर्णीयतेऽसौ  
प्रमाता, वृत्त्यारुदः प्रमाणंकलमपिधिपणावृत्तिसंब्यासचैत्यो पाधिर्मोहोत्य-  
शब्दप्रमुखविषयगःस्यात्प्रमेयः परात्मा इति,, स्फुटमेतद्वेदान्तपरिभाषाया-  
मुषि । "भेदो द्वैधेविशेषस्या दुपजापे विदारणे,, इति भेदिनी विश्वप्रकाशो ॥  
‘अमृतस्येद, सुधायाइवानन्दना प्रकृतिः श्रीलंयस्य, अन्यत्र अमृतं मोक्षः  
निरतिशयसुख मितियावत् तदेव प्रकृतिस्वरूपं यस्य “तं विद्याच्छुक  
ममृतम्,, इति (क०२अ- ) “ योवैभूमातदमृतम् इति (छा-७-प्र- ) श्रुति  
भ्याम् । नचैवं मोक्षस्य साध्यत्वाभवेन तसुदिश्य थवणादौ प्रवृत्तिर्नेजा-  
येतेतिवाच्यं, सिद्धत्वेपितस्यासिद्धत्वभ्रमेण तदुपपत्तेः । दृष्ट्यक्लोकेऽपि  
विस्मृतस्वकण्ठातसौर्वण्डभूषण स्तदवास्येप्रवर्तमानः । ननृक्षुखस्य मो-  
क्षत्वे प्रमाणाभाव इतिचेन्न, “वृह्मविद्वैवभवति,, इति (तै-) श्रुतेः । यतु  
वैषयिकानन्दस्य मुक्तित्वमुक्तं, तत्र मुक्तिदशायां भेदापत्तौ “यत्वस्य-  
सर्वमात्मैवाभूत,, इति (वृ.) श्रुति विरोधो दुपरिहरप्रस्यात् । किञ्च-  
तत्राभवेनशरीरस्यतज्जन्यमात्रमुदितानन्दो नोत्पत्तुमीष्टे, नचतत्रशरीर-  
मपि कल्पयितुंशक्यम्, “अशरीरंवावसन्तं प्रियाप्रियेनसृशतः,, इति (छा.)  
श्रुतिहिंव्याकुप्येत । नवालोकान्तरगमनमपि सम्भवतिवस्यविदां, “न-

हम्य चान्तावनकापिति जपेत् समवर्गाद्यै,, इति (१.३) ॥५७॥  
 अत्राऽ अग्ना, निर्वा, चकुनिर्विष्टयैः । निर्वां इत्यग्निर्विष्ट  
 गाइन्यातिमद्युगं गरेष्वरः कामतोऽग्नाऽग्ना यज्ञिनिष्ठाऽग्नाऽग्निष्ठा  
 पश्यदिक् पितिष्ठायिः नवेद्याद्या, तस्यात्तिर्णि । यज्ञग्रन्थाः ॥५८॥  
 पठानग्नात्पाऽग्नरोपगेऽग्निष्ठाऽग्निष्ठाऽग्निः, इति [१.४] ॥५९॥  
 इमृतपठनिर्विष्ट, तत्र पठोऽग्नन अस्मद्गः, पठनिः, पठुत्ताहिः त्वा  
 पारो यस्यगः । हृष्णन्ते त तन्माद्येऽग्निव्यग्नक्षणः यथा आदित्योऽग्नि  
 अग्निपर्णगवरः यजपानः प्रस्तरः, गौवर्तीक इत्याद्यः, साऽग्न्यव्रान्तं  
 कल्येन । परथ 'अमृतं, मुक्तिस्वरूपपवित्रागिता "त्रिविनाशीग्राहरे ज  
 यमात्मा,, इति (३.) अुतेः प्रकृति, रूपादानं निमिच्चंवा, "यतोरा  
 पानिभूतानिजायन्त,, इति (५.) अुतेः । अभिदित्तेनेतत् "जन्मागस्य  
 यतः,, (१.अ.प.पा.२मू.) "प्रकृतिथ प्रतिशा दृष्टान्तानुपरोधात्,, (२.अ.  
 ३.पा.सू.) इति वियासिकमूव्रभाष्येश्वीश्वद्वरपादैः । तयोराद्यद्विविधं विव  
 त्तोपादानत्वं परिणामोपादानत्वभेदात्, तत्रप्रथमं व्रत्यणः विषमसत्ताकं  
 वर्यपत्ते विवर्तत्वात्, द्वितीयन्त्वं विद्यायाः समसत्ताकं कार्यपत्ते: परिणा  
 मत्वात् ॥० श्रेयोमनीषमिति । श्रेयसि पुण्ये श्रेयसी श्रेष्ठावा 'मनीषा  
 मतिर्यस्येत्यर्थः । श्रेयसिकैवल्ये मनीषायस्येतिवा निशेषसुखव्ययोतिका  
 मैहिकी मामुष्मकीमपि दुःखानुषङ्गिणी माकलयन्तः केवलं कैवल्यमेवात  
 दृश माकलयतदर्थं प्रयतन्तेसाधवः, प्रतिपादितञ्च पातञ्जलदर्शनस्य मात्र  
 पादेसर्वस्य मुख्यगौण साधारणं दुःखत्वं "परिणाम ताप संस्कारैर्गु  
 दृच्छिविरोधाच्च दुःखमेवसर्वं विवेकिन,, इतिसूत्रेण, [१५] दुःखविभाग  
 प्रकरणेच न्यायवार्तिककारैः । अन्यत्र श्रेयस्साधनत्वाच्छ्रेयसी मुक्तिकारि-  
 णी, मनीषा ज्ञानंयस्येति "थोतव्यो यन्तव्यो निदिध्यासितव्य साम्भ

त्कर्तव्यश,, इति (४०) “तमेवविदित्वाऽतिमृत्युमेति,, इति [पु० सू०] “ब्रह्मविदामोतिपरम्,, इति (तै०द०१०२) श्रुतिभ्यः । तत्र चतुर्णा श्रवणादीनां प्राधान्यं पूर्वपूर्वपेक्षयोत्तरोत्तरस्य विज्ञेयम् । श्रवणपनननिदिध्यासनेषु प्रथमं प्रधान मितरयोस्त्वारादुपकारक तयाङ्गत्वं प्रितिकेचित् । मोक्षदेहत्वचतस्याविद्यादिसकलदृश्य निवृत्तिद्वाराऽऽसेयं, नचजन्यत्वेन ब्रह्मरूपतामवाप्नु मशकनुवत्या स्तस्याविद्यनाशेऽद्वैतभङ्गः, विनाशेचानवस्थाप्रसङ्ग इतिवाच्यं, तत्त्वज्ञानस्या विद्यादिसकलदृश्याथ्य कालपूर्वत्वा भाव नियमादिति ॥ “पुण्यथेषसी सुकृतं,, “श्रेयोनिःश्रेयसामृतं,, श्रेयान श्रेष्ठः पुष्कलस्यात्, इत्यमरः ॥ ० ॥ अतिहृद्य मुपकारकत्वा त्परमाभीष्टं जनानां, परत्रापि भ्रानन्दात्मकत्वेन, “विज्ञानमानन्दं ब्रह्म,, इति [तै.आ.] “आनन्दोब्रह्मेतिव्यजानात्,, इति [तै.आ.] “एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानिमात्रा मुपजीवन्ति इति (तै.) श्रुतिभ्यः । नचैवम् “आनन्दो ब्रह्मणोरुपंतज्ञमोक्षेपतिष्ठितम्,, इतिस्मृतिविरोधः ! तस्याशश्वत्यपेक्षयादुर्बलत्वात् “ब्रौदुर्मर्वीं सपृष्ठोद्भायेत्,, इति श्रुते “सासर्वा घेष्यितव्या,, इति स्मृत्या विरोधे प्राप्ते श्रुतेः प्रावल्यं स्मृति विरोधाधिकरणे “विरोधेत्वनपेक्षंस्या दसतिलग्नुमानम्, इत्पनेन (न्याय० १३.) भगवता जैमिनिना सिद्धान्तितम् । नचत्यापि “आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्,, इति (क०) श्रुतिविरोधः, गुणगुणिभावसम्पादकस्य समवायस्य “समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः,, इति (व॒अ० पा०) सूब्धभाष्यभामत्यां विस्तरेण प्रत्याख्याततयोत्तश्च रारोपितभेद विषयकत्वात् । मकृतमनुसरामः अन्तःकरणपरिणामात्मकस्य सुखस्य क्षयित्वेन हुःखसम्भवत्वेन च हेषत्वमेव, ब्रह्मणश केवलनित्य निरतिशयसुखात्मतया युक्तमेवाति प्रियत्वम् “सोऽन्वेष्यव्यः सोचिनिश्चासितव्यः,, इति (छा०) श्रुतेः । यदा

प्रस्तुते हृदि मनसिभवं हृद्यमिति व्युत्पत्त्या हृद्यं मनोज, मतिक्रान्तं  
कामं जितेन्द्रिय मितियावत् । इतरत्र हृद्यं ज्ञानादि मनोधर्म भूतं  
परिणामात्मकम् “ काम सप्तङ्गल्पो विचिकित्साश्रद्धाऽश्रद्धा धृति र्था  
हीर्धीर्भी रित्येतत्सर्वं मनएव , , इति “ विज्ञानं यज्ञं तनुते, इति, (३०)  
श्रुतिभ्यां मनस्सेव सुखदुःखाद्यस्त्रियत्वप्रति पादनात् । यथोप-  
तत्क्षेत्रज्ञसाधारणत्वादव्याख्येयं, तथापि ज्ञानसुख दुःखेच्छाकर्तृत्ववन्धा-  
श्रयाहङ्कारतादात्म्याध्यासानधिष्ठानत्वरूपस्यातिक्रान्तपदार्थस्य विवित-  
त्वेन नोक्तापत्तिः, भवतिहि अहंजानामि सुखी दुःखीच्छामि करोमीति  
व्यवहारः । “ स्वान्तं हृन्मानसंमनः,, “ अभीष्टं दयितं हृद्यम्,, इति  
हृद्यं धवलजीरेच हृत्प्रिये हृद्धवेऽपिच , , इत्यमर विश्व प्रकाशो ॥ अथवा  
“ अति हृद्यं ,, प्रशस्तहृद्यम्, एतदेकविधमेव पक्षद्वितयसाधारणम्, इतरे  
प्रपि यद्यपिहृद्य—त्वमात्रमस्ति, परञ्च प्राशस्त्य मस्मिन्नेवेत्याशयः ॥  
यदा ‘हृद्यं, हृदिष्ट कारकम् “ हृद्यं जवनेऽथविषु हृज्ज हृद्धित हृ-  
त्प्रिये,, अतिशब्दः प्रशंसायां प्रकर्षे लङ्घनेऽपिच,, इतिमेदिनी ॥ यदा  
अतिहृत मनोऽतिक्रान्तं, मनोऽगोचर इतियावत् यंज्ञानात्मकम् “ यन्मनसा  
नमनुत,, इतिथुतेः, “ अवाङ्मनसगोचरम्,, इतिस्मृतेः, “ यतोवाचो निव-  
र्त्तन्ते अपाप्यमनसासह,, इतिगीतानिरुक्तेऽथ । साधुपक्षेऽतिहृत यो यशोयस्ये  
त्यर्थः मनसाप्यालोचनानर्ह यशस्क इति विवरणम् “ यशोयः कथितः  
प्राञ्छयो वायुरिति शब्दितः । याने यातरि यस्त्यागे कथित शशद्वेदिभि  
रित्येकाशर कोशाभिधानात्, नचैतस्य ज्ञानार्थकत्वं नायात मितिदेशं,  
“ येगत्यर्था स्तेज्ञानार्था ,, इति वचनेन यानशब्दस्य ज्ञानार्थकत्वस्यान  
पायात, अतएवानते स्सार्वकालिकगमनाभिधायकत्वेऽपि अततीत्यात्मेति  
गिन . पदस्य ज्ञानात्रयवाचकन्व मनेकत्रोपपादितं साधुसप्तस्त्वते ॥०॥

भरमार्थसत्प्रवृत्तीति, परमोऽथैयस्मात् यस्येतिवा, आद्योऽर्थपदं प्रयोजनं परं प्रकृष्टप्रयोजनसम्भादक मिति यावद्, द्वितीये निवृत्तिपरं, साच वाच्य वेष्यात् । सन्, साधुः, नचानन्वयप्रसङ्गः उद्देश्यताया विधेयतावच्छेद-केनावक्तीहत्वा दितिदेश्यं पक्षापचतीत्यादि वाक्यं प्रामाण्यानुरोधेन किञ्चिच्छागस्याप्यपूर्वत्वे विशिष्टस्य विधेयत्वसम्भवेन विधेयाशेऽधिकाव-गाहिन शशांकवोधस्या भ्युपगन्तु मुचितत्वात् । ‘सन्, प्रशस्त इतिवा वेद्यमान इतिवा, मुखीरितिवा, । एतेनै कत्रार्थे सत्पदस्य द्विधोपादाने, ‘रत्कीकाश्रमं भिन्ने सलीलमनिलोवहन,, इत्यादाविव कवे निर्माण सा-सामग्री दारिद्र्यस्योन्नयनेन धोतुर्विमुखतापादनेनच कथितपदत्वस्य दो-पताप्रसक्ति रिति निरस्तम् । एतस्यच समासेऽपि सम्भवेन पददोपतायाः प्रसङ्गे वाक्यदोपतैव कथमाळङ्कारिकैरभि हितेत्यन्या विचारणेत्युपरम्पते ॥ प्रकृष्टावृत्तिः प्रवृत्ति राचरणं यस्य, नहि साध्वो निपिद्माचरन्ति । सती प्रवृत्तिर्यस्येतिवा । ‘परमार्थेसती, परमार्थानुकूला प्रवृत्तिर्यस्येतिवा । परस्य मार्ये सम्पत्तये सत्प्रवृत्ति र्यस्येतिवा । प्रकृष्टाभिधेये ‘सति, व्रजणि प्रवृत्तिर्यस्येतिवाऽर्थः । अन्त्ये साक्षात्कारानुकूलत्वं समस्या वोध्यते । “अर्थः प्रकारे विषये वित्तकारणवस्तुषु, अभिधेयेऽपिशब्दानां निवृत्तौच प्रयोजने,, इति विश्वमकाशः । “सन् साधो धीर शस्तयोः । मान्ये सत्ये विद्यमाने त्रिषु साध्युमयोः स्त्रियामिति गेदिनी । “ॐ तत्स-दितिनिर्देशो व्रजणस्त्रिविधः स्मृतः, इति भ० गीता । परत्र ‘परमार्थसर्वत्, कालत्रयावाध्यं, “तस्यहवा एतस्य व्रजणोनामसत्यम्.. इति (छा०) शुतेः “सत्यंज्ञान मनन्तं ब्रह्म,, इति [तै०] धुतेः, “सञ्जिदानन्दविग्रहम्,, इतिस्मृतेश्च सत्यत्वस्य मिथ्यात्वाभावतया तस्यच वाधितत्वात्मत्वेन निरुक्त रूपत्वात्, धर्ततेच पारमार्थिक व्यावहारिक प्रातीतिकसत्ता भेदेन

प्रस्तुते हृदि मनसिभवं हृद्यमिति व्युत्पत्त्या हृद्यं मनोज, मतिकान्तं<sup>१</sup>  
 कामं जितेन्द्रिय मितियावत् । इतरत्र हृद्यं ज्ञानादि मनोधर्म भूतं<sup>२</sup>  
 परिणामात्मकम् “काम समङ्गल्पो विचिकित्साश्रद्धाऽश्रद्धा धृति<sup>३</sup>  
 हीर्घीर्भी रित्येतत्सर्वं पनएत्र,, इति “विज्ञानं यज्ञं तनुते, इति, (५०)  
 श्रुतिभ्यां मनसएव सुखदुःखाद्यस्त्रियत्वप्रति पादनात् । यथां  
 तत्क्षेत्रज्ञसाधारणत्वादव्याख्येयं, तथापि ज्ञानसुख दुःखेच्छाकर्तृत्ववन्ना-  
 श्रयाहङ्कारतादात्म्याध्यासानघिप्रानत्वरूपस्यातिक्रान्तपदार्थस्य विविक्ष-  
 त्वेन नोक्तापत्तिः, भवतिहि अहंजानामि सुखी दुःखीच्छामि करोमीति  
 व्यवहारः । “स्वान्तं हृन्मानसंभनः,, “अभीष्टं दयितं हृद्यम्,, इति  
 हृद्यं धवलजीरेच हृत्प्रिये हृद्धवेऽपिच,, इत्यमर विश्व प्रकाशो ॥ अथवा  
 “अति हृद्यं,, प्रशस्तहृद्यम्, एतदेकविधमेव पक्षद्वितयसाधारणम्, इतरे-  
 प्वपि यद्यपिहृद्य—त्वपात्रमस्ति, परञ्च प्राशस्त्य मस्मिन्नेवेत्याशयः ॥  
 यदा ‘हृद्यं, हृदिष्ट कारकम् “हृद्यं जबनेऽथत्रिषु हृज्ज हृद्धित हृ-  
 त्प्रिये,, अतिशब्दः प्रशंसायां प्रकर्षे लङ्घनेऽपिच,, इतिमेदिनी ॥ यदा  
 अतिहृत मनोऽतिक्रान्तं, मनोऽगोचर इतियावत् यंज्ञानात्मकम् “यन्मनसा  
 नमनुत,, इतिथुतेः, “अवाङ्मनसगोचरम्,, इतिस्मृतेः, “यतोवाचो निव-  
 र्दन्ते अपाप्यमनसासह,, इतिगीतानिरुक्तेश्च । साधुपक्षेऽतिहृत्यो यशोपस्ये  
 त्यर्यः मनसाप्यालोचनानर्ह यशस्क इति विवरणम् “यशोयः कथितः  
 प्राङ्मयो वायुरिति शब्दितः । याने यातरि यस्त्यागे कथित इशब्दवेदिभि  
 रित्येकाक्षर कोशाभिवानात्, नचैतस्य ज्ञानार्थकत्वं नायात मितिदेश्यं,  
 “येगत्यर्था स्तेज्ञानार्था,, इति वचनेन यानशब्दस्य ज्ञानार्थकत्वरयान  
 पायात, अतएवातते स्सार्वकालिकगमनाभिधायकत्येऽपि अततीत्यात्मेति  
 योगेनात्मपदस्य ज्ञानाश्रयगच्छत्वं मनेकत्रोपपादितं साधुसम्भवते ॥०॥

परमार्थसत्प्रवृत्तीति, परमोऽर्थोयस्मात् यस्येतिवा, आद्येऽर्थपदं प्रयोजनं परं प्रकृष्टप्रयोजनसम्पादक मिति यावत्, द्वितीये निवृत्तिपरं, साच वाच्य विषयात् । सन्, साधुः, नचानन्वयप्रसङ्गः उद्देश्यताया विधेयतावच्छेद-केनावलीहत्वा दितिदेश्यं पक्षापचतीत्यादि वाक्यं प्रामाण्यानुरोधेन किंचिच्चागस्याप्यपूर्वत्ये विशिष्टस्य विधेयत्वसम्बवेन विधेयांशेऽपिकाव-गादिन इशावदवोधस्या भ्युपगन्तु मुचितत्वात् । ‘सन्, प्रशस्त इतिवा वेदमान इतिवा, सुधीरितिवा, । एतेनै कत्रार्थे सत्पदस्य द्विधोपादाने, ‘रत्कीलाश्रमं भिन्ने सलीलमनिलोवदन,, इत्पादाविव कवे र्निर्मणं सा-आपग्री दारिद्र्यस्योन्नपनेन धोतुर्विमुखतापादनेनच कथितपदत्वस्य दो-तापसक्ति रिति निरस्तम् । एतस्यच समासेऽपि सम्बवेन पददोपतायाः रसङ्गे वाक्यदोपतैव कथमालङ्कारिकैरभि हितेत्यन्या विचारणेत्युपरम्यते ॥  
 प्रकृष्टावृत्तिः प्रवृत्ति राचरणं यस्य, नहि साधवो निपिळमाचरन्ति । सती प्रदृच्छिर्यस्येतिवा । ‘परमार्थेसती, परमार्थानुकूला प्रदृच्छिर्यस्येतिवा । परस्य पार्थे सम्पत्तये सत्प्रवृत्ति र्यस्येतिवा । प्रकृष्टाभिधेये ‘सति, वृष्णिप्रदृच्छिर्यस्येतिवाऽर्थः । अन्त्ये साक्षात्कारानुकूलत्वं सम्भवा वोध्यते । “अर्थः प्रकारे विषये वित्तकारणवस्तुपु, अभिधेयेऽपिशब्दानां निष्ठत्वौच प्रयोजने,, इति विश्वप्रकाशः । “सन् साधौ धीर शस्तयोः । मान्ये सत्ये विश्वमाने विषु साध्यव्युमयोः स्थियामिति गेदिनी । “अ॒ तत्स-दितिनिर्देशो वृष्णिविषयः स्मृतः, इति ग० गीता । परतः ‘परमार्थसत्, कालत्रयावाध्यं, “तस्यद्वा एतस्य वृष्णिनामसत्यम्,, इति (छा०) श्रुतेः “सत्यंशान मनन्तं व्रज, इति [तै०] धृतेः, “सञ्जिदानन्दविग्रहम्,, इतिस्मृतेभ्य सत्पत्वस्य गिर्ध्यात्वाभावतया तस्यच वाधितत्यात्मत्वेन निरुक्त रूपत्वात्, वर्ततेच पारमार्थिक व्यावदारिक प्रातीतिकसत्ता भेदेन

त्रिविधासत्तौपनिषदां, तासु प्रथमा ब्रह्मणः, द्वितीया घटादीनां, तृतीया शुक्लिरूप्यादीनाम्, घटः सन्नित्यादि प्रतीतिस्तु व्यावहारिकी मेव सत्ता गोचरयति । नचाकाशादीनांन्यायनयइवे हाऽपि काळत्रितयावाध्यतं “तस्माद्वा एतस्मादात्मनआकाश ससम्भूत,, इति [ तै० ] श्रुतेः “ऐस्माज्ञापते प्राणो मनस्सर्वेन्द्रियाणिच खं वायुज्योति रापश्च पुरुषी विश्वस्य धारिणी,, इति[ ई० ] श्रुतेः तदित्थमेतेषां संक्षेपतस्सृष्टिप्रक्रिया यथोक्तस्वरूपाया मायायाः परमेश्वरीयेक्षण सङ्कल्पप्रयत्नात्मकाभिः एतिभि रपञ्चीकृतानि तन्मात्र पदप्रतिपाद्यानि त्रिगुणान्याकाशादीनि पञ्चभूतानि, तेषु सत्त्वगुणोपेते नैकैकेन यथाक्रमं पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि मिळितैश्वतैरुक्तगुणवद्विर्मनोबुद्ध्य हङ्कारचित्तानि, रजोगुणोपेतेन चैकैकेन यथा क्रमं वागादीनि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि, मिळितैश्वतैरुदितगुणाश्रयैःप्राणश्यः पञ्चवायवः, तमोगुणोपेतैश्वतैः [ १ ] पञ्चीकृतानि भूतानि, तैरेवापञ्चीकृतभूतैः महत्तत्वारूप्यातं हिरण्यग(२)र्भशरीरंपर महङ्काररूप्यात् मस्मदादि शरीरपरमिति द्विविधं परलोक प्रयाण निर्वाहकं पोक्षपर्यन्त स्थायि पनोबुद्धि द्विविधेन्द्रिय प्राणादिपञ्चकसंयुक्तं लिङ्गशरीरं, तमोगुणोपेतैः पञ्चीकृतभूतैश्वतैरुदिशभुवनात्मकं व्रह्माण्डं चतुर्विंश्च स्थूलशरीरंचजायन्ते ॥ नवा परपाणोरपि पुरोदितावाध्यत्व पनभ्युपगमात् तत्रहिक्रियासमयोगस्य चोपपादन मशक्यमेव, किञ्चावयवावयविभावोऽपि दुरुपगपः ममवायानद्वीकारात् अवयवापेक्षयाऽवयविनि गुरुत्वस्याधिकस्य प्रसङ्गात्म तदेतत्पत्ययादि तर्कपाद भास्तयाम् “उभयथापिनकर्मात्मस्तदभावः,,

(१)पञ्चीकारण प्रकाश वद्वचदर्शा “द्विविधाव चिरंकरुधार्यमजातुनः । रस्त्वेतर द्वितीयाये देवदत्तदद्वच पद्मने,, इति ।

(२) द्विगुणपर्यन्त शुर्मिश्रयात्मकं प्रथमो श्रीविष्णुः ।

“ समवायाभ्युपगमाद्वसाम्यादनवस्थितेः,, इत्यादि वैयासिकसुत्र भाष्य व्याख्यानावसरे विस्तरेण वाचस्पतिमिश्रैः । अथवा ‘परमो, नित्यः अर्थः पुरुषार्थो यस्मात् मोक्षजनकज्ञानविषय इत्यर्थः, अर्थादिषु चतुर्विधेषु पुरुषार्थेषु त्रयाणां प्रत्यक्षेण श्रुत्याचानित्यत्वस्याधिगतेः साच “तदधेह कर्म चेतोलोकः क्षीयते एवमेवामूत्र पुण्यचितोलोकः क्षीयते,, इति ( मू० ) मोक्षस्यच नित्यनिरतिशय सुखात्मक ब्रह्मरूपतेति । ‘सत्, यथोक्तस्वरूपं, नतुतार्किकाभ्युपगतेन सामान्येन कालोपाधिसम्बन्धितेनवा सत्त्वेनोपेतं, तयो इसर्वत्र सत्तमदित्यतुगताकारकप्रतीते रूपादकत्वा सम्भवेन सामान्यस्यच कार्य कारण भावस्थाति प्रसक्ततया इवच्छेदकत्वेन साधयितुपश्यक्यतयोच सत्त्वस्योक्त रूपत्वकल्पनाया अयोगात् मन्मतेत्व द्वितीय व्रह्म तादात्म्याध्यासेनैव सर्वब्रोदितप्रतीते रूपादनं सुकरमेवेति ॥ अत एव प्रकृष्टावृत्तिः स्थितिर्यस्यतत् इतरेपान्तु जडत्वेन वृत्तिव्याप्तत्वेनवा किञ्चित्कालावच्छिन्न चित्तादात्म्येनवा स्वातिरिक्त सम्बद्धपेक्षाव्याप्त्य स्वव्यवहारकत्वेनच, स्थितौ प्रकृष्ट विरहात् “सवाएप महानजआत्मा,, इति श्रुतेः ॥ एवंसति व्रह्माभिन्नं सज्जनात्मकं वस्तु जयति । भावध्वनिः । तस्यच श्लेषभित्तिकेन रूपकेण व्यज्यमानाया उपमालडृते ब्रह्मविषयकरतेशाभिव्यक्ति रह्मम् । एवञ्च मेयोळङ्गारोऽपि,, गीतिकावृत्तम् ॥ ७ ॥

काव्यक्रत्वज्ञ वैगुण्य प्रतिपत्ति परायणः ।

न वारणीयः केनापि यातुधानाधिकः खलः ॥८॥

आख्यायिकाङ्गतया खलवृत्तं वर्णयति काव्येत्यादिना, दोषैर्विधुरं गुणा छङ्गारभ्यामन्वितं शब्दार्थोभयंकाव्यम्, ननु दृष्टिरेऽपिकाव्यताया उपगतत्वेन, दुष्टंकाव्य मितिव्यवहारेण, नीरसेऽपि निरळङ्गारेपि वाङ्मयिकसिते का-

(३२) श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम्

व्यत्वस्य महाकवि सम्पदाय सिद्धत्वेन नंतत्प्रकाशोक्तं लक्षणं सम्पवता निवेतु, अत्राहु रुद्धोत्तकाराः विलक्षणास्वादव्यञ्जकत्वस्यैव तत्त्वावच्छन्दे-  
दकत्वाद् दूषितादौतदभावेन नानुपपत्तिः, काव्यं श्रुतं का-  
दिव्यवहारस्य शब्दार्थयुगले काव्यपदशक्ति ग्राहकस्य  
क्यं न काव्यम्,, इतिव्यवहारस्य ७८५ ४.  
काव्यसामान्यलक्षणन्तु च पत्कारित्वेसति  
त्यादौ काव्यत्वप्रसक्तिः दुष्टादपि ९० ।६  
व्याप्ति रिति विभावनीयमेतत् । तदेव चतु-  
त्वाव्यक्ततुः यागः अतादशकाव्ये प्रतुत्व  
तदद्वानां दोषव्यतिरेक गुणालङ्घाराणां  
यणः व्यापारान्तरपरीहारेण तत्रैव  
सम्पादनपरायणः परञ्चासौ  
न केनापिजनेनोपायेनवातथा अ-  
जीवितेन व्यतिरेकालङ्घारेण स्वत  
व्यञ्जयते ॥ ८ ॥

(१) यत्तु रसवतो वाक्यस्यैव ३  
प्रसक्त्यानादरणीयम् । १८५५ २  
, , ५१, “ नैज पापन्धि  
दत्वादिकमिव शब्दमात्रसाधारण-  
नतु “ अन्यस्यान्यार्थक १५५  
। वैलक्षण्य च जातिरक्षणो  
१८५५त्वेन क ,  
तत्र वक्तोक्तिकाराः

भाति ध्रौतविधानमेध्यवसुधोवैदेहदेशो बुधै  
र्यस्मिन् व्यासतनूद्द्वोप्यधिजगावध्यात्मविद्यां सुधीः ।  
तत्राति प्रथितोऽस्ति सोदरपुराभिख्याविभूषान्वयोऽ-  
सुप्याङ्गेऽर्जितदिग्वनेऽवनिसुरस्सर्वोजनुर्वाञ्छति ॥९॥

आख्यायिकावयवतयाऽन्ववायादिकं स्वकीयं कीर्तयति, भातीत्या-  
दिना । ‘ध्रौतविधानैः, धुतिविहित क्रियानुष्ठानैः । ‘मेध्या, पूता “पृतं  
रविन्वं मेध्यञ्च,, इत्यमरः, वसुधा पत्र, सः । तेन प्रकाशनयोग्यत्वं तदा  
ध्रयत्वात्मकवाच्यार्थोपपादकतया गुणीभूतं व्यज्यते । अतएव परिकराल  
द्वारः । ‘विदेह(१)स्य, सर्वीज(२)समाधे रसम्प्रशात् समाधिसाधनस्य  
कृती(३)यां विधां सानन्दाभिधानामासाद्याद्यतया तत्त्वार्थं भूतया मदीय-  
त्वविलक्षणया ममतया च विधुरीकृतस्य, जीवन्मु(४)क्तपदेनाभिधे यस्य  
च, अयं वैदेहः “ तस्येदम्,, इत्यनेनाण् प्रत्ययः । नतुयस्यकस्यचिन्तृ-  
पस्य । देशः, भिधिलाभिधानः । वैदेह्यदेन पुरोदीरितमेव योग्यत्वं ग-  
म्यते । तथाच परिकराङ्गकुरालङ्गकारः, मकृतार्थोपपादकचमत्कारिव्यङ्ग्य  
क विशेष्यवाचक पदत्वलक्षणस्य सज्जावात् “ साभिमाये विशेष्येतु भवे-  
त्परिकराङ्गकुरः । चतुर्णां पुरुषार्थानां दातादेवश्रुत्वुजः,, इति दीक्षितोक्तेः ।

१ भिगत देर तदभिमानोपस्थेतिपोगार्थः ।

२ सम्प्रशाताभि परस्य, ‘समाधे,, धिसमृद्विधिस्यूचिनिरोपस्य, “ योगभित्तवृत्तिनिरोपः”  
इति पातञ्जलदर्शनसुग्रस्यभाष्ये “ सर्वेशब्दप्रत्यात् सम्प्रशातोऽपियोग इत्यारयापते ” इति  
व्याख्यानात्, यक्तिविशितवृत्तिनिरोपस्याति प्रसञ्जकत्वात् ॥

३ तपारि सम्प्रशातस्युक्तिः सवितर्कं सविधारः सानन्दं साहिमहरचेति ॥

४ जीवनुत्तरवराशाङ्कुतामत्यः समातनभिधानान्तर्करागद्विर्विगुकः अदृष्टोत्पादीहतः  
प्रारब्धङ्गमोपभुजानः यिनए समाधिप्रभावाणुगमद्वोस्यमाने वाकादव्यूहेन तदितरव-  
क्तमेसामान्यं यस्यताटुशः ॥

व्यत्त्वस्य महाकवि सम्प्रदाय सिद्धत्वेन नैतत्प्रकाशोक्तं क्लक्षणं सम्भवतीति-  
चेत्, अत्राहु रुद्धोत्तकाराः विक्लक्षणा स्वादव्यञ्जकत्वस्यैव तल्लक्ष्यतावच्छे-  
दकत्वाद् दूषितादौतदभावेन नातुपपत्तिः, काव्यंश्रुतं काव्यमधिगत मित्या-  
दिव्यवहारस्य शब्दार्थयुगले काव्यपदशक्तिं ग्राहकस्य सञ्चावेन “श्लोकवा-  
क्यं न काव्यम्,, इतिव्यवहारस्य शब्दमात्रेक्लक्षणाश्रयणेनानापादनीयत्वात्,  
काव्यसामान्यक्लक्षणन्तु चमत्कारित्वेसति शब्दार्थोभयत्वं तेन नगौरस्ती-  
त्यादौ काव्यत्वप्रसक्तिः दुष्टादपि काव्यादपकृष्ट चमत्कारोजायतएवेतिना-  
व्यासि रिति विभावनीयमेतत् । तदेव चतुर्वर्गमपदत्वात् क्लेशातिशयसाध्य-  
त्वाब्ब्रक्तुः यागः अतादशकार्ये क्रतुत्वारांपस्यायुक्तत्वात् । रूपफालङ्काराः  
तदद्वानां दोषव्यतिरेक गुणालङ्काराणां वैगुण्यस्यासञ्चावस्य प्रतिपत्तौ परा-  
यणः व्यापारान्तरपरीहारेण तत्रैव प्रवृत्तः, राक्षसोऽपियागाङ्ग वैगुण्य  
सम्पादनपरायणः परञ्चासौ मन्त्रादिनावलेन च शक्योवारयितुं, खलस्तु  
न केनापिजनेनोपायेन वातथा अतएव तयोऽधिकः । अत्र रूपफलेषोप  
जीवितेन व्यतिरेकालङ्कारेण स्वतस्मिन्देन खलविषयिणीनिन्दा वस्तुरूपा  
व्यज्यते ॥ ८ ॥

( १ ) एतु रूपवो वाक्यस्यैव कायन्तमुपयनितेविन् तस्य बालप्रिलिखितजलध्रमिष्ठानादाप  
प्रदृशत्यानादर्जनीयम् । रुद्धगताधरुद्धत्वम् यत्प्रतिपादितार्थं निष्यकमारगाल दृष्टव्याप्त  
चदन्द्रान्वायापर्यायं जात्याद्विद्वत्तन्यतानिष्ठप्रतिमनक्तामधेदक तत्त्वमेवाश्य । ऐ  
दन्तादिकृप्ति शब्दमात्रमाघारमितिप्राहु ॥ यतोनिष्पत्तमेवत् । साधिष्ठायशोक्तः ।  
न्तु “ व्यन्यस्य न्य रुद्ध वा व्यपन्ययायोमवगदि । केषेवं वाक्यानि साहित्यदर्शोक्तस्मृ-  
ण । रुद्धरूप न आतिगम्भीरोपायिर्जीवेत्तद्युद्धत्वनक्षानामोपाराम् या । एतो वाक्यो  
निरुद्धरूपरूपेन कायदृशेन विशितु मत्ताय नम्यायक्त्वादिति दर्शनत्वामा  
द्वितीयामध्ये दर्शनेत्वा ॥ ८ ॥

भाति श्रौतविधानमेध्यवसुधोवैदेहदेशो बुधै  
र्यस्मिन् व्यासतनूद्धवोप्यधिजगावध्यात्मविद्यां सुधीः ।  
तत्राति प्रथितोऽस्ति सोदरपुराभिख्याविमूषान्वयोऽ-  
मुष्याङ्गेऽर्जितदिग्वनेऽवनिसुरस्सर्वोजनुवर्च्छति ॥९॥

आख्यायिकावयवतयाऽन्ववायादिकं स्वकीयं कीर्तयति, भातीत्य-  
दिना । ‘श्रौतविधानैः, श्रुतिविहित क्रियानुष्ठानैः । ‘मेध्या, पूता “पुतं  
पवित्रं मेध्यञ्च, इत्यमरः, वसुधा यत्र, सः । तेन प्रकाशनयोग्यत्वं तदा  
श्रेयत्वात्मकवाच्यार्थोपादकतया गुणीभूतं व्यज्यते । अतएव परिकराल  
ङ्कारः । ‘विदेह(१)स्य, सवीज(२)समाधे २सम्प्रज्ञात समाधिसाधनस्य  
तृतीयां विधां सानन्दाभिधानामासाध्याहन्तया तत्कार्य भूतया मदीय-  
त्वविक्लेषणया ममतया च विधुरीकृतस्य, जीवन्मु(४)क्तपदेनाभिधे यस्य  
वा, अयं वैदेहः “ तस्येदम्,, इत्यनेताण् प्रत्ययः । नतु यस्यकस्यचिन्त-  
पस्य । देशः, भिधिलाभिधानः । वैदेहपदेन पुरोदीरितमेव योग्यत्वं ग-  
म्यते । तथाच परिकराङ्गकुरालङ्कारः, प्रकृतार्थोपादकचमत्कारिद्यग्नय-  
क विशेष्यवाचक पदत्वलक्षणस्य सज्जावात् “ साभिपाये विशेष्येतु भवे-  
त्परिकराङ्गकुरः । चतुर्णां पुरुषार्थानां दातादेवश्चतुर्भुजः,, इति दीक्षितोक्तेः ।

१ विगत देह, तदभिमानेऽप्यत्येतियोगार्थः ।

२ सम्प्रज्ञाताभि प्रत्य, ‘समाधे, द्विसमुद्दिश्यस्वृच्चिनिरोपस्य, “ योगभित्तश्चित्तिनिरोधः”  
इति पातञ्जटदर्शनसूक्ष्यस्यभाष्ये “ सर्वशब्दामृतणात् सम्प्रज्ञातोऽपियोग रत्यारप्यते ” इति  
व्याख्यानात्, यत्किधिशित्तपृच्चिनिरोधस्याति प्रसञ्जकत्वाद् ॥

३ तपादि सम्प्रशातस्युविधि, सवितर्क, सविचार, सानन्दः सास्मितरूपेति ॥

४ जीवसुतास्तात्त्वाकृतात्मतत्त्वः सवासनमित्यादानोत्कर्त्तरागाद्येष्विक्तः अदृष्टोत्तादर्पितः  
प्रारम्भमौपमुक्तान् विगत उपाधिसमाप्तापुरागपद्मोस्यमानं दाकायन्द्वयेन तदितरते  
कर्मसामान्य यस्यतादृशः ॥

(३४)

## ❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀

सत्येवं परिकर परिकराङ्कुरालङ्घारयो स्संसृष्टिः । काव्यप्रकाशकृतस्तु  
 ए(१)तमलंकारंनाधिक तयाऽऽतिष्ठन्ते, पूर्वमिहितव्यङ्ग्यक पदत्वक्षणेन  
 परिकरक्षणेन तदङ्कुरस्यापिक्षित तया तज्ज्वान्तभाविसम्भवादितिवि-  
 भाव्यम् । बुधैः, पण्डितैः । नतुएकेनतेन । भाति, दीप्यते । नतुतैरुपर  
 क्षितः केवलमस्ति । बुधेषु दीपनकरणत्वाभिधायकवृत्तीया श्रुत्या प्रकर्ष  
 प्रतीयते, यतोऽपकृष्टैस्ते ग्रामस्य गेहस्यापिवा दीमिर्नेसम्भवति, किमुतजन  
 पदस्य । यस्मिनदेशे सुधीः व्यासस्य अष्टादशपुराणप्रणेतुः भगवदवताररू-  
 पस्य, नतुसाधारणस्य, तथाच पाण्डित्यातिशयोऽर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्यध्व-  
 निः । निरुक्तविशेषणाद्युपेतेवादरायणेऽर्थेव्यासपदस्य क्षणाद्वत्तेराश्रय-  
 णात् । अन्यथातत्पदोपादानवैयर्थ्यम् । अतएव “त्वामस्मिवच्चिमविदुपां  
 समवायोऽत्रिष्ठति । आत्मीयां मतिमास्थायस्थितिमत्रविधेहितत्,, इत्यत्र  
 त्वामस्मिवच्चम्यात्मायपदाना मनुपयुक्तार्थतयोपदेश्यास्त्वोपदेशप्रमाणपरि गृ-  
 हीतत्वात्मकार्थान्तरसंक्रमितवाच्यकतयाऽवश्यवाच्याहिताहितत्वार्थ्य व्य-  
 ज्ञकत्वं काव्यप्रदीपप्रभाया तुरीयोल्लासे प्रतिपादितम् । ‘तनूद्धवोऽपि  
 नतुक्षेत्रजोऽपि शुकाचार्यः, तत्र पितुर्गुणक्षंक्रमणासम्भवात् । किमुतान्यः ।  
 ‘अध्यात्मविद्याम्’ अष्टादशविद्यास्थानेष्वभ्यर्दिततमाम् अतिदुरव्वोधां वेदान्त  
 विद्याम्, नपर मन्य विद्याम् “अध्यात्मविद्याविद्यानाम्,, इति भगव  
 द्वीता । आत्मनीत्यध्यात्मम् “अनश्च,, इत्यनेन अनन्ताद्यच् । अधिजग्नौ,  
 अध्यैषु । पुरोक्तरीत्याऽर्था पत्यलंकारोव्यङ्ग्यः तेनच प्राशस्त्यंदेशस्य तया  
 एवञ्चवर्णनीयतया प्रस्तु तस्य देशस्य बुधकरणिक्या दीप्त्यावैयासक्यादेर-  
 ध्ययनेन वर्णितेनकारणेन तदेशोत्पन्नेकुलेप्राशस्त्यं कार्यभूतं प्रतीयत इति  
 प्रस्तुताद्कुरालंकारः “प्रस्तुतेन प्रस्तुतस्यद्योतने प्रस्तुतांकुर, इत्यभिधानात्

## ❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀ (३५)

पुराकिळवैयासकिः पितुरनुज्ञयाऽप्याय मिथिलायामध्यात्मविद्यां राजपे-  
र्जनकादधीतवा नितिपौराणिकीप्रवृत्तिः। 'तत्, यथोक्तेदेशो । 'अतिमधि-  
तः। विख्याततरः। 'सोदरपुराभिख्यायाः, सोदरपुरेतिग्रामनायधेयस्य, विभृ-  
पाभूतः' नतुभूपणमात्रम्। 'अन्वयः, वंशः। अस्ति। 'अभिजनान्वयो'

इत्यमरः। नतुवंशस्यविभूपातच्चामेति। तेनापिवंशस्य श्रेयस्त्वं द्योत्पत्तेः।  
'असुष्य, यस्यअजितं दिग्बनं तदभिधानोग्रामोयत्, तस्मिन धंगे, एकदेशे  
मर्वः, नमुक्तव्यदेव, 'अवनिहुरः पृथिव्यां देवात्मको ह्विजः, जनुः, जन्म,  
वाष्ठच्छति। एतेनचानुभाव मुखेनसोदर पुरमुकुक दिग्बन ग्रामोपलक्षितरथ  
कुलस्त्रितिव्यायस्त्वद्यज्यते। इमेच्छण्ड्यार्थाः कविनिष्ठे श्रेष्ठत्वे प्रवन्ध-  
धनावद्भाव गामादग्निं। एवमग्रेपिग्राममिति भव तिगर्वया गन्दर्भघृ-  
द्धिः प. स. र. न. प. य. (१) छ. ग. वर्णनां शब्देण पादेषु न्यामात्।  
शार्दूल विक्रीडित्संपृत्तम् ॥९ ॥

अत्रश्रोत्रियसदृणाग्नगणनोवाश्मीसमज्याग्रजे  
कान्तशान्ततमोऽव्यलीकवचनोऽनूचानसुर्यः रुती ।  
विख्यातेश्वरदत्तनामगहितो मिश्रोपनामोदितो  
यत्कीर्तेससकलाकलासितरुचेरव्यापिविद्योतते(जेर्मीयते) ॥१०

अन्ते ते । सोदरपुराग्नवरय दिग्बनग्रामोपलक्षितेऽन्ते 'रांकिषणा, श्री  
कर्मार्हादिग्रामानुप्यानपरायणतां विमलमानसता सामुहार्द एवाद्य  
पटामदिग्रामदितेन पुरातनेन मिथिलालृपतिना एरिहितदेवत शंकिर्देवि

१ धूपर, देवदूष, रामे, शशिर, तुलसीरः । २ उत्तमा, रुद्रा, रुद्र

३ लक्ष्मी, शैवीर, तेजस्वी, रुद्रा, रुद्र, रुद्र ।

पदेन सङ्केतिनानां द्विजवर्णाणां, सद्गुणेषु ‘अग्रा, प्रयपागणनायम्, मः। असौ पथमतोद्विजः, तत्रापि श्रोत्रियः, तेषामपिषतांगणानामेषं गणित, इत्यदसीयमाहात्म्ये किं विशेषतोवक्तव्यम्। ‘ममज्यानां, मद्मां ‘घजे’ समुदाये, नतुकस्याश्रिदेकस्यां तत्र, ‘वार्षी’ नाचोयुक्तिपटः। नतुवाचाटः। ‘कान्तः’ सुन्दरः, मपञ्यावजेकान्त इतिवा, नतु गेहेकान्तः। तेनव सौन्दर्यातिशयोव्यज्यते। ‘शान्ततमः, अतिशयेनशान्तः, ‘अव्यलीकं’ सत्यं प्रियञ्च वचनं यस्य, मः। “व्यलीकमपियाकार्यवेक्ष्येष्वपि” इतिमेदिनी। “अब्लीकमनृतेऽपिच” इतिविश्वः। अथवा ‘शान्तं’, विलीनं, ‘तमः’, अज्ञानं, यस्य, मचासवव्यलीकवचन इति विशेषणयोः कर्मवारय इति। ‘अनूचानानां, वेदेषु तदंगेषु च पण्डितानां विनीतानाऽच, मुख्यः। “अनूचानो विनीतेस्यात्सांगवेदविचक्षणे” इति मेदिनी। ‘कृती’ पण्डितः योग्यश्च “कृतीस्यात्पण्डितेयोग्ये” इति विश्वप्रकाशः। ‘विख्यातेन’ प्रसिद्धेन, ईश्वरदत्तेतिनाम्ना ‘महितः, पृजिनः, अभिषेय इतियावत् माहात्म्यं व्योत्यते, सोऽयमत्यन्ततिरस्कृत वाच्यध्वनिः, अचेतनेन पृज्यत्वस्य वाधात्। यद्वा विख्यात इति पृथगेव विशेषणम्, पूर्ववत्समाप्तः। अथवा विख्यातानांजनानामीश्वरः, ‘दत्तं’ दानम्, भावेनिष्ठाप्रत्ययः, तेनयत् नाम, तेनपहितः, दानजनितकीर्तिमानिति यावत्। मिश्रेत्युपनामयस्य, सः, ईश्वरदत्तमिश्र इति मिलितार्थः। ‘उदितः, उत्पन्नः। ‘सितरुचेः’ धवक्षयुतेः यस्यकीर्तेः, सकला, नतुका चिदेव, ‘कला’ भागः, अद्यापि, नतुपुरैव, जेगीयते, अतिशयेनगीयते गैधातोर्यद्भु। लोकैरितिस्फुट्य, अतएव न न्यूनपदत्व दोषप्रसक्तिः। अथवा विद्योतते इति पाठः, तत्रचनशङ्काप्युक्तदोपस्य। एतैश्चविशेषणे रतिपुष्टकलत्वं मिश्रेऽभिव्यज्यते इति ॥ १० ॥



न्तं, मन्दिरं “निशान्त पस्त्य सदनम्” इत्यमरः निर्मायि, विरच्य, अ-  
निशं हरैकपनाभूत्वेति भावः । ‘निर्मायितया, मायारहिततया ‘शं, क-  
ल्याणम्, ‘आयात्’ प्रापत् । हरैकपनानसत्त्वस्य मायाराहित्येकाशणतया  
काव्यलिङ्गम् । निर्मायि निर्मायेत्यत् यमकाङ्क्षारः “सत्यर्थेषु यगर्थायाः  
स्वरव्यञ्जनसंहतेः, क्रमेणते नैवावृत्तिर्थमकं विनिगद्यते” इति दर्पणोक्तेः स-  
मानार्थत्वाभाववत्समानानुपूर्वीकानेकवर्णावृत्तियमकं पितितु परिस्कारिणां  
सरणिः, लाटानुप्राप्तवारणाय समानार्थत्वाभाववदिति । विभिन्नार्थकृत्व  
निवेशे “मपरसपरसोऽयम्” इत्यादौ द्वितीयावृत्तेनिरर्थकृत्वेनाव्याप्तिः  
प्रसज्जयेत, इति तदुपेक्षा । “सरोरम्” इत्यादावतिव्याप्तिव्याप्तेव्युदासाय अनेकवर्णावृत्तीर्ती-  
ति संक्षेपः ॥ १२ ॥

तज्जातोधिषणावधीरितसुधीसन्दोहमोहप्रदः  
स्वच्छान्तर्जितदर्पदर्पणमणि ससन्तर्पणोजन्मिनाम् ।  
पुण्याचारविहापिताखिलपणो राजत्समज्ञाचणो  
लेभेसाधुवशंवदेन्द्रियगणो गोमाग्रिमिश्राभिधाम् ॥ १३ ॥

तज्जातइति । तस्मात् रतिदत्तमिश्रात् जातः । ‘धिषणया, बुद्ध्या,  
‘अवधीरितस्य, तिरस्कृतस्य, सुधियां सन्दोहस्य, मोहप्रदः । अमुण्य  
प्रज्ञातिशयं समधिगत्य सर्वएव सुधियोमुख्यन्तीति महामतित्वं व्य-  
द्घच्यम् । यदा धिषणयाऽवधीरितः सुधीसन्दोहोयेन तथाभूतस्सन् ‘मोहम्’  
अविद्यां, प्रकर्षणाद्यति खण्डयति निवर्तयतीतियावत् तावशः । अथवा धि-  
षणाया अवधिः, काष्ठांप्राप्तः निरतिशयवुद्धिपानितिफलितार्थः, अतएव  
; कम्पितः सुधीसन्दोहोयेन सचासौ ‘मोहप्रदः, ‘मायाः सम्पत्तेः,

## ॐ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ॥ ३३

‘ऊटः, तर्कीः, सत्प्रदः, सम्पत्तिप्राप्त्युपायविजयकं इत्यर्थः परंन नोनि-  
ष्टत्वं द्योत्यते ।’ मरय, गिवरय, ‘ऊटः, तर्कीः, सत्प्रदः, विषयमाधिकन-  
कोपदे वित्तेतिषा । मच सर्वाघातालिकं द्वयगुणः यदि रथोपादानगोचरगप-  
रोक्षकानादिमउजन्यं नरयात्, तर्कीर्थं नरयादित्यादिर्पोन्यायहात्प्राप्त-  
खलो प्रतिपादितः “मस्तिष्ठन्द्रपायेधा मालदप्तिष्ठप्तवान्निता” ॥ इत्यमध-  
यानात् रक्षकेन अन्तः, अन्तः करणेन जितः ‘द्वयो, विषयादित्यान्नो  
यस्य तथादिधः ‘दर्पणमणिः, उत्कृष्ट आदर्थः दर्पणः मणिचेति एव  
येन पः, तदधिक पद्मलपानस इति भासः । एततिरंकाद्वाराः । अनुदान  
नवृतहिंशेषाणामेव, ‘सर्वतर्पणः, वृत्तिष्ठारकः, पर्वभूतोपयात्तिभासः ।  
“सोहित्यर्थं तर्पणं त्रुतिः” ॥ इत्यमरः । पुण्यावारेण, तदु गत्यग्ना, ‘त्रिप-  
पिता, विसर्जिता, अग्निलः ‘पणः, भन्न, येन तारयः । तदाग्नान्न  
दिपद्वं द्युष्यते । “पणोत्तरात्पातेरपात्पूर्व्यं द्वार्पाप्तिर्पणेत् । प्रपात्प्र  
दिक्षापृथक्ष्यवदारे भक्तोऽप्ते इति गेदिना ॥ अतएष शब्दः या ‘त्रिप-  
ण्या, वीर्या, घणा, रथातः, “तेनवित्तः चक्षुः पणपृष्ठा” ॥ इति विवरण-  
पि । पदार्थं देतुवे प्राप्तप्रिदृग्भूमि । ‘ददाददः, आग्नेयः, ‘त्रिप-  
पदः खपूः, वर्हद्विष्टिरपादिना गुम् रुद्रिपाणा वद्वदाना हत्याद्वा-  
प्त, गणोयस्य रथा भूतः, इन्द्रिय दिवेकुदं रुद्रावतयः ॥ ११ ॥  
अतएष गोहात्प्रियप्रियेत्यभिधां साहृ, साहृष, तेष्वे । त्रिप-  
ण्याद्वदात्पातिने दोप्यति, रथादिपद्वर्ष गुम् रुद्रात् ॥ गुम् रुद्रात् ॥ १२ ॥  
निरस्तियोगकोदारात् तरः । “निरस्तियोगकोदारात् तरः ॥ १३ ॥  
इति दीर्घातोऽपि । विवाहिताः । विवाहिताः ॥ १४ ॥ विवाहिताः ॥  
दार्ढ्र्यपदादिविवाहिताः विवाहिताः ॥ १५ ॥ विवाहिताः ॥  
ते विवाहिताः ॥ १६ ॥ विवाहिताः ॥ १७ ॥ विवाहिताः ॥

क्तया प्रकृते तदभावात् । अतएव “ इवपाकोजल्पाकोभवतिमधुपाकोष्ट गिरा, निरातंकोरंको विहरति ” इत्यादौ भवतीत्यादिनागिरेत्यन्तेनव्य वधानान्नोदित दूषणप्रसंगः । अभिहितञ्च “ प्रतिकूलवर्णं मुपहतलुप्सविष विसन्धिहतवृत्तम्,, इति काव्यप्रकाशकारिकाव्याख्यायां “ तेनैरन्तर्यं त्वप्राप्तवहुविसर्गत्वं तथा लुप्सविसर्गत्वं च इति प्रदीपकारैः । अथवा “ । हापिताखिलधन संज्ञासमज्ञा ,, इतिपाठः । अत्रचनैतदोपस्थोन्मेषोऽपि ‘संज्ञया, निजनाम्ना, समज्ञयाच चण्डित्यर्थः । साचेयंख्यातिरुत्तम पितुर्नामादिनाख्याते रनुत्तमत्वबोधनादिति ॥ १३ ॥

दृष्ट्यद्वैषणदन्तिदारणहरे रज्यत्प्रतापानल  
 ज्वालाजातवदातकीर्ति हिमयु प्रोद्धासितज्यापतेः ।  
 यसाचिव्यपदं प्रसाध्यमिथिलाभूपात्मजस्यातुलं  
 कंवा नोपचकारयोऽनु दिवसं नोकेन संस्मर्यते ॥ १४ ॥

दृष्ट्यदिति : ‘दृष्ट्यताम्, पराक्रममाणानां, नतु निर्वर्षितितयाति ष्ठताम् । , द्वैषणानां, परिपन्थिनामेव, दन्तिनां, नतुकेवलगजानां, ‘दा रणे, पाटने, ‘हरेः, सिंहस्य । अश्लिष्टशब्दनिवन्धनं केवल परम्परितरू कमलंकारः । ‘रज्यतः, रागयुक्तस्य, ‘धातुसम्बन्धेप्रत्ययाः’ इत्यनेप्रधानक्रियाकालएव गौणक्रिया वोधक्ष धातूत्तरं प्रत्ययस्यविधानात् प्रोद्धसितेत्यत्रप्रधानीभूत प्रोद्धासनक्रियाया अतीतकालिकत्वेनरज्यत इत्पत्रां कटोऽतीतकालार्थकत्वात् । ‘प्रतापानलस्य, प्रतापात्मकस्याग्नेः, परिष्ठामाळंकारः अग्नौ प्रतापारोपमन्तरेण तज्जातत्वस्य कीर्तिंचन्द्रेऽसम्भवात् ज्वालायाजातेन ‘अवदातेन, शुभ्रेण, ‘कीर्तिंहिमगुना, यशश्चव्रेण रूपकालंकारः । हिमगुपदोपादानात्कीर्तौस्पृहणीयतमत्वं वस्तु शब्दशक्त्य

व्यज्यते प्रोद्भासिताया 'ज्यायाः, पृथिव्याः, पत्युः विप्रमाक्षं-  
कागोद्दितीयः, कार्यकारणयोर्विवर्णप्यात् नहु अकारणात्कार्यजननम् पाच-  
तुर्थी विभादना, प्रतापवीत्योः कार्यकारणभावस्य सद्गावात् । वस्तुतस्तु  
प्रतापत्वेन कीर्तित्वेन तस्याक्षतत्वेऽपि प्रतापगिनत्वेन कीर्तिचब्दन्वेनाभा-  
वात्ममभवत्येव साविभावनेति विभादनीय पर्लंकारवैष्णवानिक्षः । नयादोन्ने-  
न परमपरित्प्रवक्षेणे तरं पर्लंकाराणां संगृष्टिः । द्विर्तीयस्तुप्रवक्षेण परिणामे-  
न च विप्रमविभावनयो रह्माहृभाव गंकाः 'पियिलाभृपरय, ग्रन्तिप्राप्त-  
त्यजस्य बनपाळिसिद्धय, 'माचिव्यपदं' पन्निप्रत्यरय रथानयु, नहु अ-  
न्यरय, 'प्रगाध्य, अलंकृत्य, नहु प्राप्य । नयातेना लंकाः अर्हनदग-  
त्यानरय शोभायाउदयात्, नत्वदर्तायशोभायारवेन । यः गोतानिति-  
थः, एं प्राणिनयु, अतुर्लं यथारयात् तथा नोपपत्तर, अपितु गर्वमंड,  
तेनेतत्कर्तृका उपकाररवात्मकात्प्रेत्यनव्यालंकारस्तुनिरितिप्रयेययु । अतएव  
'अतुर्दिवसं' प्रत्यं ऐन प्राणिना न समययु रथ्यते, अपितु  
संयं, तदनन्तरं तदपिकागुणशानिन् इतरात्मारथदोषस्तुराचिदरपि  
प्रात् । अतुलापकारकात्प्रत्यरय रारणगाचरताया उत्त्याप्ता परिषाम्.  
एतत्य संगृज्यते निरक्षेपलंकारं गिति ॥ १५ ॥

थोदार्घी समाप्तानयद्वृत्तमामध्याभिषं दीर्घिशं  
शेतन् प्रोदसज्जद्वृथरपदेष्ट्रावदान्तुदेः ।  
आगादागमयांवयारचनात् सत्तीर्पित्तापार्पद्वृट्  
भोगान्तरपिषोस्तिनानुदभद्रात्. पर्लंकार ॥ १६ ॥

प्राप्ति । 'समाप्तः, विष्वित्तिरह रामेष्टिरमेष्टिरह रामेष्टिरह  
उत्तरात्मयः गोतानितिः । इतेन रथ्याप्तादेव दीर्घिशं दीर्घिशं ॥ १६ ॥

समयसम्बन्धदर्शनेन सामर्थ्यं द्योत्यते, तेनचपरिकरालंकारः । दीर्घं  
वहुतमाम् ‘अग्रा, प्रथमा, ‘अभिधा, अभिधानं, यस्यास्ताम् एवज्ञवर्णं  
सुरसशिशिरसुरभिविमलजडवत्त्वं दीर्घिकायांव्यज्यते । ‘दीर्घिकाम्’ मा  
पुष्करिणीम्, सम्यक् अखानयत् । ‘दुश्चरपदेषु, दुर्गमस्थानेषु, ‘उच्चां  
चानि, वहुविधान, “उच्चावचं नैकभेदम्,, इत्यपरः, मधूरव्यंसकादितात्  
समासः ‘उच्चकैः, उच्चतान, शेतून ‘च, अपि, प्रोदस्तुजत् । ‘सत्तीर्थस्,  
वाराणसीपमुखस्य ‘सार्थान्, समुदायान्, मुहुःस्वयम्, आगत्, जतान्  
आगमयां, चकारच । ‘चः’ समुच्चये । ‘नैकविधान, वहुविधान् नशदेन  
समासः । ‘उचितान्, धर्मविरोधिनः, भोगान् अनुबभूव । दीपका  
लंकारः “सैवक्रियासुवह्वीषु कारकस्येतिदीपकम्,, इतिप्रकाशोक्तेः ।  
तथाच परिकर दीपकयो संसृष्टिरिति ॥ १६ ॥

**वदान्यतान्यशरणं शरणंयशशरीरिणाम् ।**

**निकेतनं विवेकादेर्मिथिलावनिकेतनम् ॥ १७ ॥**

वदान्यतेति । ‘यः, उक्तमिश्रः, ‘वदान्यतायाः, वहुप्रदत्वस्य  
‘अन्यत, लौकिकादितरत्, ‘शरणम्, गृहम्, अतिशयोक्तिरलङ्कारः, लौ  
किकेऽलौकिकत्वं वर्णनात् । “प्रस्तुतस्ययदन्यत्वम्” इत्यतिशयोक्तिपकरण  
प्रकाशाभिधानात् । वदान्यतातिशयोवस्तु कविप्रौढोक्ति सिद्धेनालङ्कारेण  
व्यज्यते । ‘शरीरिणां, नपुनस्तद्विशेषाणामेव, ‘शरणं, रक्षिता । ‘शरणं  
वधरक्षित्रोः शरणंरक्षणेऽगृहे’ इति विश्वः । सर्वभूतेषुदयालुता द्योत्यते ।  
‘विवेकादेः, विवेकक्षमाशान्ति प्रभृतेर्गुणस्य ‘निकेतनं, गृहम् । उक्तगुणा  
तिशयोगम्यः, मिथिलाया ‘अवनेः, पृथिव्याः, ‘केतनम्’ पताका । मि  
थिलावनिशेषोभाकारित्वं प्रतीयते । ‘केतनंतु निमन्त्रणेऽगृहे केतौचक्षत्ये’

इतिमेदिनी । यमकाळङ्कारः ॥ १७ ॥

कालव्याजवसद्वियोगिविशरा घेन्दुद्विषि श्रेयस  
स्तिथ्यांजयेषुदलेसधन्यसहजजयेषुोऽदलस्थोऽसताम् ।  
गङ्गाभङ्ग समुद्रतामृतपृष्ठमङ्गातिपूताङ्गको  
भास्वन्ध्यस्तद्वगोमितिव्यवहरन्नागादनङ्गारिताम् ॥ १८ ॥

कालेति । कालस्य, श्यामलस्यअङ्गस्य ‘व्याजेन, छलेन’ ‘कालश्या-  
मकमेचकाः’ इत्यमरः । वसत् वियोगिनांजनानां ‘विशरेण’ धातेन, अथं  
यत्र “आलम्पिञ्चविशरघातो न्माथवधाअपि” इत्यमरः । तथा भूतस्येन्दोः  
द्विषि’ ‘जयेषुस्य’ तदभिषेषमासस्य, ‘दले पक्षे’ धन्दलदलइति यावत्  
चन्द्रपण्डलंविलोक्य प्रोद्धामकायतया केचन वियुक्ताभ्युपत्तेऽति तज्जनितं  
पापंचन्द्रपसि कलङ्गात्मनावसतीत्यर्थः । तथा चनायंचन्द्रेकलङ्गः, अपितु वि-  
योगिवधजनितं कलमप मित्यपहनुति पूर्वकागोपात्मकाऽपहनुतिरलङ्गः ।  
अघस्यचश्मामलत्वं कविसमयसिद्धम् “माक्लिन्यंव्योम्निवापे यशसि धवल-  
तावर्ण्यते हासकीत्योः” इत्याघभिधानात् । “प्रकृतं प्रतिपिध्यान्यस्थापनं  
स्यदपहनुतिः” इत्यपहनुतिलक्षणंदर्शणे ॥ “श्रेयसः, पुण्यस्य, तिथ्याम् ए-  
कादश्यामितिपावत् । ‘धन्यानां, पुण्यशालिनाम् ‘सद्जानां, सोदरणाम्,  
‘जयेषुः ज्यायान् । तेनातितमां पुण्यशालित्वंव्यङ्ग्यम् । असताम्, पापि-  
नाम्, ‘अदलस्यः’ नपक्षस्यः, गङ्गायामङ्गात् तरङ्गात् ‘भद्रस्तरङ्गमिर्वा’”  
इत्यमरः समुद्रतस्य ‘अमृतपृष्ठः, जलविन्दोः, सहरेन अतिपृतमङ्गंयस्यमः,  
‘मास्वति, प्रोदितेमूर्ये नपस्ताद्यक् येनताद्यः ओम् इति घातवाचकंपदंप-  
णवाभिधानं एषवरन्, उज्जारयन अनङ्गारितां शिवत्वम् आगाम्

प्राप्ते तथा चतादशाङ्कृत्वं भास्वन्न्यस्तद्वक्त्वं प्रणवोच्चारयितृत्वा नामनङ्गां  
ताप्राप्तौ हेतुतया काढवलिङ्गमलङ्गारः । सहजेषु ज्येष्ठतयाज्येष्टुमासे असर  
पक्षीयत्या वियोगिधातकतयाऽसतः विधोः पक्षं धवलदलं विहाय कृष्णं  
पुण्यशालितया पुण्यतिथौ गंगातीरेप्रणवं ब्याहरन शिवसायुज्यतामासाद  
यत् कलेवर मत्यजदित्यभिप्रायः । एव अपरिकगलङ्गारोऽपि । तथाच  
पद्मुतिकाव्यलिङ्गपरिकराणां संसृष्टिरिति विमर्शनीयम् ॥ १८ ॥

यस्यास्ते धर्मजायासमिति विजयिमत्कोविदेशान्वयाया  
नक्तादिक्लान्तकाया हरिपदजलजध्याननिर्धूतमाया ।  
शान्तापाया नयन्ती मम्यमन्विता तारकज्ञन्याना  
यातो हिंसैककर्मा परममुनिपदं येन वल्मीकजन्मा ॥ १९ ॥

निजमातरं वर्णेयति, यस्येनादिना । ‘यस्य, गोमाजिमिथसं  
‘धर्मजाया, धर्मर्या ‘जाया, पत्ना, शक्तपार्थिवादित्वात् ममामः । “न  
तुर्योत्तदर्थार्थवच्छिदितमुख्याक्षिनः” इति सूत्रेण धर्मयजायतितादर्थ्येममाम  
इन्यपित्रद्वः । ‘ममितिए, ममासु, विजयिनः नकेवलं जयिनः । ‘मन्तः  
मान्याः सायवश्च, ‘कोविदाना, विदुपाम्, हंशा यत्र, मन्मासौ ‘मन्तः  
वायो, वंशोयस्या मन्थोक्ता । ममितिविजयितागा पान्यतोकोविदेशन्तेव  
हेतुमादान्काव्यनिरूपाक्तरुक्ताः । “तमुर्धाः कोविदोव्यवः” इत्यापि  
धर्मेन मन्त्रोविदपदयोः वृग्न्योदार्यकृत्यम् तान्यर्थमवगाणः शार्णं प्र-  
दिप्य एव तान्युनक्त वदापाणोऽपित्रया । तराय पक्षते शब्दार्गामय(१)  
सर्व चिदेषः सत्यदम्य परित्यंतामन्तरान् कोविदपदम्य परिवृत्ते रुद्रमा-  
राजः । देवोगाङ्गर्ष्णोविदेशपदविरद्विरद्वित वरदं व्यग्रते, तमान ताद्यां  
— १. यस्य दृष्ट्यादेव विद्युत्तम्य, विद्युत्तम्य विद्युत्तम्य । तदेव  
२. उपर्युक्त दृष्ट्यादेव विद्युत्तम्य विद्युत्तम्य ।

## ❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀ (४५)

वंशोवर्णनीयायामातुरङ्ग मित्युदात्तोप्यलंकारः “ पठनां यदुपलक्षणपद्म-  
भावः अर्थाद्विर्णनीये तदप्युदात्तम् ” इति काव्यप्रदीपाभिधानात् : ‘ नक्ता  
दिभिः , नक्तोपोषणादिभिः, नत्वन्यथा, क्रान्तः कायोयस्या स्तथा  
भूता । एवज्च क्रान्तत्वेऽन्यप्रयोज्यत्वस्यव्याहृत्वेस्नात्पर्य विपरीभृताया  
आर्थत्वादार्थीशुद्धा परिसंख्यालङ्घकारः । अग्रज्च पुरोदितेष्वपि पञ्चपु  
यथायथं घोष्यः । एवम्ब्रेत्पि । हरिपदमेवजलं, तेन रूपकालंकारः,  
तस्य ‘ ध्यानेन , समानविपर्यकान्तः करणहृत्ति प्रवाहेण, “ तत्र पत्न्यैक  
तानताध्यानम् ” इति हि पारमर्पि पातञ्जलदर्शनेयुव्रम् ‘ निर्धृता , नितर्वा  
तिरस्कृता माया यया, प्रयोज्यत्वं तृतीयार्थः तेनध्यानस्यसाक्षादविद्याना  
शक्त्वविरहेऽपिनक्षतिः । यदा साक्षात्कारादारातस्यापि देतुत्वमेवेति तृती  
यापाएतदर्थकत्त्वेऽपिनक्षापि एनिः ज्यापारेण व्यापारिणोऽन्यथागिलिवि-  
रादिति विभावनीयम् । अतएव शान्तः ‘ अपायः , अविद्याकालित्तोऽ-  
न्तरायः यस्या स्तादृशी अविद्यानाशेनैवतस्यापि नाशात् , इटाऽपिशात्य  
लिगम् । ‘ अवहिता , अप्रसन्ना नादधानेति यावत् , ‘ तारकं , रामेतिनाम्  
‘ चिन्तयाना , मनमाजपन्ती लाचिकोपांशु मानसजपेषु अन्तर्पर्येतरा  
पेक्षयाप्राप्तान्यात् । मप्यं नयन्ती, नत्वन्यथा, आरते, क्वतुन आसिता ।  
एतैथ विशेषणार्थात्म्यं मानरिव्यज्यते । येन तारण दिसेद् ॥ एवं  
मधानं कर्मयस्य ताटशः द्वलभीक्षजन्मा पश्यसुनिपदं यातः ॥ इतालंगाराणा  
मंसुष्ठिरंकरच्यदस्था रवयमेव सूक्ष्मप्रिया कायेति । स्वर्गरावृत्तम् “ अ-  
मैर्यनांशयेण क्रिमिनियतिगुता स्वर्गराकीर्तितेयम् ” इति एतास्त्वादर्थ-  
प्रक्षणमपन्वयादिति ॥ १८ ॥

तस्मात्ती ग्रमतिः पतिव्रतलमदामामणौ जात्वी  
देव्या मत्र सतीप्रियः समजनि श्री बालहृष्णाभिदः ।

यः प्रेमणा चरणाम्बुजन्मयुगलं शुश्रूपमाणोगुरो  
विंशाब्दावधि दर्शनेषु परमां शिक्षां समासादयत् ॥१॥

तस्मादिति । पत्युः व्रतेन पतुनिदेवितेन, छसन्तीनां, योपिनां  
“नारारूपं पतिव्रतम्” इति नीतेः पातिव्रत्यस्य तासां शोभावहत्वात्  
‘मणौ, श्रेष्ठायाम् । ‘अत्र, यथोक्तायां, जानकीदेव्यां, ‘तस्मात्, गो  
सान्विमिश्रात्, तीव्रपतिः एतेन विंशाब्दावधि दर्शनेषु परमशिक्षामाम  
दनयोग्यत्वं गम्यते, तथाच परिकरालंकारः । ‘सतां, साधूनां विदुषाः  
प्रियः । एतेनच कार्यभूतेन विनयादिगुणगणाति शयोव्यज्यते । सत्पि-  
त्वे तीव्रमतित्वस्यापि हेतुतया काव्यलिंगमलंकारः । श्रीवालकृष्णाभिः  
समजनि । नच श्रीशब्दस्य नामानन्तर्गततया “श्रीवालकृष्णाभिः  
इत्युक्तिः सङ्केतिदेश्यम्, तस्याः श्रियायुक्तः वालकृष्णाभिः श्रीवा-  
ष्णाभिः इति विग्रह प्रतिपाद्यार्थकत्वात् । एवमेवहि “संक्षेपतः श्रीर-  
नाथनामा” इति प्रामाण्यवादप्रत्यक्षमणिदीधिति ग्रन्थे शिरोमणेरभिधा  
तदीयविवृतौ सङ्गगमयांचक्रिरेभट्टाचार्य चरणाः । यः वालकृष्णाभिः  
गुरोश्वरणएवाम्बुजम्, तथा च रूपकाळङ्कारः तस्य युगलं ‘प्रेमणा  
भक्तया, तस्यगुरुगोचरत्वात् । नतु कार्यानुरोधेन । ‘शुश्रूपमाणः, से-  
मानः । विशतेः पूरणः विशः, सचासावब्दः, अवधिः यस्य तत् । तद-  
वधित्वञ्च तत्पर्यन्ताभिव्यासिकत्वम् । नत्ववधिपदं मर्यादार्थकम् तथा-  
सति ऊनविश वर्षाभिव्यासस्यैव शिक्षाग्रहणस्य वोधः प्रसङ्ग्येत । नचविव-  
क्षिताविवक्षितार्थोभयोपस्थापनानुकूलस्वरूपमन्देह विषयत्वात्मकस्य स-  
न्दिग्भत्वदोपस्य प्रसङ्गः, तादृशस्य संदेहस्य प्रकृतेऽनवतारात् । ‘दर्श-  
नेषु, आन्विकिंप्रभृतिशास्त्रेषु, परमां नतु साधारणीं शिक्षां समासाद-

श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ४७

यत् । नतु केवक मवापत् । नचापादानानुक्त्यान्यूनत्वं दोषः, गुरावपादानत्वस्यार्थतायाअनुभवसिद्धत्वात् । यदा “यः प्रेमणा गुरुपादपदमयुगलं शुश्रूपमाणस्ततः” इति पठनीयम् पञ्चमीचेयम् “बाल्यातोपयोगे” इतिसूक्तानुशिष्टा, अतएव समाप्ताद यदित्यस्पाप्युपपत्तिः । एतेन च “प्रथमेनार्जिताविद्या” इति निन्दाश्रुतेरगोचरोऽय मित्यलम् ॥१९॥

यत्रप्रात्यहिकाध्वर्गैघहुतसुरध्वमान्धकारावृते  
भास्वतप्रौढमरीचिभिर्नहिशुचौतापं भजन्तेजनाः ।  
अचान्यस्तविशस्त धूपपवन व्यासञ्जना मोदना  
त्सान्द्रैचैकुरसञ्चयेसुरभयेनोवा यतन्तेऽङ्गनाः ॥ २० ॥

अथ निजवासग्रामं श्लोकद्वयेनवर्णयति, यत्रेत्यादिना । यत् ग्रामे शुचौ ग्रीष्मसमये ‘प्रात्यहिकस्य, अनुदिनं विधीयमानस्य. ‘अध्वरौ-धस्य, यज्ञसमुदायस्य, ‘हुतसुजां, हुताशनानां, धूपैः अन्धकारेण आ-द्वृते रावरणाद्वेतोः, ‘भास्वतः, भास्करस्य, ‘प्रौढाभिः, प्रवृद्धाभिः, ‘मरीचिभिः, किरणैः, तापं जनानभजन्ते । अतिशयोक्तथलङ्कारः । प्रत्य ह्यध्वरातिशयविधानेन परमपवित्रत्वं प्रतीयते । एवम् ‘अर्चाष्टु, देवा तिथीनामर्हणेषु, न्यस्तानां ‘विशस्तानां, प्रशस्तानां, धूपानां पवनै ‘वर्षा सञ्जनेन, व्यासक्ततया आमोदनात् सौरभात् हेतोः, ‘सान्द्रे’ स्तिर्घे, चैकुरसञ्चये, केशकलापे, सुरभये, सौरभाय, अङ्गना नोवा यतन्ते सि-द्धत्वादित्यर्थः । देवादीनामपर्चातिशयोन्यंग्यः । स्नानात्परं सलिङ्गाद्वाने वचिकुरानदगनाधूपैर्बास्यन्तीत्याचार इति ॥ २० ॥

प्रयत वंश वतंस विशारद  
द्विजकुले वहुलेख गृहाकुले ।

वसतियोऽवसथेऽन्नं समेऽप्समे  
श्रितशमेनवटोलपदास्पदे ॥ २१ ॥

प्रयतेति । ‘प्रयतानां, पवित्राणां, नत्वताद्वशानां, वंगानां ‘वर्त-  
सः, भूपणं, नतुकुठाररूपं, यदा प्रयतेति द्विजकुलविशेषणम् । विशिष्ट  
‘शारदा, सरस्वती, विद्येतियावत्, यस्यतत् । द्विजानां ‘कुलं, समुहे,  
यत्र तथोक्ते, बहुभिः ‘लेखगृहैः, देवगृहैः चित्रगृहैश्च, “लेखाअदिति  
नन्दनाः” इत्यपरः । ‘आकुले, व्यासे । ‘समे, सशोभे ससम्पत्ति-  
केच, ‘असमे, अनुपमे, विरोधालङ्कारः, समत्वासमत्वयोस्सहानव-  
स्थायित्वलक्षण विरोधस्यापाततः प्रतिभासनात्, परमार्थस्तूक्तएव ।  
श्रितः शमोयं ताद्वशे, शमोप्येतदीयगुणातिशयं विलोक्यैन माश्रय  
दितिभावः । शमस्तु ग्रन्तरिन्द्रिय परिग्रहः । एवज्च ग्रामे मुमुक्षाधिकारि  
जनशालित्वं गम्यते तस्यामेव शमस्य विनियोगात् तदुक्तं विवरणाचार्यैः  
“सर्वत्र फल श्रुतयः कामनोत्पादन द्वारा मुमुक्षो रधिकार प्रदर्शनार्थी”  
इति । नवटोल पदस्य ‘आस्पदे, स्थाने, नवटोलाभिधान इति शावद  
‘अत्र, यथोक्ते पूर्वोक्त पद्य वर्णित इति यावत् । अवसर्ये, ग्रामे, “अत्र  
सथोग्राम” इति शब्दरत्नाचली । यः वालकृष्णः वस्तीत्यर्थः ॥ सुन्दरीहृतं  
तदुक्तं वाणीभूषणे “कुमुकगन्ध रसै रतिभूषिता, चरण सङ्घतनूपुर मणिता ।  
कर सुवर्णक्षसद्व्यान्विता, स्फुरतिरस्यनचेतसि सुन्दरी” इति ॥ २१ ॥

काण्डिया वनिपेन केरलमही पालेन यो गौर्जर-  
ज्यानाथेनच मालवक्षितिभुजा वैदेहभूमीभृता ।  
दोपज्ञाति विद्वर दर्शि विदुषां शजत्समज्ञाज्ञाषां  
विज्ञातं सममानि संसदि समालोच्यासकृत्वैकधा ॥२२॥

❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀ (४९)

काणटेति । 'यः, वालकृष्णः । काण्टावनिपादिना नतुयेनकेनचित् राजा 'राजत्समज्ञाज्ञापां, विलसत्कीर्तिमतां, दोपज्ञाना-मतिविदूरदर्शिनां विदुपाम्, नतु साधारणानाम् । 'संसदि, सभायाम् । 'मसकृत्, नत्वेक वारम् । 'नैकधा, वहुभिः प्रकरैः, 'समालोच्य, विषयिदय मितिविनिष्ठित्य, नत्वापाततः । 'विज्ञातं, खण्डातं, यथास्थात् तथा । 'सपमानि, सम्मानितः । यद्वा 'नैकधा, पारितोषिकरूपाणां प्रभूतमुद्राणाम् ऊर्णतन्तु निर्मित शीतनिवारकावरणानां दोशाक्षेति भाषया विश्रुतानां समर्पणेन सपमानीति । तथाच तावश संसदि निरुक्तं र्मदाराजै स्तथाविधेन सम्मानेन पाण्डित्यातिशयो व्यज्यते ॥ २२ ॥

द्वाविंशेयतिवत्सरे समधराधीशावली मस्तक-  
न्यस्तस्तद्विन्दु विलसत्पादारविन्दस्य यः ।  
यातश्श्रीलरमेश्वरस्य मिथिलानेतुस्त्वविद्यौक(१)सा  
माद्येऽध्यापकता मदभ्रशरदोऽनैषीत्तमावर्धयन् ॥२३॥

द्वाविंशशैति । 'यः' वालकृष्णः । द्वाविंशे वत्सरे 'यति' गच्छति, समेपां धराधीशानां पा आवली, तस्याः मस्तकेषुन्यस्तायाःसजो, मालाया, पक्करन्दविन्दुना विलसत्पादारविन्दं यस्य, तथोक्तस्य, निखिलभूष प्रणम्पमानस्येतियावत् । मिथिलाया नेतुः, नायकस्य, श्रील रमेश्वरस्य नतु सामान्यभूषस्य, 'स्त्वविद्यौकसां' स्वकीय विद्यालयानाम् 'आधे' प्रथमे मुख्ये, अध्यापकतां यातः 'तं' यथोक्तं रमेश्वरम् आवर्धयन् उच्चरोत्तर मौनत्यं प्रापयन् 'अदभ्रशरदः, वहुनिवर्पणि "अदभ्रं घुलंबहु" । इत्यमरः । अनैषीत इति ॥ २३ ॥

(१) स्त्वविद्यालये एख्ये रत्यपिपाठः ।

श्री पञ्चारमण प्रधानदिविषत्सञ्चानि निर्मापित्त  
 निश्छञ्जानुरते दिंशासु नयनालानानि यः प्राणिनाम् ।  
 चेन्द्रद्वैत निरूप्य विभ्रमधियो नेताजनान् द्योतिता  
 शावक्त्रस्फुट साधुकैर विकया कीर्त्याऽभितो भ्राजते ॥

अथ पिथिङ्गापतिं रमेश्वरसिंहं वर्णयति श्रीत्यादि श्लोकाद्वयं  
 ‘यः, रमेश्वरसिंहो भूपः, श्रीपञ्चारमणः प्रधानं येषां, तेषां ‘दिविः  
 मर्गीकर्मां, पञ्चानि, प्राणिनां, ननुपानवानामेव, नयनयोराळानानि रु  
 नानि, तेन मद्प्रसु सौन्दर्याति शयो व्यज्यते । ‘निश्छञ्जानुरतेः, निर्वाणं  
 भक्तेः, दिंशासु, ननु एकस्यां दिविः । निर्मापिता, “नलोकाव्यग्निः  
 वर्चय दृताम्” इत्यनेन पृष्ठ्या निषेदः । दिविषत्पदोपादानेन सा  
 मुशाशम्यं प्रतीयते । द्योतितम् ‘आगायाः दिविः, वक्त्रंपया, तयोरु  
 म्हृदं, विक्षितं “वयोगविकचम्फुटाः” इत्यपरः । साधुरेव कर्त्तव्यं ॥  
 तादृश्या, मुरुन्वस्याचेतनवर्पस्य मायौविरहेण कैवल्यादात्मारागाम्या ॥  
 इत्यनु तया परिणापादद्वारः । मायुरपावहाकीर्ति गेतदीयेनिवाचः ॥ गी ॥  
 चन्द्रद्वेत ‘निर्मापाः, विषयिणः, विभ्रमविषः चन्द्रद्वेतगोचराग्नि भ्रम  
 अप्य द्वानार्त्तियादत् । ज्ञानस्य पिषयनिरूप्यत्वात् । तयाच गद्यः  
 योर्विद्यारक्तम्, भृत्य प्रतापं ‘मानु, दोमनं, करवं गम्भाव इति’  
 सं भृद्यमार्द्वरक्तव्यं वानिन, इति वानान्यात् कीर्त्तिनिद्रन्प्रवेश ॥ ३  
 चन्द्रद्वेत दद्वेत देव धया जायो गनाना पिनिवाचः एवंवृतः श्री ॥  
 ‘इ इति दीप्तिर्वृत्ते । अद्याद्युपार्गापि प्रश्नविभ्रमपूर्वदेवादिविषत्ति ॥ ४  
 दद्वेत दद्वेत दद्वेत, “प्रायाया वर्णनोदयगतनिश्चाया गेत्वाद्या इति ॥  
 इति दद्वेत दद्वेत दद्वेत, “प्रायाया वर्णनोदयगतनिश्चाया गेत्वाद्या इति ॥ ५

वसुस्थितोऽपि द्विजराट् ब्रजनेयशिशवावहः ।

शिवाश्रितोऽपि सुमनो मार्गणो रतिवर्धनः ॥ २५ ॥

यः ‘द्विजराट्, चन्द्रः “सोमोद्वै द्विजानांराजा” इति श्रुतेः, ‘वसौ, अष्टमस्थाने, स्थितोऽपि ‘ब्रजने, यात्रायां ‘शिवावहः, कल्याणकारकः, यात्रायां चन्द्रस्याष्टमस्थानस्थितत्वे परणप्रद त्वं ज्योतिस्तनन्त्र सिद्धम् एवश्च विरोधः । वसुपदे विभवार्थकत्वस्य द्विजराजपदे ब्राह्मण पत्यर्थकत्वस्यचाभ्युपगमेन तत्परीहारः । आगत जनकल्याणकारक इति पर्यवसितार्थः । ‘शिवं’ शङ्करम् आश्रितोऽपियः ‘सुमनः, प्रसूनं मार्गणो वाणोयस्य सः, काम इति यावत्, रतेः तत्प्रियायाः ‘वर्धनः, ‘आनन्दनः, शिवज्ञामयोरर्थि प्रत्यर्थि भावाद्विरोधः । ‘सुमनाः शोभनमना, मार्गणो, याच हो, यस्येति, ‘रतेः’ सुखस्यवर्धन इत्यर्थस्याभिमतत्वेन तत्पूत्यादेशः । “मार्गणो याचकेशरे” इति भेदिना इलेप भित्तिको विरोधाभासालङ्घारः तेनतयोस्संकर इति ॥ २५ ॥

प्रजानां मानसे प्रेमणो वीजाज्जाता दयाऽमृतैः ।

प्रौढा ऋशंसालता कापि श्रेयो यस्य प्रसुयते ॥ २६ ॥

प्रजाना मिति । प्रजानां मानसे यस्य प्रेमणो वीजात्, विषयत्वं पञ्चर्थः । जाता यस्य दयामृतैः प्रौढा समयेतत्त्वं पञ्चर्थः । ‘कापि, लोकोत्तरा, यस्य आशंसा, समीका, ज्ञता, विषयत्वं पञ्चर्थः । यस्य ‘भेदः’ कल्याणं ‘प्रसूयते, जनयति । यस्यराहोऽभ्युदयं प्रजाः कामयन्त इति भावः । राजप्रजयो रन्योन्यानुरागवत्त्वं न्यद्यते । रूपदानुषाणिनो व्यतिरिक्त लङ्घार इत्यरयो सप्तद्वये इति ॥ २६ ॥

विवेकराकापनिकहितोदयः

सुधीवर ज्ञात निषेवितोऽजयः ।

श्री पद्मारमण प्रधानदिविपत्सद्गानि निर्मापिता  
 निश्छद्गानुरते दिंशासु नयनालानानि यः प्राणिनाम् ।  
 चन्द्रद्वैत निरूप्य विभ्रमधियो नेताजनान् द्योतिता  
 शावक्षस्फुट साधुकैर विक्या कीर्त्याऽभितो भ्राजते ॥

अथ मिथिकापर्ति रमेश्वरसिंहं वर्णयति श्रीत्यादि श्लोकपट्टेन  
 ‘यः, रमेश्वरसिंहो भूपः, श्रीपद्मारमणः प्रधानं येषां, तेषां ‘दिविष्ट  
 स्वर्गैकसां, सद्गानि, प्राणिनां, नतुमानवानामेव, नयनयोराळानानि वन्ध  
 नानि, तेन मद्मसु सौन्दर्याति शयो व्यज्यते । ‘निश्छद्गानुरतेः, निर्व्यः  
 भक्तेः, दिशासु, नतु एकस्यां दिशि । निर्मापिता, “नलोकाव्यय निष्ठा  
 खब्दर्थं तुनाम् ” इत्यनेन षष्ठ्या निषेधः । दिविष्टपदोपादानेन सर्व  
 सुप्राशस्त्यं प्रतीयते । द्योतितम् ‘आशायाः दिशः, बक्त्रंया, तथोक्तया  
 स्फुटं, विक्षितं “व्याकोशविकचस्फुटाः” इत्यमरः । साधुरेव कैरवंय  
 ताहृश्या, स्फुटत्वस्याचेतनर्थमस्य साधौविरहेण कैरवतादात्म्यारोपस्याव  
 श्यक तथा परिणामाकङ्कारः । साधुर्वर्षावहाकीर्ति रेतदीयेतिभावः । कीर्त्या  
 चन्द्रद्वैतेन ‘निरूप्याः, विषयिण्याः, विभ्रमधियः चन्द्रद्वैतगोचराणि भ्रमा  
 त्मक ज्ञानानीतियावत । ज्ञानस्य विषयनिरूप्यत्वात् । तथाच चन्द्रेऽपि  
 द्योतिताशावकृत्वं, स्फुटम् अनएव ‘साधु, शोभनं, कैरवं यस्मात् तत्त्वस्स  
 स्वं स्फुटमाधुकैरवत्वंचास्ति, इति साजात्यात् कीर्तौचन्द्रत्वभ्रमेण गग्न  
 तद्वर्तिनाचन्द्रेण द्वेत भ्रमो जायते जनाना मितिभावः एवंभूतः अभिग्रा  
 ‘भ्राजते’ दीप्यते । प्रेयोऽलङ्कारोपि, पद्मापतिप्रमुखदेवादिविषयिण्या विभिः  
 वाऽनुभावाभ्यापभिव्यज्यपानाया वर्णनीयराजनिष्ठाया रतेभावस्य प्राप्ता  
 न्येनश्वन्यपान राजाकम्बन कविनिष्ठ रत्यात्मभावस्याङ्गभावादिति ॥२४॥

भाष्ये अपवादस्य क्रमः तथाहि “हृद्धिरेचीत्यस्य अदेह्यगुण इत्यत्र, एत्ये घट्यूद्गु इत्यरय पररूपगुणयोः, व्याङ्गारिभ्यो रथ इत्यस्य स्वरितजितः कर्वभिप्राये कियाफले इत्यत्रा पवादक्त्वं द्रष्टव्यम् । न्याये गीतमीयदर्शने सन्छलता स्त्रै मन्त्र न त्र प्रमाण प्रमेय संशय प्रयोजन दृष्टान्तसिद्धान्ता वय उत्क निर्णयवादजल्प वितण्डा इत्वा भासच्छलजाति निग्रदस्थानानि पोड-शपटार्थः केवलयोपयोगिनो मद्यिणा प्रतिपादितः । अथ ‘जैमिनिनये, मीमांसायां देवाकृतेऽपिता, तत्र प्रत्याख्यातं किळदेवानां शरीरम्’ अन्यथा युगपद्विधीयमानेषु कनुषु देवस्य प्रामाणिक सन्निधानं नोपयदेत इति पन्त्रात्मकेवदेवतेति । नतु लोकेषु ‘अपवादस्य, कलङ्कस्य क्रमः, निषिद्ध क्रियानाचरणात् अतएव नवा ‘सन्छलता, व्याजयुक्तता । नवा देवस्याकृतेः मूर्तेः द्वेषिता देवमृतयो न भन्यन्त इतिभावः साहृदयेच साहृदय दर्शनएव चोडवधारणे । पुनरर्थकोवा । ‘प्रकृतेः, मूलप्रकृतेः अविकृतिप्रकृतेः तत्त्वञ्च तत्त्वान्तरामभक्त्वेसति तत्त्वान्तरानारभत्वम् । ‘प्रधानतरता’, सर्वोगात्मानता, “‘प्रकृतेर्पैदान्त्रमहतोऽद्वृकारः अहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राणीत्यादि कापिलदर्शने सृतम् । तत्त्वान्तरानारभत्वञ्च “मूलेमूलाभावादमूलं मूलम्” इति तत्त्वमूलस्य भाष्ये विज्ञानभिक्षुणा समर्थितम् । नतु सचिवेषु प्रकृतिपदा भिषेषेषु प्रधानतरता, प्राधान्यमात्रस्यैव सत्त्वात् तत्त्व राजन्येव, निन्दितं हि राज्यं सचिवेनायत्तम् ‘योगे, योगदर्शने, अन्तरायस्य ‘श्रुतिः, श्रवणम् स्त्र एकतत्त्वाभ्यासोपयोगदर्शनाय समाधिपादे “व्याधिस्त्यानसंशय प्रमादालस्या विरति भ्रान्तिदर्शनानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः, “दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः” इति सूत्राभ्यां प्रतिपादितः ॥ नतु लोकेषु ‘अन्तरायस्य, विघ्नस्य श्रुतिः सर्वेनिर्विद्यास्ति-

अशेषरत्नानवगाहनाशयः  
पयोधिवद्भुमिपति विभातियः ॥ २७ ॥

विवेकेति । यः भूमीपतिः, विवेकएव प्रकाशमानत्वादाह्लादकतं राकापतिः, पूर्णचन्द्रः, तेन, नत्वन्यथा ‘कल्पितः, जनितः, ‘उद्दृष्टि यस्य सः, एतेनोदये चिरस्थेमानं ब्रोत्यते । सुधीवराणां, विद्वरा ‘ब्रातेन’ समुदयेन ‘निषेवितः’ सेवितः । तेन तेषां गुणग्राहित्वं राज्ञिं ज्यते । ‘अजयः’ नजयो यस्य, सः । जयनकर्मत्वाभाववानितिपा पराक्रपातिशयोगम्यः । ‘अशेषाणि, समग्राणि, अनपायानिच इत्वानियद्वा अशेषाणां ‘रत्नं, श्रेष्ठः । तथोक्तस्सन ‘अनवगाहनः, ज्ञानाविपा आशयः, अभिप्रायोयस्य तादृशः नीतिपार्गगमित्वं गम्यम् । अतएव योगिवत्, समुद्रेणतुल्यः, विभाति । सोऽपि विवेकतुलयेन राकापति कल्पितोदयः, ‘सु, अतिशयेन धीवराणां, कैवर्तानां “कैवर्तेशाशर्धावर्णै इत्यपरः । ब्रातेन पत्स्यादिलाभाय निषेवितः, अजयः, अशेषरत्नः, ‘अवगाहनः, स्पष्टुपश्चक्षयः, ‘आशयः, तलं यस्य तादृशश्वेति रूपकर्त्त्वे जीवितो पमाद्वद्वागः । तथाचतेषा मद्भर इति ॥ वंशस्थृतम् “वर्त्वं श्वस्यविलं जनौजगौ” इति लक्षणान्वयादिति ॥ २७ ॥

यम्मिन यथिलशामके फणिपते भाव्येऽपवादकमो न्याये मच्छलनाऽथजे मिनिनये देवाकृति द्वेषिता ॥  
माहूयेच प्रकृतेः प्रधानतर्ता, योगेऽन्तग्रथश्चतिः  
वेदान्तेऽनिकमापिनेनवद्वधा मनानिवाधस्थितिः ॥ २८  
द्विष्टव्यति । यदियानां शामके यम्मिन भृपेमति ‘यद्यन मार्गे भ  
द्वादशा’ इतर्नेत्र मयमी । उगिरते इंद्रियानाम् पार्ये न्याशणणा ॥

एवं कृष्णदेव शब्द अली, “कृष्णनाम जडेरुण इयम्, एवं  
त एव बहुत बहु भगवान्, याह मैस्त्रयो इति वाच्य इवान्नामः  
कृष्णनाम् ॥” वाच्ये इवाद्या वाक्याद्या इति । याय गौतम्योपदीप्ते  
पुनः ॥ १५ ॥ ऋष्ण यमो भयम् दध्यात्मा राम्भूतिवानाम् इष्ट  
स्त्रियो इति । वैभाग्याद्या विश्वासानी विश्वासानानि शोद-  
त्तम् ॥ १६ ॥ शोदत्तम् विश्वासानी विश्वासानाम् ॥ ॥ अपि जैविनिर्वय,  
जैविनाय देवाय देवाय, एव यमाः पात्र विष्टदेवानी वर्त्तम् ॥ अत्यथा  
शृणुष्टुपायानेषु आद्यदेवाय प्राप्याणिः स निष्पानं नीरप्येत् इति  
विश्वासानी इवादिः । विश्वासु “अप्याद्य, वाद्यद्य श्रावः, निष्पद्ध  
विश्वासानाम् श्रावय चया ॥ १७ ॥ १८ ॥, यामनुत्तमा । नया  
देवायानेः श्रुतिः द्विष्ठा देवस्त्वयो न विष्टव्यतिवादः गान्धोप्येत्  
यामानी द्विष्ठान्द विष्टव्यत्वाणेः । पुनर्धृतीया । ‘प्राणोः युलपृष्ठेः  
विश्वासानीः तदेव इवात्याग्नवत्येति विश्वासानाम्  
विश्वासः । ‘प्राणविश्वासा’ शर्वोपासनता, “ प्राणतेर्पदान  
प्राणोऽप्तव्यादः अद्वाग्नात्यच्छत्वात्याशार्णोत्यादि वापिलदर्शने  
युलम् । विश्वासानामरभ्यवद्यन् “ युलेयुलाभावादस्त्वं युलम् ” इति  
विश्वासत्वय शार्णे विश्वासिलुणा गमर्पितम् । नवु सचिष्ठेषु भ्रुतिपदा  
पिष्ठेषु प्राणविश्वासानविश्वासानविश्वास विश्वास तत्त्वात् तत्त्वं राजन्येष, निन्दि  
नि इति राजन्येष विश्वासायत्तम् ‘थोगे, योगदर्शने, अन्तरायस्प ‘धुतिः, शब-  
णम् एतत् एवत्त्वाभ्यासोपयागदीनाम् समाधिपादे “व्याधिस्त्वानसंशय  
मनादालस्या विरति भ्रान्तिदर्शनानविश्वास चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः,  
“दःपदोपेनरथ्याङ्गेजयत्वश्यासप्रश्वासा विषेषस्मुद्रः” इति गूढाभ्यां  
प्रनिपादितः ॥ नतुष्ठोषेषु ‘अन्तरायस्य, विश्वास श्रुतिः सर्वेनिर्विष्टा-स्त्रि-

(५४)      ❁ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❁

एन्ति । वेदान्तेऽधिकभाषितेन ‘वहुधा, अतेकाभिर्युक्तिभिः ‘सज्जाते, सत्त्वात्मिकायाजातेः ‘वाधस्य, खण्डनस्य, स्थितिः तथाहि द्रव्यंपत् गुणस्तन कर्मसत् इति प्रतीत्युपपादकतया सत्त्वासामान्यं साधयन्ति वैशेषिकाः॥ तदसत् जात्यादावपिमत्त्वं प्रतीतेः, द्रव्यादिगतयैवसत्त्वाजात्यादौ तस्याउपादनेविनिगमनाविरहः । यच्च प्रागभ वावृत्ति प्रतियोगिता समन्वयेन ध्वंसंप्रति तादात्म्येन सतः कारणत्वमितिकारणतावच्छेदकतया मत्त्वस्यसाधनं, तदपिनशोभनम् अन्योन्यसंशयापत्तेः कार्यकारणभावस्य सिद्धिरिति अनयैवद्विशाङ्क्याअपिजातयो निराकार्या इत्यधिकमन्यत्रविस्ताः । नतु लोकेषु, ‘सती, सपीचीना जाति ब्राह्मण्यादि यस्मिन् तस्य ‘बाः, पीडनम्, नहि ब्राह्मणादयः पीडयन्ते । आर्थी परिमङ्गलवालङ्गाः । यामने प्रकर्पांतिशयोद्यग्नय इति ॥ २८ ॥

सन्तापोऽभिगृहे, मदोगजपतौ, श्रेलेद्विजिह्वस्थितिः  
स्तेयं वामटशोऽचलम् सुरत क्रोडाविधौप्रेयसा ।  
दम्पत्योः प्रवियोगमाश्रितवतो गजोदयोऽमर्पणो  
जा निंपत्ता प्रमृनसमये मानोवृपत्यागिता ॥ २९ ॥

पन्ताप इति । यम्भन परिकल्पामक इति प्राक्तनश्चाकेनानुप्रयत्ने ।  
‘द्विगृहे, स्यातिन व्रीतागिगृहे, प्रातर्गेता सन्तापः, नतुवापगृहे, त-  
र्गा सावाट । गजर्णि ‘पदः, दानगारि । श्वेते, श्वेते ‘द्विजिह्वा, श-  
विह्वा श्वितिः । नतु शोकेषु ‘पदः, गर्भः, “पदा रेतविकस्त्रूर्या गर्भ शो-  
कस्त्रूर्या” इति शेतिर्वं, तस्य ‘द्विजिह्वा’ वैरिह्वा श्वितिः । तद्वारा;  
‘पदः, गर्भः, शोकस्त्रूर्या शोकस्त्रूर्या’, श्वितिर्वं, श्वितिर्वं, श्वितिर्वं । श्व-

महात्मा विष्णु विजयोर्गते, विजय, द्रवदेव  
संविद्या द्रवदेव, अन्नां प्रसादां द्रवदेव, एवं द्रवदेव,  
स्वर्ण द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव,  
प्रभु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव, एवं द्रवदेव, 'द्रवदेव द्रवदेव' ।  
त्रिविद्या द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव  
विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव  
विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव  
विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव, विष्णु द्रवदेव ॥२९॥

श्रीदत्पदगजान्मध्यमहानाटानम्भिन्नपदा  
दिवा लज्जनेऽनननननुत्तं योऽशाखगप्यापनम् ।  
सोऽहं मैथिलगजः हृष्टतिष्ठं निर्लेघमलः मीश्वरी  
देव्यारम्भस्ति यथागतिर्देवं नामि रत्नंगुणः ॥३०॥

श्राविदि । यः वाऽग्नामिदः । भ्रामतः पञ्चजार्जरय धारत  
महानस्य शरण्यपिदापतेः, 'अर्हात्, अनपदापा' मैथित्, इत्यन्यस्य,  
निर्लिप्यस्तावत् इति यावत् "रामदन्तिपद्मसिंहेतता,, इत्यपरः ।  
पठति दिवाना 'मंजवनं, द्रवदेवाले । "मंजवनं त्विदं चतुश्शालम्" ।  
इत्यापाः, 'अद्देवत' प्राच्या "अद्देवं श्रीतीव रक्षणे" इति मैदिती ।  
'अदाष्मु, निर्याष्मु' अध्यापनं ततुतं, नहु केवलं कर्मति । अध्यापन  
प्रत्यर्थ यशालापादिः वर्णगामित्वा दात्मनेष्टम् । तथा च एतेन पूर्वोदि-  
त्यर्थार्थेन नाक्षात्परपरयाच कवि निति उत्कर्त्त्वोध्यन्यते । सोऽहं मैथिल  
गजस्य लक्ष्मीन्द्रियस्य पट्टमादिष्या: निर्लेघणः, निष्कलङ्घकायाः तेन  
मर्त्तान्व व्यप्तयत, प्रिक्तरथालट्कारः सच्चरितशालित्वोपपादकत्वात् ।

लक्ष्मीश्वरीदेव्याः सच्चरितं इत्नं पदैर्गुणैः, यथा मति ग्रथनामि, परिणा  
कड्कारः, । एव च भावध्वनिदिति ॥ ३० ॥

नास्मिन् शामति भारतावनितलं धर्मगमो हीयते  
पूर्वस्मिन्निव दुर्वले वलवाता वाधानवाऽधीयते ॥  
नो स्तेनाद्विपिनेषि नेत्रविकलस्यापि त्रसोदृश्यते  
नो वा प्रोषितभर्तृहा प्रियत्रिक्लेशेन संयुज्यते ॥ ३१ ॥

-अथ पदभिः श्लोकैर्भारतेश्वरं वर्णयति यस्मिन्नित्यादिभिः  
अस्मिन्, पञ्चमजार्जे, भारतावनितलं शासति सति ‘धर्मस्य, पुण्यस्य  
‘आगमः, शास्त्रम्, आचारानि वा धर्मेण सहित आगम इति वा  
धर्मः शास्त्रमाचारो वेतियावत् धर्मएव फलप्रदत्वादगमो वृक्षादिति वा, “  
लक्ष्मीद्वादुमागमाः” इत्यमरः धर्मस्य ‘आगमः, प्राप्तिरिति वा । धर्मस्य  
‘आगमः, ज्ञानं यस्मादिति धर्मोपदेष्टुति वा । ‘धर्मस्य, क्रतोः न्यायं  
अहिंसाया उपनिषदो वा आगम इति वा । ‘धर्मस्य, धनुषः, आगमो ध  
र्वेद इतिवा । “धर्मोऽस्त्री पुण्याचारो स्वभावोपमयोः क्रतौ अहिंसोपनि  
न्याये ना धनुर्यप सोमये” इति मेदिनी । ‘हीयते, अपचीयते अम  
श्लेषाकड्कारः, पूर्वस्मिन्निव, यवनसम्भाज्यमगयइव, दुर्वलेजने वलवाताजने  
‘वाधा, पीडा, नवा ‘आधीयते, क्रियते । यवनसम्भाज्ये दुर्वलोवद्वावा  
इवाध्यत इति ऐतिहासिकी प्रवृत्तिः । विपिनेऽपि किमुत ग्रामेनारंवा  
नेत्रविकलस्यापि, अन्धस्यापि, किमुत चक्षुष्मतः । ‘स्तेनात्, चौरा  
“चौरंकागार्कि स्तेन दस्युतस्कर पोपकाः” इत्यमरः । ‘त्रसो  
भीतिः, नो दृश्यते । राजगक्षितत्वेन सर्वत्र सर्वएव निश्चाङ्कं सञ्चरन्तीर्था  
भावः । अर्थापत्त्यद्वाकागोव्यद्वयः । “भीत्रार्थानां भयहेतुः” इत्यन्ते

१८६ । एवं पूर्वा राजा इन विषयोंमें निराकार । मिथु दिव्यहंशेन  
पूर्वा राजा इन विषयोंमें निराकार । अपरद्वारा राजा राजा विषयागमनाकृ । मि-  
थु दिव्यहंशेन विषयोंमें निराकार । इन विषयोंमें निराकार । विषयागमनाकृ । इन  
विषयोंमें निराकार । इन विषयोंमें निराकार । इन विषयोंमें निराकार । इन  
विषयोंमें निराकार । इन विषयोंमें निराकार । इन विषयोंमें निराकार । इन  
विषयोंमें निराकार । इन विषयोंमें निराकार । इन विषयोंमें निराकार ॥३६॥

तीर्त्तः ॥ विषयहंशेन निराकार यः केशरं  
स्वर्णदीर्घतिर्वद्यदर्दणवारः थ्रास्त्राविभौमोयुधिः ।  
तदेव नग्नताम्बुजन्मम विग्ल द्वार्गवरे रायुषे  
निःगत्वाण्णसर्वार्णव्य विजितः लेपान् तलज्जोऽन्वभृत् ॥

तीर्त्तः । अदेवाम्बुद्धीपर्वाना, भृत्याना ‘गर्वस्य, अभिमानस्य,  
वर्द्धणवारः, अवनविहा यः धर्मित्येवः सर्वभौमः सर्वामु भृमिषु  
त्यः’ एवाद्वीतियाद्यु । नन्दद्विष्ट इतिष्ठवामः । युधिः, सद्ग्रामे,  
‘कोम्पहारिषस्य, दर्शीतिवामविदितदेशोद्दलोकाधिष्ठेः देहरीतिवाम  
षिष्ठाद ददन्तप्रस्य सखायं नतु एकाकिनं, तेन शौर्याविशयो ध्वन्यते,  
“राजाः तदिष्टप्रस्तु” इत्यनेन इत्य प्रत्ययः । ‘केशरं, जर्मनाभिमान  
पदाद्वनपद्मस्य सखाजं, नतु साधारणं राजानं ‘निर्वास्पराप्नात् वदिष्टकृत्य,  
नहुत्तदा, तत्य वंशास्य वध्वा दर्श्या नयनेष्व अस्मुजन्मनी, रूपकालज्ञारः  
साभ्या दिशेषेण गवता ‘वारा’ जलाना, ‘सैरैः, निर्क्षरैः, वारणैः, नि-  
र्दग्नाम्बरैः राणसर्मार्णव्य वायव्यै रायुषैः पादचतुष्पात्मकविश्वामित्र-  
मर्णातप्तनुदेवप्रतिपादितचातुर्विध्यैः करणभृतैः विजितः । तथाच  
परिणामावद्वारः । वारिनिर्क्षराणा विजयकरणत्वमुपपादयति शायुष  
सादात्म्यारोपः । अतएव सदज्जः राष्ट्रोविजेतृत्वेऽपि तत्पत्न्या विजितत्वात्

(३६) ८ शाला माधवी नवित्रि ॥

लक्ष्मीपतीरेण्याः पार्वतिं चर्वे पर्वतिः, गायत्री ग्रहणं, गीर्वा  
स्तन्दाः, । एवम् आद भविति ॥ ११ ॥

नामिपत्र शामति भास्तावनितर्कं अभिगमोडीयते  
पूर्वमेष्टनित इत्येतत्र उत्तरता वानानन्दार्थांगते ॥  
नो मतेनाद्विपितेषि नेत्रविश्लेष्यापि त्रिगोद्वयते  
नोवा प्राप्तिमत्रेता प्रियनिर्मितेषोन मंयुज्यते ॥२१॥

अथ प्रभिः क्षारं सर्वारोग्यां वर्गपति प्रधिज्ञनात्मिति ।  
अभिपत्र, पञ्चवद्यार्थे, भास्तावनितर्कं शामति भवि ‘वर्षम्य, पुष्टम्,  
‘आगमः, शाम्रम्, आनारडति वा वर्षेणमठितआगम इति वा,  
धर्मः शास्त्रपाचारोवेतियावत् धर्मण्व फलपदन्वादगमोदृशदिति वा, “  
लाशीद्वद्वामागमाः” इत्यमरः धर्मम्य ‘आगमः, प्राप्तिरिति वा । वर्षस्य  
‘आगमः, ज्ञानं यस्मादिति धर्मोपदेष्टुति वा । ‘वर्षम्य, क्रतोः न्यायस्य  
अहिसाया उपनिषदोवा आगम इति वा । ‘वर्षम्य, धनुषः, आगमो शू  
र्वेद इतिवा । “धर्मोऽस्त्री पुण्यआचारो ऋभावोषमयोः क्रतोः अदिसोपनिष  
न्याये ना धनुर्यम सोषमये” इति मेदिर्ना । ‘हीयते, अपचीयते अभृ  
श्लेषालङ्कारः, पूर्वस्मिन्निव, यवनसम्ब्राज्यमयइव, दुर्वलेजने वलवताजनेन  
‘वाधा, पीडा, नवा ‘आधीयते, क्रियते । यवनसम्ब्राज्ये दुर्वलोवद्वता  
त्रवाध्यत इति ऐतिहासिकी प्रवृत्तिः । विषितेऽपि किमुत ग्रामेनारेवा,  
नेत्रविकल्पस्यापि, अन्धस्यापि, किमुत चक्षुष्मतः । ‘स्तेनात्, चौरै  
“चौरैकागात्कि स्तेन दस्युतस्कर मोषकाः” इत्यमरः । ‘त्रसो  
भीतिः, नो दृश्यते । राजरक्षितत्वेन सर्वत्र सर्वएव निश्शब्दकं सञ्चरन्तीति  
भावः । अर्थापत्यलङ्कारोव्यञ्जयः । “भीत्रार्थनां भयहेतुः” इत्यनेन

नरेशत्वञ्च, यस्येत्यनुपज्यते, अस्तीतिशेषः “ अस्तिर्भवन्तिपरः,, इत्याधनुशासनात् । शब्दप्रतिपाद्यत्वेनैव हि भानमर्थस्योपगतमालङ्कारिकैरित्यादेदितमेव, अधिक्तु॒॑)पदवाक्यगत्नाऽनुसन्धेयम् । परम्परितरूपकमलङ्कारः । संकरसंमृष्टिव्यवस्था मूढपद्मच्छांकार्येति ॥ ३३ ॥

यस्य प्रोद्धतवैरिवर्गकमलोलासत्रपाकारके  
कीर्तिश्वेतमयूखमालिनि वरे विद्योतिनामोदिते ।  
निशेषे सितमाश्रिते प्रियतमाभ्याशं प्रयासं विना  
निः क्राम्यन्त्यभिसारिकाः क्षणदया चन्द्रातपादीस्या ३४

यस्येति । यस्य भारतेश्वरस्य प्रोद्धतानां वैरिवर्गाणां ‘ कमलाया ’  
लक्ष्म्या, उल्लासएव ‘ कमलस्य, पद्मस्य, उल्लासः, उल्लसितं कमलमिति  
यावत् “ कृद्विहितो भावोद्रव्यदत्प्रक्षाशते ” .इतिन्यायात् । तस्य ‘ त्रपायाः, म-  
ङ्कोचस्य, कारके, अतोऽत्यन्ततिःस्फृतवाच्यतया सङ्कोचातिशयोऽवन्यते,  
श्रपायाश्चेत्नैकधर्मत्वेन सुख्यार्थस्य वाधितत्वात् । विद्योति रां मध्ये ‘ वरे,  
थ्रेष्ठे, सकलविद्योतिनिरूपित श्रेष्ठत्वशतीतिवा, कीर्तिरेव श्वेतमयूखमा-  
ली, शुभ्रांशुः तस्मिन नतु चन्द्रपस्ति, तदुदयस्य श्वेत्यानुपपादवत्वात् ।  
‘ आ, सपन्ततः । उदिते सति । श्लिष्टशब्दनियन्थनं केदलपरम्परितरूप  
कमलङ्कारः । पसिद्धचन्द्रपेतस्या व्यतिकश्च सर्वदोदितत्वेन वर्त्तिचन्द्र  
स्याधिक्यात् । निशेषे विषये ‘ सितं, शौकलश्यु, अभिते सति । अभित  
उदितत्वस्य निखिले शौकल्यावहत्वेन वायपार्थं तुर्कं क्षाव्यविज्ञप्तिङ्कारः ।

१ तथा ग्रन्थदादृदृशरीरविदोपयाचक रामरा एव दिवदरय । रात्रेण नारददरव्य भवति १  
दमानरादिताएव विद्य शाम्भनोपाय शाश्वानवार्प्यारम्भादे यद्यमिदमस्य अस्तदा ६।  
र्यापर्येद्देवव्यवहितोत्तरत निषेदनमध्यनादरणीय रुग्मा इतादिश्च ॥

तथाच काव्यलिंगम् वधवा विजितत्वस्य लज्जाचाधनत्वात् । क्लेशान् अन्  
भूत् । केशे निर्वासिते तेन वियुक्तायास्तस्य वधवास्तावान् प्रथमाः  
निश्चासश्च समजायत, येनायं नितगं क्लेशमन्वभवदितिभावः । व्याजस्तुति  
लङ्कारः, रिपुवधूविजितत्वात्मनिन्दायाः स्तुतिव्यञ्जकत्वात् । रिपुविर्गी  
णीतद्वधूनिष्ठा प्रीतिर्वाष्पनिश्वासानुभावचर्व्यमाणा प्राधान्येन धन्यमान  
कविनिष्ठा राजविषयक प्रीतिपोषक राजनिष्ठवीर्यपोषकनया द्विधा रामर  
लङ्कारथेति ॥ ३२ ॥

निशम्यमानेऽपि जयप्रयाणे स्वन्ति गर्भारिपुकामिनीताम्  
यस्यागिर्दर्वीकरमानकालकूटव्युदासेऽपि नरेन्द्रभावः ॥३३॥

निशम्येति । यस्मा भासतेश्वरम्य, जयार्थं प्रयाणे 'निशम्यमानेऽपि'  
शूद्रप्रयाणेऽपि, किमुत विलाकरमान इत्यगीर्वत्त्वजङ्गारो व्यद्वृगः । रिपु  
मिनीता, नहु मामिन्याः, गर्भाः 'स्वन्ति, पतन्ति, अन गर्भसाम्या' ।  
दक्षयागव्रतयोनमालवामिन्येन तत्र मालाइत्य प्रतिगादनारक्षारणार्था  
पोर्वार्थं, रिपुर्यद-शणोऽतिदयोस्य रद्वानः तेन च श्राणात्मामिनी  
ब्रह्म गर्भस्त्रदे व्यव्यपान नाईवव्रवणाच्चर्मर्थं गर्भद्वारनुगाता रिपु  
मिनीतद्वेन त्यज्यति भीमिं वयानक्षरगम्यायिमारान्माम दानि  
न रिपुवधूर्मर्थं वर्तया, पार्वत्य गायत्रा प्रावान्येन एन्यपानां करिष्य  
त्वं रिपुवधूर्मर्थं रिपुवधूर्मर्थं, इति । निशम्यमाण वासनाः ॥३३॥  
२३-२४ अन्ते एव रिपुवधूर्मर्थं योऽप्यामालादर्शीर्याः, रिपु  
मिनीता एव रिपुवधूर्मर्थं रिपुवधूर्मर्थं । रामालालयग्रहा  
त्वं एव रिपुवधूर्मर्थं रिपुवधूर्मर्थं, रिपुवधूर्मर्थं, आर्यामाला  
त्वं एव रिपुवधूर्मर्थं रिपुवधूर्मर्थं । रामालालयग्रहाः रिपुवधूर्मर्थं

❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀ (५९)

नरेशत्वञ्च, यस्येत्यनुपज्यते, अस्तीतिशेषः “ अस्तिर्भवन्तिपरः,, इत्याद्यनुशासनात् । शब्दप्रतिपाद्यत्वेनैव हि भानमर्थस्योपगतमालङ्कारिकैरित्यावेदितमेव, अधिकन्तु’<sup>१</sup>)पद्माक्षयगत्नाकरेऽनुसन्धेयम् । परम्परितरूपकमलङ्कारः । संकरसंमृष्टिव्यवस्था मूढपद्मष्ठो कार्येति ॥ ३३ ॥

यस्य प्रोद्धतवैरिवर्गकमलोलासन्नपाकारं  
कीर्तिश्वेतमयूखमालिनि वरे विद्योतिनामोदिते ।  
निशेषे सितमाश्रिते प्रियतमाभ्यर्थं प्रयासं विना  
निः क्राम्यन्त्यभिसारिकाः क्षणदया चन्द्रातपादीसया ३४

यस्येति । यस्य भारतेश्वरस्य प्रोद्धतानां वैरिवर्गाणां ‘ कमलाया ’  
लक्ष्म्या, उल्लासएव ‘ कमलस्य, पद्मस्य, उल्लासः, उल्लसितं कमलमिति  
यावत् “ कुद्दिहितोभावोद्रव्यदत्प्रकाशते ” इनिन्यायात् । तस्य ‘ त्रपायाः, म-  
ङ्गोचस्य, कारके, अतोऽन्ततिरस्कृतवाच्यतया सङ्गोचातिशयोधवन्यते,  
प्रपायाश्चेत्तनैकर्धर्मत्वेन मुख्यार्थस्य वाधितत्वात् । विद्योति र्तं मध्ये ‘ वरे,  
थ्रेष्ठे, सज्जविद्योतिनिरूपित श्रेष्ठत्वशतीतिवा, कीर्तिरेव इवेतमयूखमा-  
ली, शुभ्रांशुः तस्मिन् नतु चन्द्रपसि, तदुदयम्य इवैत्यानुपपादकत्वात् ।  
‘ आ, समन्ततः । उदिते सति । श्लिष्टशब्दनिवन्धनं केमलपरम्परितरूप  
कमलङ्कारः । प्रसिद्धचन्द्रपेतया व्यतिरेकश्च सर्वत्रोदितत्वेन कीर्तिचन्द्र  
स्याधिक्यात् । निशेषे विषये ‘ सितं, शौकल्यम्, आधिते सति । अभित  
उदितत्वस्य निखिले शौकल्यावहत्वेन वाक्यार्थहेतुर्कं क्षाव्य ॥ ३५ ॥

<sup>१</sup> तथा अस्त्यदायदृशरीरविरोपशाचक रामरामणदिपदस्यरे ल-८

दभान्यादिनाम् किञ्च शब्दनेत्रावाक्षारानवार्यसारमनवे

क्षुग्नामष्ठेऽक्षेऽव्यवहितोत्तरत्व निवेशनमप्यनादर्थीयं तमः

तथाच काव्यलिङ्गम् वध्वा विजिनत्वस्य लज्जाभाधनत्वात् । क्लेशान् अभी  
भूत् । केशरे निर्बसिते तेन वियुक्तायास्तस्य वध्वास्तावान् अधुपाः  
निश्वासश्च सप्तजायत, येनार्थं नितग्नं क्लेशमन्वयवदितिपावः । व्याजस्तुतिः  
लङ्कारः, रिपुवृविजितत्वात्मनिन्दायाः स्तुतिव्यञ्जकत्वात् । रिपुविषणि-  
णीतद्वधूनिष्ठा प्रीतिर्वाप्यनिश्वासानुभावचर्यमाणा प्राधान्येन धन्यमास-  
कविनिष्ठ राजविषयक प्रीतिपोषक राजनिष्ठवीर्यपोषकतया द्विधा रसां  
लङ्कारथेति ॥ ३२ ॥

निशम्यमानेऽपि जयप्रयाणे स्वन्ति गर्भारिपुकामिनीमास-  
यस्यागिर्दर्शकरमानकालकूटव्युदासेऽपि नरेन्द्रभावः ॥३३॥

निशम्येति । यस्य मासतेष्वास्य, जगार्थे प्रयाणे ‘निशम्यमानेऽपि,  
धूरप्याणेऽपि, रिपुन विलाकरमान इत्यारोपत्त्वलङ्कारो व्यहृयः । रिपु-  
मिनीना, नहु मामिन्याः, गर्भाः सरन्ति, पतन्ति, गत गर्भसावस्य वि-  
रक्तव्यागवयगानरक्षालमाविन्देन तत्त्वमहाछत्र प्रतिगादनात्मारणार्थं  
दीर्घत्वं, रिपुर्दरक्षणाऽनिदयोर्स्वयलङ्कारः । तेन श्रमणात्मामिनी-  
य एवं गर्भस्वादे व्यजरयान नाटकशब्दणालमर्त्ता गर्भशादनुपार्थं रिपु-  
मिनीनात्मेन व्यजरयनि गीति भवानकरसम्भागियानानिदाम् व्यनि-  
य रिपुकाम्यर्थं वाचसा, मात्रेण गात्रयसा प्रावान्येन व्यन्यमानां कविः  
‘रिपुर्दरक्षणाऽनिदयोर्स्वयलङ्कार व्यजरय इर्षीर्गः, रिपु-  
मिनीनात्मेन व्यजरयेत्’ इति हीनं कालोऽवलङ्काराद्यत्र  
‘रिपुर्दरक्षणाऽनिदयोर्स्वयलङ्कार व्यजरय इर्षीर्गः, रिपु-  
मिनीनात्मेन व्यजरयेत्’ इति हीनं, रिपुर्दरक्षणाऽनिदयोर्स्वयलङ्कार व्यजरयेत्

नरेशत्वश्च, यस्येत्यनुपज्यते, अस्तीतिशेषः “ ऋस्तिर्भवन्तिपरः,, इत्याद्युशासनात् । शब्दप्रतिपापत्वैवैव हि भानमर्घस्योपगतमालङ्कारिकैरत्याधेदितमेव, अधिक्षन्तु १) पदवाक्यरत्नाकरेऽनुसन्धेयम् । परम्परितरूपकमलङ्कारः । संकरसंसृष्टिव्यवस्था मूलमद्युयो कार्येति ॥ ३३ ॥

यस्य प्रोद्धतवैरिवर्गकमलासत्रपाकारकं  
कीर्तिश्वेतमयूखमालिनि वरे विद्योतिनामोदिते ।  
निशेषे सितमाश्रिते प्रियतमाभ्याशं प्रयासं विना  
निः क्राम्यन्त्यभिसारिकाः क्षणदया चन्द्रातपादीपया ३४

यस्येति । यस्य भारतेश्वरस्य प्रोद्धतानां वैरिवर्णाणां ‘ कमलाया ’  
लक्ष्म्या, उल्लासएव ‘ कमलस्य, परस्य, उल्लासः, उल्लसितं कमलमिति  
यावत् “ कुद्वितोभावोद्रव्यवत्प्रकाशते ” . इतिन्यायात् । तस्य ‘ व्रपायाः, न-  
होचस्य, कारके, अतोऽत्यन्ततिरस्कृतवाच्यतया सङ्खोचातिशयोधवन्यते,  
प्रपायाश्चेतनैकर्थर्भत्वेन मुख्यार्थस्य वाधितत्वात् । विद्योति रां मध्ये ‘ वरे,  
थेष्ठे, सरलविद्योतिनिरूपित शेषत्ववतीतिवा, कीर्तिरेव श्वेतमयूखमा-  
ली, शुभ्रांशुः तस्मिन नतु चन्द्रपसि, तदुदयस्य शैत्यात्पादकत्वात् ।  
‘ आ, सपन्ततः । उदिते सति । श्लिष्टरात्रिनिवन्धनं केवलपरम्परितरूप  
कमलङ्कारः । प्रसिद्धचन्द्रपेक्षया व्यतिरेकश्च सर्वत्रादितत्वेन वीर्तिंचन्द्र-  
स्याधिक्यात् । निशेषे विषये ‘ सितं, शौक्लयम्, आभिते सति । अभित  
उदितत्वस्य निखिले शौक्लयावदत्वेन वाक्यार्थहेतुर्कं काव्यलिङ्गमद्यारः ।

१ तर्ह अत्मदाददृशरीरविरेषयाच रामरामादिदरस्य २५ दाय नाशदरस भवति ए  
द्यमान गादिगाए विषय शास्त्रोद्यावश्याः ३१ वृषभिरात्मदरस व्यभिद्यात्मदरस ३१  
द्यतापृष्ठेऽप्यरहितोचत्वत् निपेशनमप्तनादपीय त्रिपृष्ठ व्यादिश्च ॥

चन्द्रातपै रादीसया 'क्षणदया , रजन्या, अपवर्गे वृत्तिया, तेन निर्गतं सफलत्वं व्यज्यते । प्रयासं धवलवसनभूषणपरिधाने ताहशकुष्मैः केश साधने हरिचन्दनद्रवातुलेपने अन्यादशास्त्रवरपरित्यागे प्रयत्नम्, व्रजन्ति तथैव ज्योत्स्नीष्वभिसारिकाः तदुक्तं “महिला मालभारिण्यः सर्वाङ्गी द्र्वचन्दनाः । क्षौमवत्योनलक्ष्यन्ते ज्योत्स्नायामभिसारिकाः” इति विना, प्रियतमस्य, नतु पत्युः प्रियस्यवा तदन्तिकगमने साहसासमवादं ‘अभ्याशं, समीपम्, “समीपे निकटासन्नसन्निकृप्तसनीडवत् । सदेशाभ्या सविधसमर्यादिसवेशवत्” इत्यमरः । अभिसारिकाः “अभिसारयते काः या पन्थधवशंवदा । स्वयं वाऽभिसरत्येपा धीरैरुक्ताऽभिसारिका” इदर्पणोक्तलक्षणाः । ‘निः क्राम्यन्ति, निर्गच्छन्ति । रामुदितराजर्णी॥३॥ तिशुभ्रांगुदीधितिभिर्वसनादीनां धवलयुतिशालितालाभात् । एताऽभिसारिका गणिकाद्यन्याद्य तासां प्रयासम्यानावश्यकत्वात् । तथान र्षी प्रोद्वोक्तिभिन्नेनानेन वस्तुना अभिसारिकायाऽप्युपकारित्वं वस्तु राजा यकीर्णी व्यज्यते तेन तद्विपरिणी प्रीतिरिति ॥ ३४ ॥

लोकान्ममदयन् दिशोविशदयन् ज्योत्स्नां नयं शीलयन्  
यः प्रत्यर्थिदलं तमोविदलयन् कामं समाप्तयन् ।  
मन्त्रापं नियन् सुकेम्बुद्धान्यादीपयन् मण्डलं  
मेदिन्याः प्रतिमामयन् करगतं राजत्रियं पुण्यति ॥३५॥

लोकान्निति । यः पार्वतेः, ‘राजा, ब्रह्म, अयन शूद्रम् ॥१॥  
‘रुद्रः, वर्षीयः । गते यार्तेश्वराविष्य राजदीनेन इनिवाकः ॥२॥  
‘दद्वन्तिद्वर्षे उपवासाली विशेषमपाट योद्वजियादि ॥३॥४॥  
श्वरः, ‘रमदयन् हृषीर, अनुष्ठाने पदमूलास्त्राभावाः । अःदद्वन्ते ॥५॥

कामपदस्य भवनात् । दिशो, नतु दिशं, ‘विशदयन्’ ध्वलयन्, प्रकृते  
कीर्त्या, परच ज्योत्स्नया, तेन कविप्रोढोक्तिसिद्धेन वस्तुनैतेन विमलकी  
र्तिभूयस्त्वं व्यज्यते । “विशदश्वेतपाण्डुरा” इत्यपरः । ‘ज्योत्स्नां, चन्द्रि  
काम, ‘नयं, नीतिम्, ‘शीळयन्’ कलयन् । एतच्च विशेष्यविशेषणभाव-  
प्रातिलोम्याद्गुभयत्रपक्षे योजनीयम् । विपयप्रकाशकत्वं द्वितयानुगतोधर्मः  
यमपेक्षते रूपकम् । एवमप्रेऽपि । ‘प्रत्यर्थिनां, द्विपतां, दलं तमः ‘विद-  
लयन, विशेषेण निराकुर्वन् । तेनच वीररसो व्यज्यते, तस्यच प्रधानध्व-  
निभावाङ्गतया रसवदलङ्घारः । ‘कामं, ‘काम्यते, अभिलष्यत इतिकामः  
‘इषः तं, समापूरयन् नतु किञ्चिदेव पूरयन् । तेन वदान्यतातिशयोव्य-  
ज्यते अन्यत्र ‘कामम्, अनंगम्, ‘समापुरयन्, समावर्धयन्, चन्द्रपमः  
श्रृंगारे उद्दीपनविभावत्वेन तथात्वात् । ‘सन्तापं, पीडाम्, विमवनिधत्वकल  
हादिजन्याम्, परत्र ग्रीष्मादिजन्याम् ‘तिरयन्, निर्वर्तयन्, एतेन कारणि-  
कतातिशयो द्योत्यते । सुकैरवाणि, शोभनकुमुदात्मकानि, अधिकध्वल  
त्वादाद्वादकत्वाच्च, नतु केवलकैरवरूपाणि, यानि ‘कुलानि, पितृ मा-  
त्रादिवशाः, तानि ‘आदीपयन्, प्रकाशयन् । तथाच रूपकेण दोषस्य लवे-  
नापि राहित्यं कुले प्रतीयते, इतरथं कैरवाणां ‘कुलानि, वर्गात्, ‘षु’ अति  
शयेन ‘आदीपयन्, विकाशयन् । “ सुपूजायां भृगार्थनुमतिकृच्छ्रमम्  
द्विषु, ” इति मेदिनी । अतएव “ सुभगसलिलावगाहाः इति शाकुन्त-  
लश्लोकस्य ‘षु, अतिशयेन, ‘भगो, यत्नो, येषु ते सुभगा स्तयाविधाश  
सलिलावगाहा येषु ते तथा ” इत्यर्थद्योतनिकायां व्याख्यानं संगच्छते  
भट्टचरणानाम् । यदा ‘षु, शोभनम् विकाशयन्नित्यर्थः । ‘करगतं, इस्त-  
स्थितम्, नतु करं गच्छत । ‘करं, राजग्राममागम, ‘गतम्, आधितमि-

तिवा, ग्राहकरापादानभूतमितियावत्, सर्वएव मेदिनीपण्डलस्था एतस्मा  
एव करं प्रथच्छन्तीतितात्पर्यम् । अन्यत्र ‘करः, किरणः, “वलिहस्तांगः  
कराः” इत्यमिधानात् । मेदिन्यापण्डलं, नतु त्रिचतुरानेवदेशात् । ‘प्रति  
भासयन्, शोभयन्, अर्भगश्लेषालङ्कारः । भारतेश्वरे चन्द्रमाद्यं  
तद्विषयकक्विनिष्ठुप्रीत्यात्मकप्रधान ध्वन्यमानभावांगतया गम्य  
इति ॥ ३५ ॥

असौ विजयतेतरां प्रणतमौलि पृथ्वीपति  
विंपद्धिपुलवाणिधि प्रतिविधान कुम्भोद्धवः ।  
प्रतीपनृपवाहिनी प्रलयचित्रभानुः स्फुरत  
प्रभूतनिधिमण्डल प्रथित राजराजोमनः ॥३६॥

अमाविति । असौ भारतेशः । विजयतेनगम् गर्वोत्कृष्टतया अतिः  
येन वर्तते । कथमेतदित्युत्तियतायामाकांक्षायां प्रणतेत्यादि योग्यत्वादिः  
जजकं विशेषणचतुष्टयम् तेन न गमास्तपुनरात्तनाप्रमक्तिः । प्राप्तांतिन र्था  
क्षगच्छाराः । ‘प्रणनः, गक्षेणनतः, नकेवलं ननः । ‘मौलिः, मृग्यायम  
ताद्युः, पृथ्वीपतिर्यमित्रिति वहृवीहिमर्भितोऽहृवीदिः । प्रदृतनृपविः  
यिर्यात् वृद्धीपतिनिष्ठारनिर्मात्रः प्रवानवनिभावांगतया द्युष्यते, तेन  
प्रेक्षोऽद्याराः । विशेष दृष्टरतया पिपुलारारिधिः, तस्य ‘पतिरित्वां’  
निर्मात्रः, ‘दृष्टनाद्यवः, अगम्निमुनिः । पदाविष्टोऽपि गमृथयां’  
निर्मात्रः । ‘प्रर्तीपाः, रितीविनी, ये नृपाः तेषां या ‘वादिन्यः, सेनाः, ’  
दृष्टद्विष्टनाः, नयः ‘वादिनात्यानाद्याया मेना गम्यप्रमेदयोः’ ॥ ३६ ॥  
केन्द्रिकाः । तस्य दृष्टिरित्वा नात्रः, प्रदृष्टार्थःक्षम्यैः । यद्या प्रदृष्टार्थः  
नात्रिक्षेत्र नहीः शास्त्रदेव दिर्यं नयीत, यायन्वि पिपुलेन्यानि नाश्वर्ण

तिभावः । वीरसो भावांगतया व्यंग्यः, तेन रसवदलंकारः । ‘स्फुरन्ति,  
प्रकाशमानानि, ‘प्रभूतानि, वहूनि यानि ‘निधिमण्डलानि, पञ्च शंखा-  
दीनि, तदुक्तं शब्दार्थं वे “पद्मोऽक्षियां मणिपञ्चः शङ्खो मकरकच्छपौ  
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयोनव ” इति । तेषु ‘प्रथितः’ ख्यातः,  
‘राजराजः’ धनाधिपः । विभवातिशयोव्यङ्ग्यः । क्षिप्रशब्दनिवन्धनं  
देवकपरम्परित मशिलष्टशब्दनिवन्धनमालारूपं रूपकमलंकारः । पृथ्वी  
द्वतेन निवदेऽत्र इलोके पृथ्वीतिपदोपादानेन विच्छिन्नि विशेषो भवतीति  
वोध्यम् । दृश्यते चैवं गीतगोविन्द लक्ष्मीसद्गुरादौ काव्य इति ॥ ३६ ॥

आनेत्री किलकाञ्चनस्थितिमतिव्याकोशपञ्चाश्रिता  
सा कार्तस्वरकुम्भनिर्घदमृतस्नाता सदा राधिता ।  
गोविन्दाङ्गघ्रि सरोजसेवनरता श्वेतांशुको दित्वरी  
चक्रोद्धासिशया जनस्य जननी लक्ष्मीश्वरी राजते ॥ ३७ ॥

आनेत्रीति । किलेति निश्चये । ‘काञ्चननानां, सुवर्णानां, स्थितिम्  
‘आनेत्री, प्रापयित्री, काञ्चनदानकर्त्रीति यावत् । ‘काञ्चन’ कामपि अ-  
पूर्णी, ‘स्थिति, मयांदां, नेत्रीतिवा, तृन् प्रत्ययान्तोऽयं नेत्रीशब्दः अतो  
नर्ममेष्व्याः प्रसक्तिः, नलोक्ताव्ययेत्पादिना तत्प्रतिषेधात् ‘अतिव्याको  
शया, प्रकृष्ट्या प्राणिनामुपकारकाण्येतियावत्, शोभाशालिन्या, ‘पद्मया’  
लक्ष्म्या, आश्रिता, नतु पद्माम्, तेन गुणगणातिशयो व्यञ्जयते । व्या-  
कोशस्य कुमुदधर्मस्य पद्मायां वाधादुक्तार्थं लक्षणायां तदतिशयः पुरोक्त  
रीत्याद्योत्यते । नितान्तं काञ्चनस्थितिं प्रापयित्रीतिवा । “अतिशब्दः  
प्रशंसार्थां पक्षे लंघनेऽपि च । नितान्तासम्प्रतिक्षेप लाचक्षोऽप्येप दर्शितः,,  
इति मेदिनी । निरुक्तपञ्चाश्रितत्वस्य पुरोदितप्रापयितृतायां हेतुतया का-

व्यनिष्टमहाराः । 'सा, विदिता । ख्यातेतिशावद् । कार्त्तसाहूमेन  
सौर्यादेष्यः ॥ 'महारजतकाङ्क्षे हस्यं कार्त्तस्वग्रु, इत्यमरा'र्नि  
नि'निष्टिः, 'असृतैः, पल्लिलैः स्नाना, उदाचार्याः । 'महिः शार्द  
दप्रिदीः मान्येष्व आग्निग, तेन सच्चित्ता लक्ष्मीशर्मीयिपिणी प्री  
मोः रपिनिष्टुतादेश प्रवानध्वनिशीत्यहृतया प्रेयोऽल्पाः । 'ए  
कर्त्ता, आग्निवेतिवा । 'गतु, व्रतम्, आराधिं यदेतिग "जो कर्त्ता  
प्रियोऽव्यपश्यितः स्मृतः" इत्यभिधानात् । एतत्प्रोडी कर्त्ता  
'कर्त्ता । गोविन्दस्य वायुदेवत्य ननु गाधाणम्य देवम्य, व्रतिगामी  
स्तुतेना, तथाव भगवद्विषयिणी प्रीतिमोक्षाहृतया शार्यमाना यो  
नेऽपि गणास्तति । यदा 'गोविन्दस्य, गोविन्दठकुम्हाम्य प्रीत्या' ए  
व्याप्ते प्रिया व्याकरण्य निजाहृत्य गोपते तेति । अग्नवृण्डाम् ॥  
५ ॥ ३३ ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ३४ ॥ यदा 'गोविन्दस्य, गोपत्तेः, व्रतिगोपत्तेः गोपत्ते'  
५ ॥ ३५ ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ३६ ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ३७ ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ३८ ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ३९ ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ४० ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ४१ ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ४२ ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ४३ ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ४४ ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ४५ ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ४६ ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ४७ ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ४८ ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ४९ ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥  
५ ॥ ५० ॥ एतत्त्वाः 'विनेत्रु, गोत्रु, गोपत्तेषु स्त्री इति' ॥

जननीव पाक्षिनी । दृश्यन्ते तत्सद्वरो तत्प्रयुक्तयः प्रागावेदिताः ।  
 जनस्येत्येकत्वमविवक्षितं प्रकृत्यर्थतावच्छेदकेऽन्वितत्वेन विवक्षितं वा,  
 तच्च “ जात्याख्यायामेऽस्मिन् वद्वचनमन्यतरस्याम् ” इति  
 सूत्रसिद्धम् । अतएव सम्पन्नोब्रीहिरितिषाक्यस्य ब्रीहि सामान्ये सम्प-  
 न्नत्वबुद्धियिषया प्रयुक्तस्य उपपद्यते प्रामाण्यम् । अधिकं व्युत्पचिवादे  
 व्युत्पादितं जिज्ञासुभिरत्तुसन्धेयम् । राजते ननु केवलमस्ति । अत्र पूर्वो  
 क्तानि विशेषणानि दीपनस्य योग्यत्वं व्यञ्जयन्ति तदाश्रयत्वोपपाद-  
 कानीति परिकराक्षड्वारः । अत्र प्रकरणेन प्रथममभिषया निरुक्ते बोधे  
 जाते पश्चादस्य वाक्यस्यानेकार्थकं पद्धतितत्वाध्यवसायाऽजायमानं वल्ल-  
 तात्पर्यज्ञानमभिधान्तरग्रहेण सधीचीनं द्वितीयार्थं व्यञ्जनयैव वृत्त्या  
 सम्पादयति तदुक्तम् “ अनेकार्थस्य शब्दस्य प्रस्तावः यैर्नियन्त्रिते । एक-  
 ब्राह्मेऽन्यघीहेतुर्वर्षज्ञना साऽभिधाश्रया ” इति । सच द्वितीयार्थः ‘सा,  
 ‘एन, विष्णुना सहिता “ अक्षरो वासुदेवस्या दित्यभिधानात् । सकल  
 जनप्रसिद्धेति वा, कविसमवेतानुभवगोचरीकृत तत्त्वकारवतीति वा ।  
 ‘काङ्गन, अनिर्वचनीयाम् ‘स्थितिं, कैवल्यस्तपां मखात्मकतामिति पा-  
 द्यत् “ यतोवाचो निवर्तन्ते जपाण्य मनसा सह । यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्वाम  
 परमं सम् ” इति भगवद्वीतावचनात् । विभवानामवस्थितिं वा, आनेच्ची,  
 वतिआनेच्चीतिवा । ‘अतिव्याकोशो, प्रकृष्टविक्षिते, ‘पद्मे, कमळे ‘आश्रिता’  
 स्थिता । कार्त्तस्वर कुम्भेभ्यः मत्तग्जोदृतेभ्यः निर्यद्धिः ‘अमृतैः, सुधाभिः  
 स्नाता, तथाहि तन्त्रे लक्ष्म्याध्यानम् “ कान्त्या काङ्गनसलिभां हिमगिरि  
 प्रख्यैश्चतुर्भिर्गैर्जैर्हस्तोत्तिः स हिरण्यामृतपट्टरामित्यमानां थियम् । वि-  
 भ्राणां वरमवजयुग्ममभयं दृस्तैः किरीटोऽज्ज्वलां क्षोमावद् नितम्बविम्ब  
 क्लितां वन्देरविन्दस्थिताम् ” इति एवं “ तथैव वैष्णवीशक्तिर्गरुदोपरि

(६६) श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम्

संस्थिता । शंखचक्रगदाशार्द्धत्रिलक्ष्मीस्ताभ्युपायगो” (१) इति । यद्वा क्रमं  
द्वासिनि हरी शेते इति चक्रोद्धासिशयेरि । “शयः शश्याहिपाणिषु”  
इति॑मेदिनी । सदाराघितेत्यादि पूर्वोक्तार्थरूपम् । जनस्य जननी “भारी  
कोकजननी” इत्यमरा । ‘लक्ष्मी’वरी, लक्ष्मीरूपा ईश्वरी, राजत इति॑  
इ द्वितीयार्थवर्णनमसम्बद्धं माप्रमाद्यक्षीत् इति लक्ष्मीश्वरीलक्ष्मीरूप  
योपमानपादः कल्प्यते तदत्र लक्ष्मीश्वरी लक्ष्मीश्वरीव इत्युपमाकङ्कारोऽ  
था मूलंया व्यञ्जनया प्रतीयते, तेन चेयमवृत्यमुपास्येति व्यञ्जयार्थमूरु  
व्यञ्जनया गम्यते, एवच्च तथैव तद्र्वणनस्यावश्यकत्वमितितद्र्वणनारम्भ  
युक्तियुक्त इतिवोध्यमितिसंक्षेपः ॥ ३७ ॥

आसीहासीभूतासीमभूमीतलासीनसातराशिभूसुरसुना  
सीर नासीखदाचरिता सीमासमासंकशुकसूक्ष्मताधरी  
कृताणुप्रसुखशेषुषीकोच्छण्डपण्डीकृतोद्दण्ड प्रचण्डचण्ड  
वैतण्डिकोपमितस्ववन्मदगण्डवेतण्डपाखण्ड पापण्ड  
मण्डलाखण्डलाभिधान पण्डितप्रकाण्डकाण्डपुण्डरीक  
मार्तण्डमण्डलविस्मारित विपश्चिन्निकुरम्बमण्डनमण्डन  
प्रवेकदूरदर्शि वसुमतीशिखण्डखण्डिकाताण्डविताण्डीर  
क्षीरनिधि तीखुण्डलितहिण्डीर पाण्डुरानवदलित शा-

(१) नच चक्रोद्धासिशयाया । पद्माश्रितत्वायोगादयोग्यताप्रसङ्ग इति वाच्यम्, तयोर्मेदामाद्यते  
तेषैः । सत्वेषु वहुलेषु, वक्षण स्सृष्टिकर्तृत्वे विष्णो स्तथात्वबोधकानामागमानामपि प्राप्ताण्य-  
पथ्यतएवोपादित वेदितव्यम् । किञ्च द्वितीयव्याख्यायां तोमेषोऽपि निरुक्तशङ्काया इति ॥

(२) श्रोत्रियेतिवापाठः

ॐ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ॐ (६७)

भूत प्रभूतभूरिभूपण विज्ञातसमज्ञाश्रित महीवितत महा  
मह महिम महितसमहितपरः, शङ्कर इवापरः ।

अथ लक्ष्मीश्वरीचरितं धर्णयितुकामः कविस्तदग्रस्या तस्याः पूर्वजेषु एर्ण  
रीयेषु सर्वधा माधान्यादादौ गोविन्ददृष्टकृरं धर्णयति वासीदित्यादिना ।  
तत्र आसीदिति गोविन्दोनामपिथिष्ठायोमिति परेणान्वितार्थकम् । नामेति  
छुसतृतीयान्तपव्ययम् । तथा च तादात्म्यं गोविन्दपदेन च रामाभिषेयो  
गोध्यते, तथा च नामाभिषेन गोविन्दपदेनाभिषेयो मिथिष्ठायामार्तीदि-  
त्यर्थः । घटुभिर्विशेषणोविन्दं विशिनए, दासीभूतेत्यादि, दासीभूता  
नहु दासीकृताः, तेन च सज्जितयनिष्ठा गोविन्दविषयिणीरतिर्वत्यते ।  
च्छप्रत्ययेन चाशूततद्वाच्योपदेन तत्र मादात्म्यातिशयरथाया । आर्तीम-  
पुमीतले 'आर्तीनाः' रथताः, आसेश्वानचः प्रधानक्रियाद्गुरुपेनार्तीत-  
काळार्थकत्वात् “धातुतरवन्धे पत्वयाः” इति च भगवतः पाणिनेरभि  
पानम् । नहु एचिदेव भूतले रिषताः । एतामिमारतात्तारताथ रामप्रसादां  
विदुपां पापुनां मान्यानाऽच्य रामुदाया इत्यर्थः । ते यत्य एताः ।  
एषतिरेकोऽलङ्कारः, सातराशिगतनिकर्षपर्णगात् । भूतिरयद्गुमालोऽ-  
एदञ्च शब्दार्थाद्वारयोरसंहृष्टः, एवाधयादुप्रयेषसङ्गेष्ठशणे शास्त्रे  
माप्रशदामयेदो शब्दालङ्कारयोरतयोरसंकारः, इतपा संहृष्टिरेत्तदेऽपि ।  
भावरेति । 'भूतराणाम्, द्विजानाम्, 'एतार्तीरः, इन्द्रः । शोभिष्ठ एता-  
र्तीरतिराहेऽपि एषाएवार्पः ॥ नार्तीरेति । 'नार्तीरद्व, तेनादृष्टद,  
एरान् पराजेऽु सेष्याश्रगामिददितियायद्, लादरिता, "तेनादृष्टं ह नार्ती  
रद्" इत्यगरा । एतद्विशेषणां एव्यमाणादरीदरण्डिष्ठ/एतद्वात्-  
गोविन्दज्ञेषु परमाद्विशेषेष्ठोषेणी, अतोदाहुर्देवात्मः । एव-

मुपपाचाकङ्कारौ । तयोस्संसृष्टिः । ‘अभीमा, निश्चिविविप्या, नवैर्गति  
तपदत्वदूपणमापयने, सीमन्निनिपदम्य द्विवोपादानादिनिश्चानीयम्, एव  
सीमन्निनितिनान्तपदस्य परत्रमीपा शब्दस्याजन्तस्य मद्भावात् । मुख्यार्थावै  
न परज्ञभिन्नार्थं स्यपदर्शिनत्येनोभयत्रसमानशब्दस्य सत्येऽपि क्षत्यभावात् ।  
एतेनार्थपौनहत्यमपि पगस्तं वेदितव्यम् । ‘असमा, अनुपमा, तेन अनभ-  
याङ्कङ्कारोव्यज्यते । ‘असंकशुका, अनस्थिरा, “संकशुकोऽस्थिरे”  
इत्यमरः । स्थिरत्वं पती द्योत्यने, नचैतम्य वाच्यभूतस्थिरभिन्नभेदभेद-  
त्वेन व्यङ्ग्यत्वं न सम्भवतीतिवाच्यम्, स्यादेवं यदि आथ्रयभेदस्य व्य-  
ङ्ग्यत्वं नियामकत्वं स्यात्, नचैवं, पर्यायोक्तालंकारव्याकोपप्रसंगात्,  
किन्तु स्वावच्छेदकभेदस्य वाच्यतावच्छेदकानुयोगिकस्य, तथैव मम्पटा  
दीनां स्वरसात्, किञ्च तद्धर्मवद्विन्नभेदस्य तद्धर्मनान्तमकत्वपसेऽनपवाद  
मेव व्यङ्ग्यत्वमुक्तपक्षेऽपि । पर्यायोक्तालङ्कारः, स्थिरत्वेन  
रूपेण विवक्षितस्य स्थिररूपार्थस्य विच्छिन्नविशेषाधायकेन  
स्थिरभिन्नभेदेनाभिधानात्, “केनचिद्बूपेण व्यङ्गजनया लभ्य-  
स्यार्थस्य ततोऽपि चारुतररूपेण यदभिधया प्रतिपादनं, तत्पर्यायोक्तम्”  
इति रसगङ्गाधरर्मप्रकाशिकायां नागेशोन प्रतिपादनात्, अस्ति च स्थिर-  
त्वापेक्षयाऽनस्थिरत्वस्य चारुतरत्वं सहृदयहृदयसाक्षिकं, भिन्नत्वञ्च  
युक्त्यनुगृहीतमितिविभावनीयम् । सीमासमेत्यत्र च्छेकानुप्रासः, अपम  
पि संसृज्यते परैरलङ्कारैः । सुक्ष्मतया अधरीकृतः, नत्वधरः कृतः, अणूनां  
द्वचणुकानां ‘प्रमुखः, प्रधानं परमाणु र्येति तादृशी, परमाणुश्च “जा-  
कान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः । तस्य पष्ठतमोभागः परमाणुस्त-  
ु इत्युक्तलक्षणः । अत्र “तस्य पष्ठितमोभागः” इति पाठस्तु  
द्वाभ्यां परमाणुभ्यां द्वचणुकं, त्रिभिस्तैत्रघणुकमिति हि

## ❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀ (६९)

काणादसिद्धान्तः सत्येवं कथमिव त्रयणुकरूपस्य दृश्यमानस्य सूक्ष्मरजसः पष्ठितमभागत्वं परमाणो भवेदित्यलप्पमस्तुतेन विचारेण । शेषमुखी, विशेषपूर्वदिः । न तु साधारणी, शेते इतिशे, शेः विच्, शोहः, तं मुण्णनि या सादि शेषमुखी, सुपस्तेये (क्रचा०) मूलविभुजादित्वात् कः, गौरादित्वाद् द्वीप्, “घीः पङ्गा शेषुपी मतिः,, इत्यमः । परमाण्वपेक्षया विशेष प्रतिपादनात् व्यतिरेकालङ्कारः । चित्र प्रत्ययेन चायं मत्यन्तरसापेक्षः प्रतीयते । निरुक्ता शेषमुखी यस्य स इति ॥ उच्छण्डेति । ‘उच्छण्डम्, शीघ्रम्, न तु विलम्बेन, ‘एण्डीकृतानि, निष्फलीकृतानि, तेन च विज्ञताति-शयोव्यज्यते, एतदन्तरेण वक्ष्यमाणाभिधानस्य निः फलीकरणं हि नोपप-धते । पण्डपदमुख्यार्थस्य छीवत्वस्यायथासंस्थानवत्त्वरूपस्य प्राणिधर्मस्यो-क्तौ धाधात्कथितार्थे लक्षणावृत्तेशाथ्यणान्नैःफलयातिशयोऽत्यन्ततिर-स्कृतवाच्यं ध्वन्यते, इयज्ज्वलक्षणा गौणी सारोपा, सादृश्यसम्बन्धप्रयुक्त-त्वात् । न च नेयार्थता, निः फलेऽर्थे पण्डपदस्य रूढेः प्रयोजनस्य च दर्शि-सस्य सद्भावात् । अत्रापि चित्र प्रत्ययस्य प्रागुदीरित दिशाव्यञ्जयार्थोवोध्यः । ‘उच्छण्डानाम्, उद्भत्ताभिधानवताम्, “अभिधाने ग्रहे दण्डः,, इति विश्वः । ‘प्रचण्डानाम्, प्रतापवताम्, “प्रचण्डोदुर्वहे शेतकरवीरे प्रतापिनि” इति मेदिनी । ‘चण्डानाम्, तीव्राणाम्, “चण्डस्तु तीव्रे दैत्यविशेषेच” इति हेमचन्द्रः । यमकालङ्कारः । ‘वैतपिण्डकानाम्, स्वपक्षमसंस्थाप्यैव पर-पक्षमुपालभयानानाम्, “स स्वपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा” इति प्रथमा-ध्यायस्य द्वितीयाद्विनके महर्षेगौतमस्य सूत्रम् । प्रतिपक्षस्थापनाहीना विज-गीपु कथा वितण्डेत्यर्थः पर्यवस्थति तस्य, वितण्डया प्रवर्तमानो वैतपिण्डकः । स्वत्र ‘मदो, दानवारि, याभ्याममू स्ववन्मदो, तौच ‘गण्डौ, कपोलौ, ऐ-पां ते स्ववन्मदगण्डाः, तेच ‘घेतण्डपाः, गजपतयः । ते उपमिता यैस्तेपास्,

(६८)      ❁ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❁

मुपमाचारङ्कारौ । तयोस्संसृष्टिः । ‘असीमा, निरविधिविषया, नचेऽन्ति  
तपदत्वदूषणपापद्यते, सीमन्नितिपदस्य द्विग्रोपादानादितिशब्दनीयम्, एव  
सीमन्नितिनान्तपदस्य परत्रसीमा शब्दस्याजन्तस्य सज्जावात् । मुख्यार्थवारे  
न परत्रभिन्नार्थं स्यपदशिवत्वेनोभयत्रसमानंशब्दस्य सत्त्वेऽपि क्षत्यभावात् ।  
एतेनार्थपौनक्षत्यमपि परास्तं वेदितव्यम् । ‘असमा, अनुपमा, तेन अन्तः  
याङ्कङ्कारोऽव्यज्यते । ‘असंकशुका, अनस्थिरा, “संकशुकोऽस्थिरे”  
इत्यमरः । स्थिरत्वं मतौ द्वित्यते, नचैतस्य वाच्यभूतस्थिरमिन्नमेदमेद-  
त्वेन व्यद्वयत्वं न सम्भवतीतिवाच्यम्, स्यादेवं यदि आश्रयमेदस्य व्य-  
द्वयत्वं नियामकत्वं स्यात्, नचैवं, पर्यायोक्तालंकारव्याकोपप्रसंगात्,  
किन्तु स्वावच्छेदकमेदस्य वाच्यतावच्छेदकानुयोगिकस्य, तथैव मम  
दीनां स्वरसात्, किञ्च तद्वर्द्धन्नमेदस्य नद्वर्णात्मकत्वपक्षेऽनपवार  
मेव व्यद्वयत्वमुक्तपक्षेऽपि । पर्यायोक्तालङ्कारः, स्थिरत्वेन  
रूपेण विवक्षितस्य स्थिररूपार्थस्य विच्छिन्नतिविशेषाधायकेन  
स्थिरमिन्नमेदेनाभिधानात्, “केनचिद्वृपेण व्यञ्जनया इम-  
स्यार्थस्य ततोऽपि चाहतररूपेण यदभिधया प्रतिपादनं, तत्पर्यायोक्तम्”  
इति रमगङ्गाघरमर्मपकाशिकायां नागेशेन प्रतिपादनात्, अस्ति च स्पि-  
त्वापेक्षयाऽनस्थिरत्वस्य चाहतुरत्वं सहदयहृदयसासिकं, मिन्नत्वद्वय-  
युक्तव्यनुगृहीतमिन्निविषयावनीयम् । सीमाममेत्यत्र च्छेकानुप्राप्तः, अपम  
पि संमृज्यते परंरघद्वारैः । गृहमतया भवर्गकृतः, नत्वधरः कृतः, अणतां  
द्वयानुकानां ‘प्रमुखः, प्रधानं परमाणु र्येति नादर्था, परमाणुथ “ता-  
वान्नरगते भानौ यन्मृदमं दृश्यते रजः । तस्य प्रमुतपोमागः परमाणुभ  
उच्चरन्” इत्युक्तव्यतरगः । अत्र “तस्य प्रमितपोमागः” इति पाठ्य-  
मादिकरद, द्वाख्यां परमाणुध्यां द्वयगुरुं, विभिस्मीमूलयगुरुभिति ॥

## ❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀ (६९)

काणादसिद्धान्तः सत्येवं कथमिव व्रयणुकरूपस्य दृश्यमानस्य सूक्ष्मरजसः पष्ठितमभागत्वं परमाणौ भवेदित्यलमप्रस्तुतेन विचारेण । शेषुखी, विशेषधुद्धिः । न तु साधारणी, शेते इतिशो, शेः विच्, पोहः, तं मुष्णानि या साहि शेषुखी, मुपस्तेये (क्रचा०) मूलविभुजादित्यात् कः, गौरादित्यात् छीप्, “धीः प्रज्ञा शेषुपी मतिः,, इत्यमरः । परमाण्वपेक्षया विशेष प्रतिपादनात् व्यतिरेकालहृकारः । चिव प्रत्ययेन चायं मत्यन्तरसापेक्षः प्रतीयते । निस्त्का शेषुखी यस्य स इति ॥ उच्छण्डेति । ‘उद्घण्डम्, शीघ्रम्, नतु विलम्बेन, ‘पण्डीकृतानि, निष्फलीकृतानि, तेनच विज्ञताति-शयोव्यज्यते, एतदन्तरेण वक्ष्यमाणाभिधानस्य निः फलीकरणं हि नोपप-धते । पण्डपदमुख्यार्थस्य छीवत्वस्यायथासंस्थानवत्त्वरूपस्य प्राणिर्धर्मस्यो-कतौ वाधात्कथितार्थे लक्षणावृत्तेशाश्रयणात्त्वैःफलयातिशयोऽत्यन्ततिर-स्कृतवाच्यं धन्यते, इयञ्च लक्षणा गौणी सारोपा, सादृश्यसम्बन्धप्रयुक्त-त्वात् । न च नेयार्थता, निः फलेऽर्थे पण्डपदस्य रूढेः प्रयोगनस्य च दर्शि-त्वस्य सञ्चावात् । अत्रापि चिव प्रत्ययस्य प्रागुदीरित दिशाव्यञ्जयार्थोवोधयः । ‘उद्घण्डानाम्, उद्गताभिमानवताम्, “अभिमाने ग्रहे दण्डः,, इति विष्णः । ‘प्रचण्डानाम्, प्रतापवताम्, “प्रचण्डोदुर्वै हेषतकरवीरे प्रतापिनि” इति भेदिनी । ‘चण्डानाम्, तीव्राणाम्, “चण्डस्तु तीव्रे दैत्यविशेषेच” इति हैमचन्द्रः । यमकालहृतारः । ‘षैतण्डिकानाम्, स्वपक्षमसंस्थाप्यैव पर-पक्षमुपालभगानानाम्, “स स्वपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा” इति प्रथमा-ध्यायस्य द्वितीयादिनके मर्त्येगौतमस्य सूत्रम् । प्रतिपक्षस्थापनाहीना विज-गीषु कथा वितण्डेत्यर्थः पर्यवस्थयति तस्य, वितण्डया प्रवर्तमानो षैतण्डवः । स्वतन् ‘मदो, दानवारि, याभ्याममू स्वतन्मदो, तौच ‘गण्डो, करोळो, ये-पां ते स्वतन्मदण्डाः, तेच ‘षैतण्डपाः, गजपतयः ते उपमिता यैस्तेषाम्,

न तु भावन्त्यात् । एवमेवोत्तरात् उपर्युक्तं विवरणं इति ।  
‘अद्वानाम् । निविद्यात् ।’ एवमेव एव इत्येवं इत्युक्तं  
इत्यमग्नः । ‘गतात्परं लभित्वा ।’ एवमेव विवरणं विवरणं  
निषयते । वै वाचस्पति ने एव च अद्वानेऽप्युक्तः ॥ इत्येवं  
मग्नद्वानाम् । आद्वान्त्यात्, इत्युक्तः । विविद्यात्, उक्तः, एव  
नया । एवत्वं नाहृत्यात् अद्वान्त्यात् विविद्यात् विवरणं विवरणं ॥  
निष्ठत्व्य वर्णे ग्रहयात् विवरणोऽवन्तते ॥ विविद्यात्, प्रवृत्तः, विवि-  
तः, ‘विविद्यात् । नकान्त्युदात्तुजो शृणुत्वात् त्वयै ॥ इति  
नामलिङ्गात् त्वात् । तेसां जान्त्येवाः यमकात्तुमः । न एव वैयो  
पाण्डुरत्वात् ‘पुण्डरीकं, निनान्तोऽन् । तत्र ‘पाण्डित्यन्, एव ॥ न एव  
म् । सक्षम्यथेयनोविश्वितः प्रमोदात्तः नोभकात्क इतियादः । एव  
स्त्रियुषवृद्धिविवरणं केवलरस्यरित्यवस्थात्तुराः ॥ विवरणेवते । विस्ता-  
रिताः ‘विविद्यतो, विद्युषो, ‘निहर्म्बस्य, नमूर्दत्य, ‘निहर्म्बद्वद्व-  
स्त्रक्षम्” इत्यपरः । ‘मण्डनम्, भूषणम्, ‘मण्डनः, मण्डनमित्रः, ‘मण्ड-  
कः, प्रवानं वेषां ते दूरद्विनितः, न तु जायारपात्तविद्यानः । एतदशा-  
मृतः । निलक्ष दूरद्विनितियोगिकं नाहृत्यात्यात् विद्यानः । एतदशा-  
मृते, सचायं भन्देहसङ्गोधनतेः । पर्यायोक्त्रं यदक्षव्यालंकारौ । वयोस्म-  
सृष्टिः ॥ वसुमतीति । ‘वसुमत्याः, पृथिव्याः, विद्युतिद्विद्याः, वि-  
रोमुषणम्, तेन चतु भाषात्म्यातिशयोद्योत्यते । यमकालंकारः ॥ ताण्ड-  
वितेति । ‘ताण्डविताञ्छपनृत्याया, क्षीरनियेः नत्यस्यर्तिरे, तेन हिन्दीरे  
घावल्यातिशयोद्यव्यपानः कीर्त्तौ वैपल्यातिशयं प्रत्यायविति । ‘हिन्दि-  
तः, पुञ्जीमृतः । यो ‘हिण्डीरः, फेनः, ‘हिण्डीरोऽविवक्षः फेनः, इति-  
ः । ‘पाण्डुरया, श्वेतया, छुतोपमाञ्जङ्गारः । ‘जनवदस्तिषया,



धुरन्धरावन्ध्यसन्धानविद्धसाधुबुधितानवधिमाधुरीकं  
संसिद्धिधबलं तमधामधृतं प्रवृद्धश्रद्धासमेधितद्वैजा-  
ताभिजनप्रधानश्रोत्रियवंशविपुलमौक्तिकप्रसवावतंसः।

विविधेति । ‘विविधेन विधिना, ‘अनुदिते जुहोति, उदिते जुहोति  
सायं जुहोति’ इत्यादिना प्रमाणान्तराप्राप्तकमेविधायकेन वाक्यजातेन, ‘वि-  
वोधितस्य, इति कर्त्तव्यतावेदकवाक्यस्त्रहकारेण ज्ञापितस्य, विधेरशब्दे-  
सापेक्षत्वात् तच्च साध्यं साधनमितिकर्तव्यता च । यथा चैतेषां वाक्यार्थं  
वोधेभानं तथोपपादितं न्यायप्रकाशटिप्पण्यामस्माभिः ! अतएव विपद  
मपि सार्थकम् । ‘विधानस्य, क्रमस्य, करणे लयुद् । सच्च द्विविधः शान्दः  
आर्थश्च यत्र कल्पनागौरवं प्रभज्यते, तत्र शाब्दक्रममपहायार्थक्रमआदित  
इति न्यायमाळायां स्पष्टम् । अनुरोधिना ‘सन्ध्यात्रयस्य, प्रातरादेः, स-  
म्बन्धिना तिस्रु सन्ध्यास्वित्त्वर्थः । ‘मेध्यस्य’ पवित्रस्य, ‘संशोधित-  
स्य, प्रोक्षणादिनोत्पादित शक्तिकस्य, इयमेवाधेयशक्तिरित्युच्यते । ‘प्रा-  
उयस्य, पञ्चुरस्य, ‘सान्नाज्यस्य, हविषः, “प्राय्यसान्नाज्यनिकाप्या-  
र्येत्यादिना साधुएतत्पदम् । “सान्नाज्यं हविः” इत्यमरः । नीळतिलस्य  
सितशूकस्य, यवस्य, “शितशूकयवौ समौ” इत्यमिधानात् । हवनेन  
‘संवर्ध्यमानात्, वृद्धिप्रापितात्, ‘सामिधेन्या’ समिध आर्नीयन्तेऽनया’कुचा  
इति सामिधेनीकुक्’ तथा “समिधामाधानेष्येयण्” । “कुक्सामिधेनी-  
घारया च यास्यादग्निमिन्धने” इत्यतुशासनम् ‘समुपधीयमानैः, वितीर्ण-  
माणिः । इन्धनैः ‘ममिद्धतरात्, अतिशयेन दीप्तात् । ‘थ्रीतवैश्वानरात्,  
थौताग्नेः । ‘प्रोद्धतया, प्राद्धतया, सुगन्वस्य ‘धोरण्या, प्रापयिष्या, “या-  
इनं यानं युग्मपत्रच्च धोरणम्” इत्यमरः । ‘वृम्यया, वृमस्य संन्या, पा-  
दादत्वात् यः । ‘आवदाभिः, जनिताभिः, ‘वन्धुराभिः, उन्नताभिः-

नताभिश्च, “बन्धुरं तून्नानतम्” इत्यमरः । धाराभिः, अविच्छिन्न  
सन्दानैः, अन्धकारेण ‘अतिबन्धुरम्, अतिमनोऽप्य, धरातलं भूतलं येन  
सतयोक्तः । इवनान्वयिकृतिजन्यत्वं विग्रहस्थायास्तृतीयाया अर्थः । ए-  
केति । ‘सोत्सेषस्य, उन्नतस्य “उत्सेष उन्नतिः” इत्यनुशासनात् ।  
धर्मध्वजस्य ‘एकः, स्वसजातीयद्वितीयरहितः, धुरन्धरः । यद्वा ताटशा  
तिवन्धुरे धरातले एको धर्मध्वजधुरन्धरः निरुक्तद्वन एतत्कृतृकत्वस्य  
व्युत्पत्तिवैचित्रयेण काभइति । अवन्धयेति । ‘अवन्धयम्, अनि पफलं, स-  
न्धानं प्रतिज्ञायस्यतः । न च “बन्ध्यः पष्टः,, इत्यनुशासनं बन्धयपदस्या  
भिधाग्राहकम् एवज्ञच निःफलेत्पदस्याभिधाशक्तेरपामाणिकतया हीव  
प्रतियोगिकसाटश्यसम्बन्धस्यसत्वेन साध्यवसान गोणलक्षणायाएवाश्रय-  
णीयतया प्रयोजनस्य रूढेष्वदिरहेण नेयार्थताप्रसङ्गः रूढि प्रयोजनान्यत-  
स्याभावे क्षक्षयार्थं वोधनकत्वस्यैवतदात्मकत्वादितिष्ठाच्यम्, “अवन्ध्यं  
दिवसं कुर्वत्” “अवन्धयकोयस्यविद्वन्तुरापदाम्” इत्यादि मचुर प्रा-  
माणिक प्रयोगस्योक्तार्थे दर्शनात् रूढेः, नैः फल्यातिशयात्मकरय प्रयोजन  
स्यचाक्षतत्पेनोक्तदोपानवतारात् । यद्वा अवन्ध्यं ‘सन्धानं, शानं यस्य  
स इति “दीपिकाद्वितयंवान्ये प्रदीपद्वितयं सुतो, स्वपतो सम्यगुत्पाद गो-  
विन्दशर्म विन्दति” इति काव्यप्रदीपान्ते रवयमभिधानात् । विदेति ।  
‘विद्धं, क्षिप्तम् अष्टरीकृतमिति यावत्, “विद्धरयाद्वेषितेक्षिप्ते सटशेषा-  
धितेक्षिप्तु” इति विश्वमेदिन्यौ । साधूनाम् असकृत्पूदोक्तार्थवानाम्, ‘हु-  
धितं, शानंयेन सः भाषेत्तमत्ययः, सापुसमधिकरुद्धिमानिति भादः ।  
प्रतिरेकाङ्क्षारः यद्वा अवन्ध्यसन्धानेन एरिधन्द्रादिना ‘द्विदुः, सप्तशः,  
साषु, सम्यक् ‘हुधितं, शानं यस्य राइति । अनवधीति, अनवधिः प  
ष्टेदेन सीम्नाघरहिता निदिष्ठावा माधुरीयस्या रत्याभूता ‘सं

धुरन्धरावन्ध्यसन्धानविद्धसाधुबुधितानवधिमाधुरीकं  
संसिद्धिधवलं तमधामधृतं प्रवृद्धश्रद्धासमेधितद्वैजा-  
ताभिजनप्रधानश्रोत्रियवंशविपुलमौक्तिकप्रसवावतंसः।

विविधेति । ‘विविधेन विधिना, “अनुदिते जुहोति, उदिते जुहोति  
सार्यं जुहोति” इत्यादिना प्रमाणान्तराप्राप्तकर्मविधायकेन वाक्यजातेन, ‘वि-  
वोधितस्य, इति कर्त्तव्यतावेदकवाक्यसहकारेण ज्ञापितस्य, विधेरशब्दये-  
सापेक्षत्वात् तच्च साध्यं साधनमितिकर्त्तव्यता च । यथा चैतेषां वाक्यार्थं  
वोधेभानं तथोपपादितं न्यायप्रकाशटिष्पण्यामस्माभिः ! अतएव विपद  
मपि सार्थकम् । ‘विधानस्य, क्रमस्य, करणे लयुद् । सच्च द्विविधः शब्दः  
आर्थश्च यत्र कल्पनागौरवं प्रभज्यते, तत्र शब्दक्रममपहायार्थक्रमाद्रिप्त  
इति न्यायमालायां स्पष्टम् । अनुरोधिना ‘सन्ध्यात्रयस्य, प्रातरादेः, स-  
म्बन्धिना तिसृषु सन्ध्यास्त्वित्यर्थः । ‘मेध्यस्थ’ पवित्रस्य, ‘संशोधित-  
स्य, प्रोक्षणादिनोत्पादित शक्तिकस्य, इयमेवाधेयशक्तिरित्युच्यते । ‘प्रा-  
र्जयस्य, पञ्चुरस्य, ‘सान्नाज्यस्य, हविषः, “प्रार्जयसान्नाज्यनिकाप्या-  
द्येत्यादिना साधुएतत्पदम् । “सान्नाज्यं हविः” इत्यमरः । नीलतिलस्य  
सितशूकस्य, यवस्य, “शितशूकयवौ समौ” इत्यभिधानात् । हवनेन  
‘संवर्ध्यमानात्, वृद्धिप्रापितात्, ‘सामिधेन्या’ समिध आनीयन्तेऽनप्य’ऋचा  
इति सामिधेनीक्रुक्’ तया “समिधामाधानेष्येयण्” । “ऋक्सामिधेनी-  
घाया च यास्यादग्निमिन्धने” इत्यनुशासनम् ‘समुद्धीयमानैः, वितीर्य-  
पाणैः । इन्धनैः ‘समिद्धतरात्, अतिशयेन दीप्तात् । ‘श्रौतवैश्वानरात्,  
श्रौताग्नेः । ‘प्रोद्धतया, प्रोद्धतया, सुगन्धस्य ‘धोरण्या, प्रापयित्र्या, “वा-  
हनं यानं युग्मपत्रञ्च धोरणम्” इत्यमरः । ‘धूम्यया, धूमस्य संहत्या, पा-  
षादित्वात् यः । ‘आवद्धाभिः, जनिताभिः, ‘वन्धुराभिः, उन्नताभिः’



## (७४) ❁ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❁

प्रकृतिर्यस्यसः । “ गवधिस्त्ववधानेस्यात्सीम्निकाळेविलेपुमान् ” इति  
मेदिनी । “ संसिद्धिप्रकृतीत्विमे ” इत्यमरः । धवक्लेति, धवक्लतमेत  
‘ धाम्ना तेजसा सात्त्विकेनवाप्रभावेणघृतः, अथवा अनवधिमाधुरीं  
इतिच्छेदः, ‘ संसिद्धं, मन्त्रादीनामनुष्ठानेन सिद्धं, यद् धवक्लतमं ध  
सामर्थ्यं तेजोवा, तेनघृतइत्यर्थः “ धामशक्तौ प्रभावेच तेजोमन्दिरजन्मा  
इति विश्वः । “ संसिद्धिः प्रकृतौ सिद्धौ ” इत्यमरः । नहु घृतताद्वा  
मेति माहात्म्यातिशयोव्यद्गः ।

नियतिभेद शलभ सुलभोच्छेदिदशाविशेषानपेक्षि  
थ्राकान्त संक्रान्त संततोद्योतमानध्यान प्रदीपावधृत  
मूल भूतानाद्यविद्याध्वान्ततया ऽवधारिताश्रितानेको  
पनिपदद्वन्नोद्दीयमानानन्दमन्दिरः ।

प्रवृद्धंति । प्रवृद्धप, प्रोढपा, अद्रया ‘ममेधितः, ममुपनितः, ॥  
दद्वावदायम्यपः, अनप्तव ‘अमपः, अतुलित पवितः अनुपमर्म  
मानिनियादत् । हेतानेति, ‘द्रिताते, विपम्य अपम् ‘अविजनः, अ  
दायः, “कृटात्यभिजनान्वर्यो” इत्यमरः । तत्र प्रधानम् यः थ्रोविग  
द्वृत्तीदीर्घात्मनं वंगः पण्डवंशोयेणुमनम्य विपूलो पश्चात्, पौमित्रम्  
स्त्रहेऽप्रदेशःभृत्यगम, वशिष्ठेषो पौक्तिकम्योन्यसेः । श्रिष्टशब्द तिव  
देवदारामास्त्रपद्मपद्मुरां इति ॥ ० ॥ नियर्तानि । नियम्यन्ते, ॥  
कार्यानि उत्तेजेति नियतिरात्मृतम् “ नियनिर्विधिः इत्यपाः, १८५ ॥  
‘तदेव’ प्रवृद्धकर्त्तिर्विद्विद्विद अत्यधः, प्रवृद्धः, नियतम् ॥  
स्त्रहेऽप्रदेशःभृत्यगम, वशिष्ठेषो पौक्तिकम्योन्यसेः नियतम् ॥



(७६)      ❁ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❁

पूर्वमवधारितम् विशेषतो निर्णीतम् संगयात्परं विशेषदर्शनाज्ञायमानस्य  
ज्ञानस्थावधारणत्वात् पश्चादाश्रितम्, अनेकाभि रूपनिषद्ग्रिरेवाद्वाना-  
भिः उद्गीयमानः, नतु कथञ्चिदुच्यमानः, आनन्दोयस्य तथोक्तम्, परि-  
णामालंकारः उपनिषदिअङ्गनातातादात्म्यारोपमान्तरेण तत्कर्तुकस्योदान-  
स्यासम्भवात् ‘मन्दिरम्, आयतनं हरिस्वरूपं येनसः। ध्यानप्रदीपं सं-  
क्रान्तेः पूर्वमनाद्यविद्यातिमिरावृततया साक्षात्कारासम्भवेन तादृशपन्दि-  
माश्रयितुमशक्य मित्याशयः। प्रसिद्ध प्रदीपापेक्षया ध्योनप्रदीपे व्यतिरेक  
प्रतिपादनेन तदभिधानोऽङ्गारः। सहिनशलभमुच्छिनति, नवा ‘दशावि-  
शेषं वर्तिकाविशेषम् नापेक्षते’ नवाश्रीकान्तं संक्राम्यति, “नतत्रसूर्योभा-  
तिनचन्द्रतारकं नेमाविद्युतोभान्तिकुतोऽयमग्निः” इतिश्रुतेः तथाच भक्ते-  
रतिशयोध्वन्यते इतिकाव्यमेतदुत्तमिति ॥ ० ॥ प्रज्ञयाऽगणितः किमुतं  
कृतस्पर्धः, गीर्वाणगणस्य गुरुः नतु साधारणः ‘गीरथः, वृहस्पतिर्येन त-  
थोक्तः “गीरथस्तुवृहस्पतौ” इतिलघुरत्नकोपाभिधानम्। लोकोत्तरण-  
ष्ठित्यं ध्वन्यते ॥ अनुश्रितः भगीरथ दशरथयोः पथोयेन कुलोद्धारयित्वं  
सत्यपतिष्ठत्वं च व्यज्यते । ‘अशिथिलाभ्याम्, गाढाभ्याम्, सौन्दर्यदम-  
याभ्यां रामणीयकोपशमाभ्याम्, परिमथितः ‘मन्मथः, कामोयेनसः।  
शमादित्वादथच् प्रत्ययेदपथ इति सिध्यति कामाधिकसौन्दर्यं तद्विजेतृ-  
त्वं च व्यज्यते ॥ कृत्स्नपृथिव्याम् प्रथिता ‘अवितथा, सत्या पृथुका पुष्टा,  
नतुतन्वी, स्थास्तुः, नतुक्षणभङ्गुरासत्कथा, सञ्चरित्रं यस्यसः। महामहिमतं  
प्रतोयत इति ॥

सार्वभौमद्व य सदाचारेक्षणः। प्रमदवनमिव विमत्सरः।  
जामदग्न्यद्व य परशुभाकलनवर्धमानप्रमदः। कासारद्व



दिरनादानुलासी भयूरः । “केर्कामेघनादानुलास्यपि इत्यमरः । कृष्णं  
नेन सान्द्रेण, घनोपमे कृष्णेवा, अन्यच्चकृष्णेघनेश्यामे मेवे प्रणयेन ॥  
राधीनं हृदयं यस्येति । नयोमतम्, साहित्येऽलङ्कारशास्त्रे भक्तिरुग्मां  
यस्य परत्रसाहित्ये समुदायत्वेभक्तिलक्षणायत्रमः । एकस्योदेश्यतावच्छे-  
दकस्यलाभाय इतरेतरयोगदून्दस्यसाहित्येलक्षणामाश्रयन्ति मीमांसकाः ।  
धृतेति । धृतंराष्ट्रं राज्ययेन तेनविदितोऽर्जुना धवला गुणस्य कीर्तिर्थस्य  
अन्यत्र धृतराष्ट्रेण पाण्डोरघ्रजेन विदिता अर्जुनगुणयोः पार्थीमयोः की-  
र्तिर्थत्रेति । “गुणः सूदे वृक्षोदरे” इतिविश्वः । सरहत्यादि । तड़ागादिया-  
गइव समजिता पुजिता ‘सौम्यस्य, सोमात्मजस्य बुधग्रहस्य अन्यत्र  
सौम्या रमणीया मूर्तिर्थस्य इति । उगतोबुद्धः “सुगतोबुद्धः” इत्य  
मः, तस्य हृदयं रथस्यम् तस्य, अन्यत्र शोभनेन गतेन गमनेन हृदयस्य  
मनसः हारी वौद्धमत निराकर्तेत्तमावः । ‘आम्नायो, वेदः सदा वर्वशा-  
लोकानां हितेकल्याणे, पञ्चमतोव्रह्मगः आलोकः दर्शनम्, तदेवहितका-  
कत्वात् हितंतत्र, परायणः । सर्वेषां वेदानां साक्षात्पःस्यरयावात्रहृष्येवता-  
त्पर्यम् । मन्त्रः मनुः प्रयोगो नुष्ठानं अन्यत्र मन्त्रो विचारः । कृष्णः  
निपुणः । यद्वा प्रकृते प्रकृष्टोयोगस्समाधिः प्रयोग इति

विधुरिविबुधप्रवाद जनकोऽनन्त पदांवलम्बनश्च कि-  
न्तु सकललोक कमनीयोदयो मित्रपतनेन मोदमा-  
नोऽसासुप्रीतान्वयश्च । अम्भानिधिरिवपरितोपित सु-  
मनोव्रजः रत्नप्रवन्ध प्रसूतिश्च, किन्तु द्विजरोपागो-  
चरोऽजडात्माच ॥ विलसत्कीर्तिलतोप्य विलसत्कीर्ति



समस्तमेदिनीपतिमस्तकानांसरप्रसूनानां मात्यकुषुमानां परागराणे  
अहुणतमीकृतंचरणसरसिजंयस्य, पूर्वरूपालङ्कारः तथाभूतोऽपि राज्ञसे  
नाभिः विधूतः तिरस्कृत इतिविरोधः । राजसेन रजोगुणसम्बन्धिनानि  
कारेण अविधूतः अकम्तिपइतिपरीहारः । विरोधाभासालङ्कारः इतेषोपर्वा  
वक्तयातेनसङ्कीर्णद्वितीयश्वसरसं कीर्णः पूर्वरूपेणार्पाति ॥

प्रोज्ज्वलदनेकाग्निदीपितोऽपि शीतलतरः । कुला  
चार निरतोपिकौलाचारविरतः । अगोत्रभिदपिवृद्धश्रे  
वाः । संयातगौरवोऽपि द्विजराजाद्वेषणः । विश्रुतोऽपि  
सवहुश्रुतः । समग्रवैष्णवाग्रणीरपि गृहीतसमांसमीनः ।

प्रोज्ज्वलदिति । प्रोज्ज्वलद्विरनेकैरग्निभिर्दीपितोऽपि शीतलतर इ  
परमार्थस्तु ‘अग्निभिः, दक्षिणाग्निगार्हपत्याग्न्याहवनीयाग्निभि  
दीपितः, तेषु हवनेन ब्रेयसा प्रकाशमान इति ॥ कुलेति विरोधः सुख  
परमार्थस्तु कुक्काचारे वंशाचारे व्रह्माचारेवा, निरतोऽपि कौलाचारादा  
जातिभिन्नेविहितात् वामाचारात् विरतः “नकुलंकुलमित्याहुः कुक्काचा  
सनातनम्” इत्यभिधानात् कौलाचारो यथातन्त्रे “वामे वामा रमा”  
कुशलादक्षिणे पद्यपात्रम्, अग्रेन्यस्तं मरिचसहितं शूकरस्योषणमांसा  
स्फन्देवीणा लक्षितसुभगा सद्गुरुणां प्रपञ्चः कौलोधर्मः परमगद्दनो ये  
गिनापर्यगम्य,, इति । न च “सौत्रामण्यां कुलाचारो व्राज्ञणः प्रपिवेत्पूर्वा  
पूर्व” इति समयाचार तन्त्रे, “विनाहेतुकमास्वादं क्षोभयुक्तोमहेश्वर । न एव  
जांमानसीं कुर्यात्त्रिध्यानं न च चिन्तनम् । तस्माद्भुक्त्वा च पीत्वा ।  
पूजयेत्परमेश्वरीगृ” इति भावचूडामणितन्त्रे, “नासयेनविनामन्त्रै



इति शब्दशक्तिप्रकाशिका ॥ विगतं श्रुतं यस्यतादशोऽपि बहुभिःश्रूतैः समहितइतिविरोधः । विश्रुतः ख्यातइति परीदारः । ‘वित्तविद्वानविश्रुतः’ इत्यपरः । गृहीतः आस्वादितः भक्षितइति यावत् समांसमीनः मांसेनसंमीनो मांसं मीनश्चेति यावत् येन स इति विरोधः । गृहीता आत्ता समांसमीना प्रतिवत्सरं प्रसविनी गौर्येनेति परिदारः । ‘समांसमीना सा गौर्ये प्रतिवर्षे प्रसूयते’ इत्यपरः ॥

लोचनगोचरोनक्षिगतः । छन्दोऽनवस्थितः व्याप्त जगतीकः । आदिविद्वानिवानुशासिता शास्त्राणाम् । वादरोयणइव उपदेष्टासत्पथानाम् । मूर्तिमानभिमान इव मानवानाम् । अवचनः परापवादप्रतिपादनेषु । अनयनोऽन्यकामिनीस्तनवदनदर्शनेषु । श्रोणोऽन्यदीयद्रविणमोषणेषु । काश्मीरक्षेत्रं क्षमाकुड्कुमप्रभवस्य । क्षीरनिधिः कारुण्यामृतस्य । निकषोपलोलवधवर्णरत्स्य । प्रियपस्त्यंसत्यस्य । सौहित्यं साहित्यस्य ।

लोचनेति । अनक्षिगतः लोचनगोचरइति विरोधः । अद्वेष्य इति परिदारः । अयं च विरोधाभासाकङ्कारध्वनिः तद्वाचकपदाभावात् । “द्रेष्ये त्वक्षिगतः” इत्यपरः छन्दस्मु आर्यादिषु अनवस्थितः अवर्तमानः व्याप्त जगती तदभिधानं छन्दोयेनेतिविरोधः । छन्दसा स्वैरवृत्याऽनवस्थितः किन्तु शास्त्रात्मयाऽवस्थितः । जगती संसारः कीर्त्याच्यासोनेतिसप्तपापानम् । छन्दोऽधिष्ठृत्यस्वैराघाराभिलापयोरिति विश्वाभिधानात् । “जगती सुवनेष्मायां छन्दोयेदेजनेऽपि च” इतिमेदिनी ॥ आदीति

## ❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀ (८३)

आदौ सगदौ विद्वान् कपिलोपदामुनिः । यथा प्रङ्ग्यात्परं जगदुद्धिष्ठीर्ष्या  
 विलुप्तानि प्राचीनशास्त्राणि कपिलोऽतुशासिता तथाऽसावपि । तदुक्तं “तत्त्व  
 कोमुद्यां सगदावादिविद्वानतुभवत् कपिलोपदामुनिः पादुर्बभूयेतिस्मरन्ती-  
 ति” ऐतेन परमकारुणिकतावस्त्वलङ्घारेणव्यज्यते । वादरायणोव्यासः ।  
 पूर्णोपपालङ्घारः । मानवानाम् मनुष्याणाम् । उत्पेक्षालङ्घारः सदेहाभिमा-  
 नत्येन सम्भावनात् । अमुनैवसाभिमानतानगणामित्याशयः ॥ गवचनः  
 मुकः । थ्रोणः पद्मगुः । ”श्रोणः पद्मो” इत्यमरः । अन्यदीयस्पदविणस्य  
 धनस्य, पोषणेषुचौर्येषु । उल्लेखालङ्घारः एकस्यैशानेकपोल्लेखात् “एकरण  
 वद्युधोल्लेखादेकस्योल्लेखइष्यते । गुरुर्वैचस्पर्जुनोऽयं कीर्तौ भीष्मशशरासने”  
 इति कुबल्यानन्दकारिकोक्तेः । समैषकुलः कुम्भंतत्परवरय तदुत्पत्तेः । रा-  
 शपीरसेत्रम् काशपीरदेशीयकेदारम् । परम्परितख्लपकामलङ्घारः । तेनसमैक  
 निकेतनत्वं व्यङ्ग्यम् काशपीरदन्यत्र तदत्पादात् । काश्येति काश्यं  
 करुणातदेवामृतं तस्येत्यर्थः । व्यङ्ग्यन्तुपूर्वद्वोध्यम् । निकोपकः परीक्षा  
 प्रस्तरः । लव्यवर्णो विद्वान् तदेवरत्नं तस्य, रत्नं लव्यवर्णमपि सापुत्रामा-  
 नायनिरुपोपलेपरीक्ष्यतेजनैरिति । पण्डितराजत्वं व्यङ्ग्यम् । परत्यस् गृ-  
 म् । तदपिनसामान्यं पण्डितु मियम् । “निशान्तपस्त्यसदनम्” इत्यमरः ।  
 सोहित्यं दृसिः तत्कारकात्पाशयः । हेत्षलङ्घारः देतुभूतस्य गोविन्दस्य  
 देतुमपासांसोहित्येन सामानाधिकारण्यवर्णनात् । “हेतोत्तुमतासार्थं दर्शनं देतु  
 रक्षयते” इत्युक्तेः ॥

उल्लारकारकः रघुविरघ्न्यानाम् । वालसुहृष्टवद् तन्त्रा-  
 णाम् । सोमान्तगन्ताकलाप्रामाणाम् । आकरो विदेश  
 रमणीयमणीनाम् । सुरघस्मितचन्द्रिकात्पददातीर्ण-

कुन्दकुसुममालायमानरदनच्छवि । विच्छुरितवदं  
विनिर्यन्मधुरिमधुरीणाग्राम्यमसृणाव्यलीकवचनाधरीभूते  
घितसुधाभिमानो गोविन्दोनाम मिथिलायाम् ।

स्थविरः, प्राचीनः शब्दतन्त्रम् व्याकरणम् । वहुवचनेनानेकव्या-  
करणाभिज्ञत्वं गम्यते । शैशवएवव्याकरणानां परिशीलनाद्वालसुहङ्कारः ।  
कलाग्रामः कलासपूर्हः । “ग्रामः स्वरेसंवसथे वृन्दे शब्दादिपूर्वकः” इति  
विश्वः । सीमन्तगन्ता अन्तपर्यन्तस्थाभिज्ञाता । अन्योपि ग्रामसीमान्तं  
गच्छतीति । आकरः खनिः विवेकएवरमणीयोपणिस्तेषाम् । उक्तरूपक  
मञ्ज्ञारः । मुग्धंस्मितरूपयाचन्द्रिकयो ऽत्यददातीकृतस्य कुन्दकुसुममा-  
लासद्वशस्य रदनस्य इन्नस्यच्छविभिः विच्छुरितात् व्यापात् वदनात्  
विनिर्यज्जिर्निर्ज्ञच्छज्जिर्निर्ज्ञः मधुरिमधुरीणैः मधुरपदार्थग्रिसरैः अग्राम्यै मसृणैः  
कोमलैः अव्यलीके समत्यैः वचनेरधरीभूतैः एघितः प्रवृद्धः सुधापा-  
अष्टुतस्य अभिमानोयेन स तथोक्तः । स्मितचन्द्रिकेत्यत्ररूपकम् अत्यव-  
दातीकृतेत्यत्रपूर्वस्फुरम् । मालायमानेत्यत्रोपमा अधरीभूतेत्यत्र व्यतिरेको  
ऽवज्ञारः । पूर्वरूपाधिकरूपप्राप्तौ पूर्वरूपम् अप्यद्यदीक्षितेनप्रतिपादितम्  
तन्निर्दर्शनं यथा ‘तीलोत्पलानिदधतेकटसैरतिनीलताम्’ इति ॥  
इति गम्भर्नमेन्ट संस्कृतपाठशालाध्यापक मैथिल श्रोत्रिय श्री  
वालकृष्ण मिथ्र विगचितासूक्ष्मार्थ विवेचिका टीका समाप्ता ।

### ( हृदयवश्यं विलोकनीयम् )

मायृषार्द्दिव्यतार्थस्यायप्य दशानिदध्यक्षम् व्यापातं प्राप्तमप्यतपेक्षिमानात्  
दत्तदृश्यत्वायै दन्तपाते शङ्खधमानया सम्पर्यान धीभीमया ददृशीष्ठिरेत्वा महापाता ॥१३  
तदैव दृश्यत्वायै शुभ्रं गूर्जं विरुद्धिर्दीक्षा सदा समाप्तिः । ब्र. ४१ विष्णेषु गौरी  
दृश्यत्वायै दृश्यत्वायै विरुद्धिर्दीक्षा ददृशीष्ठिरेत्वा विश्वापीवातपाता विश्व-  
प्रत्यक्ष गौरी दृश्यत्वायै गौरी दृश्यत्वायै विश्वापीवातपाता विश्व-त्वायै विश्व-त्वायै ।

याचैतदेव सकलेऽवनितले थ्रेयः पद मिनि द्योतनाय-  
विहितयाइयामसीमयेव विप्रतिपत्तिव्युद्यनयपर्यया दृढ-  
दनं चतुष्टयेन परिवेष्टिता । हस्तिं काननानिधावतोऽव  
धामधूमस्यकंतवेन परिहृतेव विश्वता दग्धिना । मलयशि  
लोचया वयवेणिव ४ङ्कुमङ्गलान्ताश्रितः; ऐन्द्रमार्गोऽनुवै रिवर्तप  
स्यावधि मधिगर्तः; निदावसपथेरियावश्यायज्ञाद्यगतिः;  
पार्थिव प्रगथनाथ पुजनेरिव ग्रथगार्जिनद्युत्पृथ्यो दर्शन  
प्रवन्धेभिव विचक्षणदृतलक्षणं प्रतीप्यः; गदयत्वाः ८८३  
यैः; सर्दाश्रवै रंभुजिनैर्जन्मगव्याणी । गिरिजावरांत्तिर्मास  
छिना, श्रोपित पतिकेष्व नैपःक्षेत्रानिदृशाश्वालगो त्वया  
विप्रयुक्तं, सुरपुरीय नामेत्यानिना, व्रिषभाङ्गस्त्रियां  
संमितिनैपुण्या वलमिताभण्युपौज्यजनिपेदिता, विष्व  
रथलेष दुर्मनो नर्खुंजावह श्रियेकांपर्यगतिंदिता ॥ ३  
विलासिनीरेलिनसरभाष्य विरिपतांपीपतीत्वा, उपनि  
पित्तगौरुचतुर्मिति विशेषेरिव वृपद्वेषमरप्रदूषनं लापाति ।  
भितेः, श्रोदयप्रदक्षोजैरिष विसाधितमार्गः अत्र निर्भास  
व मनीषेष्वगोऽनुरचिन्तत एवंशगणः प्रारम्भते ति ॥  
स्यामवना गमनोर्त्तेः ।

रथ, ७ जाडामग्ना गिरिरथा च । ८ पदाश्रीः पदांवनेत्ति  
सत्पतिज्ञेश । ९ लग्नजननैनिःपापि ग्रुदिनेश । १० राजमिशः क्षिति  
राजा मिहानांगजान । ११ तपः तपस्या गिरिरथ, १२ उवर्णि  
पूजितः, ऋत्येत्यायुपनागन । १३ निपृक्ता विमेणयुक्ता नियोगितान्  
१४ नासत्यान्विता न अमत्यान्विता, नामत्याभ्यामाधिनेयाभ्यामन्ति  
च । १५ सपितिमध्यायुद्भव, १६ प्रणगजनः पुण्यान्पा रामव  
१७ सुमना मालती शोभनपनाश, १८ घनधुजीवकः वन्धुरसकः वन्धु  
१९ प्रियकः प्रियः कदम्बवृच, २० अपराजितः नपराजितः, अपा  
जितातद्भिधानं प्रसूनं च । २१ सीर्थः पुण्यस्थानं घट्टश्च । २२ घन  
घुचः स्थलक्कमलं तत्तनामधेयोवृक्षविशेषः अतिसुरभितः अतिपनोऽः  
वहुधवकाकुचस्यकमळाशोभायत्रमः, अतिसुरभितः अतिशुगन्वान्वि  
तश्च । २३ विभासीतमालस्तद्भिधानस्तर्येत्र, विशिष्ट्याभपादीत्य  
सितामाळायत्रेतिच । २४ वयो विहगः अवस्थाच, २५ पद्मवः किसङ्गे  
विटञ्च । २५ घनयासान्द्रया इयोपया उतया घनस्य मेघस्य श्यामलतया  
श्यामलया च ।

वृत्तनिवन्धैरिव हीरङ्गैषटित कुण्डलिकामणि मौक्किक  
मालेन्दु वदनावभासित सुन्दरीगीयमान हरिगीतमन्दी  
क्रोन्तैः, वैरोचनिभवनैरिव अनेकाशोक्कपलाशकाँचनमा  
लाशोचिरच्छिन्तैः, मन्दंकदाचिदमन्दमान्दोलितातिहृद्यहि  
न्दोल क्रीड़ासंविधानवेल्लितैः वहुमानचित्रित चीर्तनिचोल  
रुचिच्छिताभिः, वसनवदनकान्त्या शातक्रतवकार्मुकसौ  
दामनीप्रभाविभ्रम मावहन्तीभिः पुरुषायित सुरतकेलिम-

भ्यस्यन्तीभिरिव दोलाङ्गतृहलकला कुशलतावलोकन सं-  
जात प्रपादवनदेवता वितीर्णमौक्तिक फलवर्पणेरिव निम्नो  
ब्रयनश्रमस्वेदोन्मिपत्स्वेद कणिकाकलापैव्यर्पृत प्रतिप्रती  
काभिः दृशानवयौवनेनत्रिजगर्तीं तृणायमन्यमानाभिर्वि-  
लासिनीभिरुपशोभितैः, अविरतविर्सारविवर्तनोच्छलन्धी  
कगनिकरसचिगाभिः, चक्रवर्तिस्थितिभिरिव छुवलैयासीन  
पक्षिभिः वेश्वीथीभिरिवेतस्ततो आग्रमाणमधुपावलीभिः  
सरसीभिर्विभासितैः, अनारतमधुलुव्यगन्धवाद एतानन्  
प्रसूनैरुपवनैः प्रियदर्शना । यत्रसदहाअपि श्रयन्ति विद्  
द्वताम्, कलहंसाअपि नाकलयन्ति कंलेंसताम्, कुशामेन  
समासीनाअपि नपश्यन्तिकुशासनम्, मंधुर्खीणाधिपैषनि  
क्षिताअपि साक्षात्कर्त्तिविमपिरूपम्.

२६ दीर्घं वज्रं एन्दश्च एवाग्रेऽपि । २७ मन्दामान्ता ८३६  
मन्दामाकान्तं गमनं पद्मतित्र । २८ वैरोद्धान्वेलित्वितः ।  
२९ भस्तोदोदसः शोकरतिष्ठ पदाशं पदं पदारोदाममशवकः ।  
३० काञ्चनं काञ्चनारपाद्यः एवर्णेऽन् । ३१ माका शुद्धाराषः ८३७ ।  
३२ देहात् रिष्टम्, ३३ दृपानम् दुमूल्यकम् । ३४ वैत्ति । ३५  
धीनदेशोभवं एसनम् हप्त दुर्घां भद्रति । ३६ विशारी यानः । ३७ इति  
मृप्तम् अदनिमप्तद्यु, ३८ दृपाद्य, ३९ पर्णी दिग्गो भिर्वा, ४० दृ-  
शीर्णी देवाशुद्धामर्द्द्वर्तीरप्या, ४१ दुर्दोरामीमटपीद्याद्य । ४२  
दिग्गो यासेनदर्पदति एकादाद । ४३ दितेऽत् १०८३३८ । ४४  
दुर्जिष्ठ आकड़पत्रिं माप्तद्विष्ट । ४५ दृप्तेऽत् ५३३५६ । ४६ दृप्तेऽत् ५३३५७

सस्यभावः सतांकलहक्ष । ४१ कुशासनम् कौपूथिष्ठां शासनं कुशस्यासनं  
कृत्स्तं शासनहक्ष । ४२ मंक्षु सपदि, ४३ अक्षिनेत्रम् अक्षीकिं;  
४४ किमपि रूपंकोपि गुणविशेषः भागवतं स्थूलपंच ।

सुरभिसमयेष्याषाढ विलसितम्, अधरतोऽपि दि-  
जानामसृतावापनम् याज्चरत्न सानुमिवनजहातिजा-  
त्वपिसुवर्णता, यदवर्णं स्पृष्टवती सुरापगापिपावयति  
प्राणिसामन्यानि, यदीय विश्वम्भरातोऽवतताराघी-  
क्तिरूपा विदेहनन्दिनी, यत्राश्रितकुवेरोदवसितवशी-  
कृतचारुतोर्वशी प्रभृतिविलासिनी त्रपाकारि सौन्दर्य-  
शालिनीनां नीलनलिननिभाः कालिन्दीकल्लोल कुटि-  
लकटाक्ष च्छटाः सुतनुश्रितकामिनीनां व्यपनयन्ति तनु वा  
णतांपञ्चवाणस्य, विमुखसुरधाङ्गनापाङ्ग भङ्गयइवकृतयः  
क्षवीनां प्रसह्यहृदयं प्रविशान्तियमिनोऽपि, यत्रच व्यसनं  
शास्त्रेषु नदुरोदरादिकीडासु, हृदयग्रहण ममिषोमीयपश्च-  
नां, नपराङ्गनानाम्, वादिप्रतिवादिभावो विचारेषु नव्यव-  
हारेषु, कर्कशता प्रत्यग्रवधूवक्षोजेषुनान्तः करणेषु, मार्गण-  
ताकार्मुकेषु, अधीरतापिपलदलेषु, विपदाकलन मुपवनेषु  
अपचीयमानता युवतिमध्यभागेषु नलोकेषु, अश्रुप्रवृत्तिर्भग-  
वहृणाकर्णनेन, नशोकेन, श्रुतीनामाक्रमणं सुन्दरीलोचनेः;  
नपापण्डदुर्वादीः, सारसतासरसीरुद्धेषु नजनतासु, स्नेहवि-  
च्छेदो वैभातिकदीपभाजनेषु नदम्पतिमानसेषु, तर्कशाश्व-  
जातिसङ्घरः, सुरतेषु अधरप्रीतिः, प्रावृपि गोत्रस्वलनम् ।

सुरभिर्वसन्तोयोषिष्ठ, समयः कालआचारश्च, आषाढोपासोव्रतिनां दण्डश्च । अधरतः नीचात् अधरौषुतश्च । द्विजानां विमाणां रदानांच । अमृतं मुक्तिः सुधाच, सुरापं गच्छति या सा सुरापगा मध्यपगामिनी सुराणामापगानदीगङ्गाच । सुवर्णताकनकत्वं शोभनचातुर्वर्णतासुखपताच । उद्वस्तिवंगृह्य, ततुः, स्तोकः । मैथिलीपूर्वशीप्रभृत्यपेक्षयासौन्दर्येणसुततुपतित्वे नच व्यतिरेकः, तासांकटाक्षामदनशररूपाभवन्तीतिप्रौढोक्तय रूपकध्वनिः । विमुग्धा विशेषेणसुन्दरी । दुरोदरं घूतम् । शाब्दपरिसंख्यालङ्कारः । ग्रहणमवदानाय । विचारोन्यायप्रयोगः । मार्गणतावाणत्वं याचकत्वं च । सन्तोषातिशयः समृद्धयतिशयोवाध्वनिरितितस्यसन्देहसङ्करः । अधीरता चाऽचल्यमप्राप्तत्वं च । विपत्प्रसिपद्म् आपचिश्च । आकर्णनेनेति तथाच भक्त्यतिशयोद्यग्न्यः । श्रुतीनां कर्णानां वेदानाऽच । सारसता सरसीशृत्वम् यलसजनकत्वं च । रलयोरमेदात् । स्नेहःतैलं प्रेमाच । जाति सङ्करः परस्परात्यन्ताभावसमानाधिकरणयोरेकत्रसमावेशोजातित्ववाधकेष्वन्यतमः, विजातीपवर्णजातत्वं च । एवज्ञनलोकेषु इतिर्थतः प्रतीयतेष्वतः आर्थपरिसङ्ख्यालङ्कारः । अधरोऽधरीष्ठोनीचश्च । नान्यदेतिआर्थः एव प्रेरेत्पि । प्रावृपि वर्षात्तमये गोव्रस्खलनम् हृदयस्थितयोरन्यनायक्योर्नाम स्खलनम् मार्गेस्खलनं च ।

वालिशतायामसङ्गावः, अपवर्गयोर्लोभः, प्रतिपादनेऽसन्तोषः, वृषविदूषके द्वेषः । यस्यांचक्षवच्चिदामायक्रियाकलापेषु(१), क्षचिदीशाननवातुमानेषु(२),

कवित् पीछाकप्रक्रियामु(१), कवचित् श्रुतेरपोद्येय  
तायाम्(२), कवचिद्विष्टुष्टिवादे(३), कवचित् मत्तर्य  
संस्थापने(४), कवचिन्निर्विकल्पममाधौ[५], कवचिद्  
सध्वन्यलङ्घारकवनेषु(६), कवचिन्नागेशोक्ति प्रदी-  
पोद्योतेषु(७), कवचित् ग्रहगणगणितेषु (८) कविः  
त्कुण्डमण्डली निर्मणेषु, (९) कवचिपञ्ची प्रवन्धेषु  
[१०] विचारोजनानाम् ।

कविद्वु द्रीय विषानमनुसेव्य केचित् भूतिसूषित  
भालाद्यवयवाच्छतगक्षुद्रुद्राक्षच्छायाविच्छुरितविग्रह  
शिशवलिङ्गंस्नपयन्ति परमपूतघनसारघनचन्दन  
शिशिर सलिलैः, कविन्मार्तण्डमण्डलव्यस्तलोचना  
मनागप्यस्पन्दमानापघना अनाकलितरदना ध्यानं  
दधाना एकचरणाङ्गुष्ठस्पृष्टकुशासनाश्चित्रापिता इव  
केचित् प्रजपन्तिगायत्री निखिलागमैकावलम्बनीम्,  
कवचित् वहुमान्यमन्येन्यासं विन्यस्यन्ति, । कवचिद्व-  
क्षपरायण पुराणानि केचिद्वाचयन्ति, कवचित्स्वाहा-  
कारैः कवचित्स्वधाकारैः कवचिच्च वषट्कारैः केचिद्व-  
गनवलयं वाचालयन्ति, किं वहुना, येन च कामपि

१ काणाददर्शनस्य । २ मीमांसायाः । ३ वेदान्तस्य । ४ सास्त्रस्य । ५ योगस्य ।  
६ साहित्यस्य । ७ व्याकरणस्य । ८ ज्यौतिषस्य । ९ तंत्रस्य । १० पनीशास्त्रस्य ।  
एतेनसक्षमशास्त्राभिन्नजनवत्त्वं व्यज्यते ।

सुपमां सुखं विलोकमानास्तत्र जनाः स्पृहयन्ति नाम-  
र पुरायाऽपि ॥

चालिशता अक्षता । असम्भावः असाधुता अनस्तित्वं च । न तु जने-  
पुमः । अपवर्गयोः परापरमुद्दत्योः, न तु धनेसः । पतियादने दाने शा-  
नेच, न तु तत्र । इष्टविद्युपके धर्मविरोधिनि, न तु साधौ 'आन्नायोवेदः,  
ईशानः शिवः । न वानुमानेषु न दसं रूपाकेषु नूतनेषु चतेषु पीलुः परमाणुः,  
दृष्टौ मत्पांसृष्टिः दृष्टि सृष्टिस्तस्यावादः एतदेव परमरहस्यं वेदान्तस्य, सत्  
नित्यम्, निर्विकल्पः असम्प्रज्ञातः, नागेशः शेषः, धनसारः कर्पूरम्, अ-  
पवनोऽवयवः, न्यासम् मातृकादिकमागमोक्तम्, सुपमापरमाशोभा । इति  
मिथिता वर्णनम् ॥

योऽनुवासरमवसरेहरेः पूजनस्याधिमहारञ्जनभोजन  
कलङ्कविकल कलकलाधर विमल सकलहरिद्विसृत्व-  
रपरिमिलमेद्वर हरिचन्दनद्रवं परेण पात्रेणापिधायाध्या-  
त्महरध्यातवेदन्रातविन्दु वृन्दारकवृन्दवृन्दारक पुर-  
न्दरोपहृत मन्दमन्द स्यन्दि सुन्दर मकरन्द विन्दुम-  
निदरोपगुञ्ज दिन्दि न्दिर पुञ्जमञ्जुमन्दारमन्दा-  
ति रोहित वृन्दारिकादिवन्दारुत्रिजगदिन्दिरावन्दित  
शारदारविन्द श्रीमन्मुकुंदचरणद्वन्द्वलाञ्छनं निःपक्षम-  
स्पन्दं स्वच्छन्द मौपम्यक्षेत्रीकृत शरदाशतच्छदेना-  
क्षियुगमेन क्षिप्रतरपत्रेऽतिक्षितिक्षणं तत्र संवीक्ष्य क्ष-  
पितानूनकाक्षेपक्षेण तपः क्षामक्षोमतामुपेयुषा यो-

गिर्छत्रलक्षणप्रतनुविटपिनेव जटापटलान्वितेन पा-  
टीरद्गुमेणेव नागनिर्मोकधवलीकृतकलेवरेण निवातः  
प्रदीपेनेवनिश्चलेन, विधिनेवपद्मासनस्थायिना,  
हरेणेव निगृहीत विषयिणोऽपि दुरासदं परमतमानं  
न्दसन्दोहकन्दलं विन्दन् चिरमर्वनमचर्चिकांचकार।  
यस्याभ्याशमासाद्यापश्यन्तशशरणान्तरंवनदहनतुलि-  
ततापत्रितयात्यन्तिकोपशमननिदानोत्कलिकाकला-  
पाकुल विकलमानसाः कलिकलांकलयतो विततानु  
भावां प्रहीणवैष्णवमनुप्रादेशनस्यानुकोशेन सरहस्या  
मधिगम्यागमीयदीक्षामञ्जसा समानयन्नात्मनःस्मृ-  
हणीयसिद्धिसमृद्धिं शालितां वादविजितसभाजनस-  
भावजनता हितसभाजन सभाजन मिथिलाभिजनाः  
पुरातनाः। सविधवर्तिनिच यदीयवदने प्रादवत् चन्द्र-  
कान्तदृपदोऽपि। यज्ञं स्वकीयरामणीयकं प्रवणी-  
भूतां नाकामयन्निकामं स्पृहयन्तीमपि परकामिनीम्।

महारजनं सुवर्णम्, मेदुरः सान्द्रः। विन्दुः द्वाता,। वृन्दारकोदे  
सुख्यथ । इन्द्रिन्दिरः अपरः, मन्दारः पारिजातः, मरन्दः पुष्परमः,  
रदा शरत्सपयः। अतिक्षिति, क्षितिपति क्रान्तम्। क्षण उत्सकः, छत्रंथ्रेष्ठ  
प्रतहुः विपुदः। जटा, वरकचः। शिफाच, पद्मासन मासनविशेषः पद्मात-  
वपासनश्च, विषयि इन्द्रियम्। विषयीकामश्च । कन्दलं मूलम्, अर्चनप-  
रिका प्रश्नपूजनम् । मनुः मन्त्रः। प्रादेशनं दानम्, अनुकोशीदया,

❀ श्रीलक्ष्मीश्री चरितम् ❀ (९३)

असा शीघ्रम्, सभाजनः सभायास्सदसोजनः सभाजनंसपर्या, भाजनं पात्रम्, सभाजनने सह भायाः दीसे जननेन, अभिजनोदेशः, बदन इति प्रौढोत्त्या रूपकालद्वारध्वनिः ।

अथासौकदाचिदतिविस्तारविकरालदुःपार संसार कान्तारस्फुरत्स्फारसार सपरिवार मारप्रवेकनैकप्रकार-  
साभिहारमञ्चार श्वापदवारकवलितारालजद्घाल नि-  
ख्यास प्रासविषय महाशीविषग्रासजासोढप्रौढतर कालकूटज्ञालाजालजटाल जीवजातपरीतापकलापा-  
त्यनितकनिवर्तनैकसाधनदर्शनम्, नैदाघदिवसाव-  
सानजायमानपावमानापदिशलसद्धनघटामेच क-  
च्छां वैभवाश्रितौपि मूर्तिमादधानम्, कल्पे सरोष  
मिव निस्तललोचनम्, करचरणयोरथनासादनेनत्या-  
गयोग्यतासुपदिशान्तमिवकैवल्यपरिपन्थभूतादानक-  
मर्शेषविषयेषु, चक्रेणापिदण्डाकृतिमुपेयुषा सुदर्शनेन  
प्रोद्धासितम्, कृतात्मानमिवसुभद्रान्वितम्, अन्तःस्थि-  
तजग्निवासतयाऽवधीरितिगिरिगणाग्रगणनीयगौरवे,  
नवकामिनीमानइव प्रोन्नतमेघनादपरिगोपिते, महा  
गहनइव मातङ्गचुम्भःगकेशमिसुगक्षिते, कनकाचलइव  
वैकुण्ठाधिष्ठितोत्तरप्रदेशे, अनङ्गेनापिभीमेन, प्रत्या-  
ख्यात सुगतेनापि सुगतशालिना, निर्मापिते, करु

१ “ जगदापारतया „ दर्ता पा पाठः ।

क्षचनकमलाङ्गिचते काञ्जचनेनकमलयालङ्घ्याकमलेनचाङ्गिचते । वाणिं जा, उषा, मदनमोहनोदेवः पित्तलविग्रहः, मदनस्य अनिरुद्धस्य मोहनं च ब्रलेखावचनप्रपञ्चश्च, प्रमदा जगन्नाथदासी युवतिश्च, तस्याःशतीः निः वितम् । प्रावृष्टेण्यम् प्रावृष्टिवर्षास्मयेभवम्, नीलाचलावस्थितम् नीलचलः नीलपर्वतनामधेयोगिरिःअन्यत्रनीलाचला इयामावनी, तत्रावस्थि म् । विमलासन्नम् विमलादेव्याः । परत्र विमलस्य निःपापस्यासन “ विमलामैरवीतत्रजगन्नाथस्तुमैरवः ” इत्यागमाभिधानम् । सरस समुद्रः सरसश्च, अबदेशातिरिच्यमानम् अन्तिकमितियावत् । श्रुतिश विलसितम् श्रुतिशतं वेदशतं च, तेनतत्रवा विलसितम् । प्रघातं प्रभु मुख्यञ्च । दक्षिणाशादक्षिणाया द्रव्यरूपाया स्तृष्णा, दक्षिणा दिशः सङ्कुर्षणोवक्तदेवः । सनाथः नाथसहितः युक्तश्च, अनाथोनाथरहितोऽन एष्व । उदन्तोवृचम् । तिष्ठामीत्यादौसर्वत्रवर्तमानसामीप्येलद ॥

मसौनिर्तयितुंनैवप्राभवत् । अनन्तरं चादसीया  
मवसायातिभूमि मुत्कलिकां कथंकथमपितैरनुज्ञातं  
गमनोऽनुकूलचन्द्रतारकेन्द्राधिष्ठितोच्चस्थशुभग्रहसमु  
दयेचरलमावलमेशोभनवासरे प्रयाणाय विशेषेणभग  
वतःपर्यातितानसपर्या पर्यायेण, जजापचेष्टमनुम्, प  
पाठचभूयांमिस्तोत्राणि, ऊहावचदक्षिणाथ्रितशिखं  
संस्कृतेजातवेदसिहविश्वान्तिमन्त्रैः, विद्धौचान्या  
न्यपिकल्याणोदकर्णिकर्माणि, ततः प्रवर्धितोराशि  
मिगशिपां युरुभिरमिवादितैः, अभिनन्दितस्समाजे  
स्सामाजिकानाम्, साक्षुयारं समालिङ्गितोवयस्यैः



कभिदा वहुप्रकारा, अप्रतिपत्तिर्बड़ता, मुख्यता नवयौवनत्वं मोहतं  
विशेषणद्वयेन अञ्जुतसौन्दर्यातिशयोद्यज्जगः, शातजातम् सुखसंहितं  
स्मरणीयतासुपगतेषु व्यतीतेषु । पर्यायोक्तमकड़क्तिः ॥

तेषु वासरेषु नातिदूरेऽतिमेदुरपृथुलसालप्रभृति विद्यपि  
नां पटलैर्नभस्वतान्दोलितेन मूर्धन्ना निवारयद्विखिदवी  
य सामपि पथिकानामागतानि, सुपर्णतयोचितहरिवि  
लसितैः, लक्ष्यतया निपतितपतत्रिभिः, रविरथपथं  
प्रतिरोद्धुमभिलषदभिखि कौतूहलेन, वारणमदवारण  
प्रसवजाम्बवानोक्त्वा निवह दीर्घतामिमानं तिरस्कृ  
र्वणैः परिवृताम्, शिखरिविस्तारितशिखण्डशिखिग-  
णमयूखजनिताशेष सुषमाम्, राजसम्पदमिव प्रभृत  
कनकखर्जुरावर्जिताम्, सत्पुरुष क्रियामिव 'दर्शित  
वंशोन्नतिम्, प्रावृषमिव धनाधनघनगर्जिताम्, स-  
म्परायक्रियामिवस्वच्छन्द खड्गवर्गाम्, केशवकरा-  
कृतिमिव सारङ्गसङ्गताम्, भारतकथामिव भीम  
सत्त्वकृत पराक्रमां कीचकविलसितां सकौस्वाञ्च,  
राजरमणीमिव सहचरी शतसेवितां नवप्रवालरुचिरां  
प्रोद्धतमदनांच, मानवविवर्जितामपि पुनागनिषेवि-  
ताम्, अनलकामपिरम्भासम्भाविताम्, नेत्रविकला  
मपिसनेत्राम्, कुष्ठाश्रितामपि वेदनानभिज्ञाम्, वा-  
हिनीरहितामप्यनेकगुलिमनीम्, क्वचिद्वौकोभिर-



कमिता प्रदद्यता, भार्गवान्वतुरा, प्रदद्यता वर्षावीरां ॥  
विजेतास्तदेव वर्त्तन्वेत्तदांश्च वाह्या, वाह्यान् प्रवाहं  
स्थाप्तीरामामोऽपरीतः । वाह्यान् कम 'द्वजः' ॥

तेऽनामेत्तनानिदुर्जनिमेदग्रभुलयालपमूलिक्ष्य  
नां पटलेन्वभमतान्दोऽन्तेन भूनीनिवागद्विविद्यं  
यमामपि पथिकानामागतानि, सुगर्णतयानितदिग्वि-  
लसितेः, लक्ष्यतया निपतितपतत्रिभिः, रविग्राम्य  
प्रतिरोद्धमभिलयदभिग्वि क्रौतृहलेन, वाग्णमदवाण्य  
प्रमवजाम्बवानोकह निवह दीर्घताभिमानं तिस्क  
र्वणिः परिवृताम्, शिखरिविम्ताग्निशिखण्डशिखिण  
णमयूखजनिताशेष सुपमाम्, राजसमदमिव प्रभु  
कनकखर्जुरावर्जिताम्, सत्पुरुष क्रियामिव 'दर्शि  
वंशोन्नतिम्, प्रावृपमिव घनाघनघनगर्जिताम्, स  
म्परायक्रियामिवस्वच्छन्द खड्गवर्गम्, केशवकरा  
कृतिमिव सारङ्गसङ्गताम्, भारतकथामिव भी  
सत्त्वकृत पराक्रमां कीचकविलसितां सकौत्तम्ब  
राजरमणीमिव सहचरी शतसेवितां नवप्रवालस्त्रि  
प्रोद्धतमदनांच, मानवविवर्जितामपि पुंनागनिषेवि  
ताम्, अनलकामपिरम्भासम्भाविताम्, नेत्रविकल  
मपिसनेत्राम्, छष्टाश्रितामपि वेदनानभिज्ञाम्, वा  
हिनीरहितामध्यनेकयुलिमनीम्, क्वचिद्वौकोभिरि

वामृताशनैर्विहङ्गमैः कृतकलकलाम्, क्वचित्क्व-  
लाहकै रिव वनगैतै स्समदश्वापदकुलै विद्वित निशा  
नसंकुलाम्, क्वचित् विस्मितामिवशब्दरहिताम्,  
क्वचित् जरदजगर प्रमुखविषधर्खर निकर शरण्या  
मरण्यानीं दूरतो ददर्श ।

निवारयद्विरेत्युत्तेषा, एवमभिल्पद्विरेत्यत्र । सुपर्णः शोभ-  
र पर्णाथ्रपः वैनतेपथ, हरिः कपिर्विष्णुश्च । लक्ष्यता दृश्यता धरच्यताच,  
तत्री पक्षीवाणश्च । वारणोगजः, निवारकश्च, जाम्बवानोकहोजम्बृवृक्षः  
शेखरीर्पर्वतः, कनकोधस्तुरः कनकं सुवर्णच, खर्जूरः तदभिधोवृक्षः  
खर्जूरं रजतं च, वंशोवेणुः कुलंच । घनाघनः घातकगजः वर्षदम्भोदश,  
यनंसान्द्रम् । सम्परायो युद्धम्, खदगः गण्डकः असिश्व शारङ्गो मृगः  
वैष्णवं धनुश्च । भीमसत्त्वम् भयानकोजन्तुः भीमसेनस्यवलंच । कीचकः  
उन्नामधेयोवीरः अनिकाघातेन शब्दकारकोवेणुश्च, कौरवः दुर्योधनादि  
शृगाळश्च । सहचरी अतुचरी पीतकूरण्टकश्च । प्रवाकः किसल्यः विद्वु  
पश्च । पदनोपर्यकवक्षः कामश्च । पुं नागः प्रशस्तः पुमान् केसरश्च ।  
अलका कुयेरपुरी, रम्या स्वर्वेश्या कदर्लावृक्षश्च । नेत्रं नयनं सरित्र द्वुम  
शूलं कस्तूरिकामृगाश्च । कृष्णो ग्रणविशेषः भेषजविशेषः आपलकीच,  
गुलिमनीलतेतिवा, वदनं शाहः सोऽस्त्यस्मिन्नितिवादि, नीरंजलं हितं यस्या  
मितिवा । अमृताशनैः आपल की भक्षकैः सुपाभक्षकैश्च दलादको नेप,  
रनगतैः वनं विपिनं गतैः प्रासैः, गतंवनं जलंयेभ्यस्तैः त्यक्त जलैरिति  
पावत । जातिकालघुखादिभ्यः परानिष्ठावाच्येति वार्चिकानिष्ठानस्यपरत  
निपातः । जरदजगरः वृद्धोऽजगरनाप पेयस्सर्पः । अरण्यानी मटारण्यम् ॥

अनिन्तयत्तचेतमिनिः सपालोन्ग भीषणां तदीया।  
 माकं चक्रवाकविलगितेन आनाप्रतापेन कौशिक्षुल  
 क्षेत्रेन नननश्विनोदेनन पण्डितोदिवसः, मधुग  
 जिगजित राजीवगदनान्तर्विलमन्नवमन्नां चिग्य  
 निपेवणादिवकरेः, वरुणवर्षणिनी प्रोक्षितवक्षोऽह-  
 क्षितिधर निर्गीक्षणप्राप्त प्रोद्धगाढानुगगादिव, तमुदं  
 योन्मुखदेष्टणपीयूपकर्ममूर्ख केरव कदम्बकावलोकनो  
 व्यद्रोपादिव, कालमेषिकारुणतासुपयाति मैद्विरंमहः ।  
 आथयितु मनुमग्निमूरः परिहृतवसुत्वेवरत्नाकरम्,  
 निजनिजशावकावनाय गृहीतविधसआवासनीऽ-  
 दिशमभिप्रयन् प्रयातिगणः खगानाम्, तदिहैवपुरि  
 पुरोभागमलङ्घकुर्वति दिव्यदिव्योपपाद कोदवप्रिते  
 नेतव्या यामिनीति, ततस्तत्रैव समुपेत्यावस्थिति  
 मकरोत । तदनु भगवती सुपास्यसन्ध्यां विधानैरप-  
 चित्यचेत सानन्येनदेवं केवलं प्रत्यवसिततदीयनैवे-  
 द्यो विभाव्य वालामिव तरुणिमानमाश्रयन्तीं, प्रवर्त-  
 मान यामिकजनार्थां युवतिमिव कलाकरगृहीतम-  
 ध्याम्बरां रजनीमवलम्बित कम्बलासनः सुखं सुष्वा-  
 प । अथ त्रियामापरिणतिं पिशुनयति मागधनिकर  
 इव कलरुतं कलयति कलविङ्गे, सान्द्रनिद्रान् प्रवोध  
 यितुमिव प्रणिनददतितारं दायिताश्लेषसुखद्वेषकारके



अचिन्तयच्चचेतसिचिरं समालोच्य भीमतां तदीयाम्  
 साकं चक्रवाकविलसितेन आतपप्रतापेन कौशिककुल  
 क्लेशेन नववधूविनोदेनच परिणतोदिवसः, मधुपरा  
 जिराजित राजीवसदनान्तर्विलसन्नवमधूनां चिराय  
 निषेवणादिवकरैः, वरुणवर्षर्णिनी प्रोक्षितवक्षोरुद-  
 क्षितिधर निरीक्षणप्राप्त प्रौढगाढानुरागादिव, समुदे-  
 योन्मुखद्वेषणपीयूषकरससख कैख कदम्बकावलोकनो  
 द्यद्वोषादिव, कालमेषिकारुणतासुपयाति मैहिरंमहः ।  
 आश्रयितु मनुसर्गितसूरः परिहृतवसुत्थेवरत्नाकरम्,  
 निजनिजशावकावनाय गृहीतविधसआवासनीड-  
 दिशमभिप्रयन् प्रयातिगणः खगानाम्, तदिहैवपुरि  
 पुरोभागमलद्वकुर्वति दिव्यदिव्योपपाद कोदवमिते  
 नेतव्या यामिनीति, ततस्तत्रैव समुपेत्यावस्थिति  
 मकरोत । तदनु भगवती मुपास्यसन्ध्यां विधानैरप-  
 चित्यचेत सानन्येनदेवं केवलं प्रत्यवसिततदीयनैवे-  
 द्यो विभाव्य वालामिव तरुणिमानमाश्रयन्तीं, प्रवर्त-  
 मान यामिकजनारवां युवतिमिव कलाकरगृहीतम-  
 ध्याम्बरां रजनीमबलम्बित कम्बलासनः सुखं सुष्ठा-  
 प । अथ त्रियामापरिणतिं पिशुनयति मागधनिकर-  
 इव कलरुतं कलयति कलविङ्के, सान्द्रनिद्रान् प्रवोध-  
 यितुमिव प्रणिनददतितारं दयिताश्लेषसुखद्वेषकारकं

ताम्रचूडे, शीतलं वहति मृदुलमनारतकेलिश्रमस्वेदशीकर्निकरापहारिणि चुम्हितचन्दने परिशीलितकावेरिणिमलयसमीरणे, प्रियागमनप्रतीक्षाक्षपिताखिलक्षपाक्षणाहितामर्षेणव

अचिन्तयदिति, यामिनीतीत्यनेनान्वेति । साकमिति सहोक्तयक्षकारः । कौशिकः उलूकः । दिनेतस्य दर्शनशक्तिरोभावात् क्लेशः । विनोदेनेति, रात्रौतासा क्लेशोदयाद्विव सएवसुखम् । मधुपोञ्चमरीमध्यपश्च राजीवं कमदं तदेवसदनम् । मधूनां पुष्परसानां मद्यानाञ्च, करैः किरणैः हस्तैश्च । मद्याळये मद्यपास्तीष्ठन्तीति वस्तुस्थितिः । वरुणवरवर्णिनी पश्चिमाशा, प्रोच्छितः उत्तुंगः । शेषादिति अन्योष्परातिसपक्षोन्नतिं विलोक्यकुप्पतीति । काळमेषिका मंजिष्ठा । इमाअलंकारान्तरोत्था उभेषाः । शूरः सुर्योबीरश्च, चमुकान्तिर्धनंच, रत्नाकरः समुद्रः रत्नानागकरोभूषितश्च, वीरस्नेजमारहितोजलादौ प्राणान्जहाति, इतरोऽपि विगलितविभवः प्रभूतरत्नं पुष्पमाथ्रयते । विघसः स्वभुक्तावशिष्टः । दिव्य उत्तमे, दिव्योपगादकोदेवः । अपचित्य सम्पूज्य । प्रत्यवसितं उक्तम् । कलाकरश्चन्द्रः सकलफलाभिष्ठोनायकश्च, अम्बरमाकाशं उन्मनं च । पिशुनयति सूचयति, कलरुतं मधुरशब्दम् । कङ्किष्ठेचटके । ॥म्रचूडे कुकुटे ।

लोहितवदनायां पुरोदिगङ्गनायाम्, सुचिरसमय  
व्यापृतनिधुवनरभसपरिश्रमालस विलासिन्यामिव  
निमीलित प्रायतारकायांक्षणदायाम्, परिव्राजकेष्विव  
स्तिर्घदशाविधुरितेषु भ्राम्यत्सु विशिखेषु प्रदीप नि

अचिन्तयच्चेतसिचिरं समालोच्य भीमतां तदीयम्,  
 साकं चक्रवाकविलसितेन आतपप्रतापेन कौशिकुल  
 क्षेत्रेन नववधूविनोदेन च परिणतोदिवसः, मधुपरा  
 जिराजित राजीवसदनान्तर्विलसन्नवमधूनां चिराय  
 निषेवणादिवकरैः, वरुणवर्वणिनी प्रोक्षितवक्षोरुह-  
 क्षितिधर निरीक्षणप्राप्त प्रौढगाढानुरागादिव, समुदे-  
 योन्सुखद्वेषणपीयूषकरसस्ख कैरव कदम्बकावलोकनो  
 द्यद्रोषादिव, कालमेषिकारुणतासुपयाति मैद्विरंमहः ।  
 आश्रयितु मनुसरतिसूरः परिहृतबसुनयेवरत्नाकरम्,  
 निजनिजशावकावनाय गृहीतविधसआवासनीड-  
 दिशमभिप्रयन् प्रयातिगणः खगानाम्, तदिहैवपुरि  
 पुरोभागमलङ्कुर्वति दिव्यदिव्योपपाद कोदवमिते  
 नेतव्या यामिनीति, ततस्तत्रैव समुपेत्यावस्थिति  
 मकरोत । तदनु भगवती सुपास्यसन्ध्यां विधानैरप-  
 चित्यचेत सानन्येनदेवं केवलं प्रत्यवसिततदीयनैवे-  
 द्यो विभाव्य वालामिव तरुणिमानमाश्रयन्ती, प्रवर्त-  
 मान यामिकजनारवां युवतिमिव कलाकरगृहीतम-  
 ध्यामवर्गं रजनीमवलम्बित कम्बलासनः सुखं सुष्वा-  
 प । अथ त्रियामापरिणतिं पिशुनयति मागधनिका-  
 द्व कलरुतं कलयति कलविङ्गे, सान्दनिद्रान् प्रवोध  
 पितृमिव प्रणिनददतितारं दयिताश्लेषसुखद्वेषकारं

ताम्रचूडे, शीतलं वहति मृदुलमनारतकेलिश्रमस्वे-  
दशीकरनिकरापहारिणि चुम्बितचन्दने परिशीलित-  
कावेरिणिमलयसमीरणे, प्रियागमनप्रतीक्षाक्षपिता-  
खिलक्षपाक्षणाहितामर्षेणव

अचिन्तयदिति, यामिनीतीत्यनेनान्वेति । साक्षिति सहोक्तथक-  
रकारः । कौशिकः बलूकः । दिनेतस्य दर्शनशक्तिरोभावात् वलेशः ।  
विनोदेनेति, रात्रोतासां क्लेशोदयाद्वि सएवमुखम् । मधुपोञ्चमरोपद्यपश्च  
राजीवं कमलं तदेवसदनम् । मधूनां पुष्परसानां मधानाश्च, करैः किर-  
णैः इस्तैश्च । मध्यालये मध्यपास्तीष्ठन्तीति वस्तुस्थितिः । वरुणवरवर्णिनी  
पश्चिमाशा, प्रोच्छृतः उत्तुंगः । शेषादिति अन्योप्परातिसप्तोन्नतिं  
विलोक्यकुप्यतीति । काळमेषिका मंजिष्ठा । इमाभलंकारान्तरोत्था उ-  
त्पेक्षाः । शूरः सूर्योवीरश्च, वसुकान्तिर्धनं च, रत्नाकरः समुद्रः रत्नाना-  
माकरोभूपतिश्च, वीरस्तेजसारहितो जलादौ प्राणान् जहाति, इतरोऽपि  
विगलितविषवः प्रभूतरत्नं पुरुषमाथयते । विघसः स्वसुक्तावशिष्टः ।  
दिव्य उत्तमे, दिव्योपरादकोदेवः । अपचित्य सम्पूज्य । प्रत्यवसितं  
भुक्तम् । कलाकरश्चन्द्रः सकलकलाभिष्ठोनायकश्च, अम्बरमाकाशं व-  
सनं च । पिशुनयति सूचयति, कलहतं मधुरशब्दम् । कलविष्टेचटके ।  
ताम्रचूडे कुक्कुटे ।

लोहितवदनायां पुरोदिगद्भगनायाम्, सुचिरसमय  
व्यापृतनिधुवनरभसपरिश्रमालस विलासिन्यामिव  
निमीलित प्रायतारकायांक्षणदायाम्, परिव्राजकेष्विव  
स्त्रियदशाविधुरितेषु भ्राम्यत्सु विशिखेषु प्रदीप नि

वहेषु, वियुक्तजनायतोपचित् निः श्वासैवश्वानर नि-  
तान्तपरीतापेनेव प्रोन्नतसपत्नारुणवैजयन्ती प्रदर्शन  
जनितासोढं शोकेनेव क्षणमप्यविषह्यं प्रेयसी वियोगे  
नेव अधिपश्चिम सलिलनिधि निमज्जति निशाना-  
यके, वदुपटलसमारुधस्वाध्यायाध्ययनध्वानं प्रबुद्धा-  
ध्वनीन धृतासुपद्धतिषु, प्रमथगणेष्विव भैखरागानु-  
रञ्जितमानसेषु लोकेषु प्रत्यूषसि विसृष्टशयनो निर्व-  
र्तित स्नानादिक्रियो नातिदूरसुरपदं समारुढे सारस-  
मिव जगतीतलं विकाशयितरि सवितरि दक्षिणादे-  
शायायिनीं पदवी मशिश्रियत् । अशृणोच्च

“ हरिभक्तिभरश्शरीरणां, यदि वाधैरतिरस्कृताभवेत् ।  
जनविस्मय दायिनीतदा, संसिद्धिर्नविरायजायते ॥ ”  
इत्यपरवक्त्रं मधुरस्वरेणोदगीयमानं केनापि । ततो  
ऽतिक्रान्तेषु कतिपयकालेषु पौरस्त्याकलितस्यतन्म-  
हावनस्य प्राच्येनाध्वना प्रतिषिद्धगमनेनाप्यविदित  
प्रवृत्ति र्गच्छन्नभिवीक्ष्यान्तरीक्षमध्यलक्ष्मीमालिंगितु  
काममिवोद्यान्तं तीक्ष्णमरीचिमालिनं माध्यन्दिन-  
सवनायतसवेशोसन्निवेशेन निरन्तरदलसन्ततीना  
मातपत्रानुकारिणो निषंगस्येव शिली

तारका नक्षत्रम् अक्षणोः कनीनिकाच । परिव्राजकोयति, स्त्रिय-  
दशा सतैङ्गवर्तिका प्रेमयुक्तावस्थाच, भ्राम्यत्थु इतस्ततस्तस्त्वरमाणेषु व-

र्णमानेष्व, विशिष्टेषु रेत्पा द्विखयाचरणितेषु, आयतोदीर्घः, वैजयन्ती  
पताका भेयसी निशात्मिका । अध्वनीनः पथिकः पद्मतिर्पर्गीः । सज्जप-  
न्तीष्विति उर्तिर्पमनायेति भादः । भैरवरागः शिवविषयिणीप्रीतिः भैरवा-  
भिष्मानोरागश्च, द्वूरपदम् आकाशम् । दीर्घपादि, एतेन भाविकाङ्गमुज-  
गमीतिशान्तिः दूचिता ॥ अपरवद्वक्त्रं वृक्षम् । पौरस्त्यं पूर्वम्, प्रति-  
प्रिद्वेति कालसर्पेषुद्वेतिरिति भादः, अविदित प्रवृत्तिरितिगमनेहेतुः प्रवृ-  
त्तिः दृतान्तः, मवनायपूजनाय, निरन्तरदङ्कसन्ततीनां सन्निवेशेनेत्यन्व-  
यः । निषंगः इषुधिः, शिळीमुखो वाणः मधुकरश्च ।

मुखनिषेवितस्य तरुणीचरण पुरातनाघातसंजातको  
पादवसरं सरन्नेववैरिविरहिणी दहनाय प्रत्यग्नप्रवाल  
जालच्छलेनानलास्त्रोणीवसन्दधानस्याशोकानोकह-  
स्य शीतलेतले गृहीतासनोनारायणनमस्या मतनोन्ना  
नाविधैर्वनभवप्रसूनैः । अथतद्वाटिक महाटवीनिक  
टातिस्फुटग्रन्तप्रोद्घटघण्टिकाटह्नाराकर्णनोद्विक्त क्रोधा  
तिरक्तनेत्रजगतीग्रासप्रसक्तशक्तव्यक्त समभिद्रवत्का-  
लकरालवक्त्र निर्यद्धालाहलमहानलज्वलज्ज्वालाजा  
लज्जरितसनसा श्वासनिश्वासश्वसनस्यदसन्दह्यमा  
नविपिनम्, प्रकृत्यैवाऽक्षेत्रतयाक्षान्ते दिंक्षुविदिक्षुचाल  
क्षयाण्यपि प्राणिलक्षणाणिक्षणादेवप्रत्यक्षमात्रेणाति तमां  
क्षोभयन्तम्, अन्तकस्यापि भीतिमुपजनयन्तं, वनदे  
वतामपि कान्दिशीकतांनयन्तम्, प्रकृपितभोगिराज  
मिव वर्धितभीपणभोगभाजं, भाद्रभीमदर्शी विभावरी-

मणी कालभावादधः कुर्वण्म, अहर्पतिर्दर्पस्फुरत्फ-  
णाफूत्कारस्फारथूत्कृतीनां वृष्टिसृष्टिभिस्तिरोदधतम्,  
भैरवरूपिणमप्यशङ्करं, काद्रवेयपतिकम्पसम्पादक म-  
प्यशेषकम्पलम्पटम्, शोषयन्निबायूंषि र्वतोमुखानि  
जनिजुषाम् उन्मत्तमिवमदं, यौवनमिवकूरभावस्य  
स्वरूपमिवमहोत्पातसागरम्य, अभिमानमिवहिंशा-  
याः सर्वस्वमिवकरालतायाः, धावमान (१) माञ्ज  
नपुञ्जमिव, तमस्तोममिव, श्यामलशिलोच्चयमिव,  
सान्द्रतमाल तरुसमुदयमिव, यामुनद्रूदमिव समुद्र-  
तम्, पातालान्धकारमिव मध्यभुवनमाश्रित माजङ्ग-  
म्यमानं कालसर्पेन्द्र मर्पितमात्रे जपेपश्यन्नेवपुलकि-  
तस्वेदितस्समवेपत । समस्फुटदिवचसहस्रधा

आघातेति युवतिपदाघातेनाशोके पृष्ठोद्गमोभगवतीतिक्षिसमयः ।  
अवसरं प्रिय वियोगात्मकम्, सरचेव प्राप्नुवन्नेव । अकतोहोवृक्षः नमस्यां  
पूजाम् । तद्वाटिकः तस्याघटिकाया अयम् एषचट्ठारस्यविशेषणम्,  
नेत्रान्तंचवक्त्रस्य, कालोयमः नमानासिका, निः श्वासोमुखवायुः, स्पदो-  
वेगः, अब्रक्ष्याणि द्रष्टुपर्नीपित्तानि, कान्दिशीकृतां भयद्रुतताम्, भोगि-  
राजं शेपनागम्, भोगःकणा कालभावात् श्यामत्वात्, भैरवक्षिश्वोभयानक  
इव, श्वद्रक्षिश्वः कल्याणकारकश्च । काद्रवेयोनागः, अशेषकम्पलम्पटम्

१ वायुवानोरात्मनेऽक्षितमपि प्रयोगेदृश्यते, यथा हर्षचरिते नंगापर्वते “पर्वतेनुर्मिशा,  
मः श्वद योद्धाम्” इति ।

ते होते तद्वारा इन्हें दूर करने के लिए । एवं तो मात्रानिवारणी, रप्तारु, । अतएव विदेशी देशों के लिए । यात्रा क्रमान्वय उत्तिष्ठ मात्रान्वय, परायाः त्रिविद्यागते दिव्यानाम् ।

**इदं ये न ततः क्षणोन्नदं भैरवमाधाय प्रतिविधानं विसृ-  
शब्दप्रियसाधनान्तरं मनवलोक्यन्**

“ कास्त्रण्डे इत्यामनन्यशाणश्रीमन्तमभ्यर्थ्ये  
शालव्यालसुखन्तगलपनितं गोरालमाम्पाल्य” ।  
इत्याकस्मिकावभासेन पद्यपादयुग्मेन भक्तवत्सलं  
दरिमापन्नार्तिनाशनमार्त आर्तयत । अस्मिन्न-  
वमरेद्वागेव सुखृतो विनिरव्यहावयः ग्राहगृहीताद्विघ्रि-  
सिन्धुराग्रयः । करणाभिन्धुर्दीनं वन्धुर्मधुनिपूद्नोऽनि-  
दन्तुरं, तुरगरुपमतनुनुकं, पृथुप्रोथं, ग्रीवापघन  
प्रभवलोमस्तोम प्रतिरुद्ध यादविठ्ठुवारिवाहप्रचारम्,  
अजस्तं विपुल पुच्छ युच्छ धूनन घोणकोण निर्गच्छत्प्र-  
भञ्जनाभिक्षिसाभ्यर्णवरसहस्रं, विकटापकुट्टनभयक-  
म्पमानकूटभृतं, स्वायतागतमपि वितततमतमश्शया  
मरश्मिसम्बद्धं, हयग्रीवभक्तिभरविवर्तमपि उच्चैश्वरसं  
भीष्मेणाप्यशान्तनवेनाक्षियुग्मेनाभिवीक्षमाणम्, ऊ-  
द्धुकृष्टमूर्धीनमुपधायवधाय शतधासत्वरतरन्तमुरगवरं  
विभज्य वज्रविदेविणाप्रोत्तेनदन्तेनान्तिकमन्त-  
कस्य ज्ञातिः समयापयत्, क्षणेन पुनरद्वयतामुपाग-  
मत् । स च तदार्दी कलावेतमद्वृतमभृतपूर्वज्वात्मनि

भगवतोऽनुभावं निश्चितेनचक्षुषानिरीक्ष्यशमनवदन  
गर्भसुरुमिव, अभिनवं जगतिजातमिव, दहनोदरादा-  
गतमिव, महोदधिमध्यनिमज्जनान्निस्तृतमिव, शान्ते  
नसं स्वंमन्यमानंपरिच्छेदरहितैः, परश्शतैरपिवत्रोभि-  
रगोचरैः, हर्षप्रकर्षरन्तर्मालुमशक्तुवद्विवाष्पकै-  
तवेनवहिरागतैः कियत्कालमवापवाह्यान्तवृत्तिविसर  
विधुरां, मोहमयामिव, शून्यमयीमिव, कैवल्यमयीमि-  
व दशाम् । ततोऽभितोष्ट्रयप्रकटितदयोदयमिष्टदेवं  
विधायचनिर्वाधसञ्चारं तत्प्रदेश मवाप्यचानपायिनं  
सकलामोदिनमकलङ्कनंकमपियशः कलाकरं निश-  
ङ्कः परास्तातङ्क ऋजुनैववर्त्मनाप्रवृत्तेगन्तु मिति ॥  
इति मेधिल श्रोत्रिय श्रीवालकृष्ण मिश्र विरचितायां

### श्री ५ लक्ष्मीश्वरी चरिताख्यायिकायां

प्रथम उच्छ्वासः ।

रसा भूमिः । गार्त्तथत प्रार्थयत् । निरवग्रहोनिः प्रतिवन्धः, अवग्रहो  
विघ्नः, सिन्धुराग्र्यः गजेन्द्रः, तनुः कृशशरीरं च, प्रोथः नासिका,  
अपघनोऽवयवः, घोणोनासिका, कूटभृत पर्वतः, रङ्गिमः प्रग्रहः किरणश्च,  
इयग्रीवो नारायणः, उच्चैश्शूरावाः इन्द्रदत्तुरगः । उन्नतकर्णश्च, वज्रविद्वेषिणा  
वज्रतोपिकठिनेन, शमनोयमः, अभिनवमिति जनिक्रियाविशेषणम् । एनः  
पापम्, भीविजन्यदुःखभोगेन पापशान्तिरितिमावः । वाह्यवृत्तिः वाह्य-  
न्द्रियसन्निकर्षजन्यावृत्तिः अतथाभूताचान्तवृत्तिः, विसरः संभूतः, । नि-  
श्चञ्जल्त्वं परास्तातङ्कत्वं च ऋजुवर्त्मनागमनायप्रवृचौहेतु रिति ॥ इति  
प्रथम उच्छ्वासः ॥ \* ॥

## अथ द्वितीय उच्छ्वासः ।

पुण्याचरणपवित्रितकायोऽमलमानसोनिरतः ।  
केशवचरणपरसिजेप्रभवतिर्कर्तुं न किं कस्मिन् ॥

अथगच्छतश्चास्यवहुप्रदइवदुर्विधक्षेशान्तकारकः,  
वलीयानिवश्चरंकरमन्दकरः, कांसार इव म-  
नागदर्शितवासरः, नागरतरुणइवश्यामानन्दनः,  
लौकायतिकइव अभियातिसदागतिः, शाकदीपइव  
प्रियवित्रनिषेव्यमाण भानुः, यात्रुधानइव अमृताव-  
गाहनसुखवज्ज्वनः, व्यभिचारिनायकइव परमहेला-  
धरसलमपटः, तिमिरोत्करइव तापनाशनः, शान्दिक  
प्रयोगइव वाहुलकानुगतः, हरिरिवानतिशयितसुर-  
तामोदजननः, साधुरिव प्रदर्शिताभिनन्दनीयफल-  
शालिमार्गः, निदिव्यासनसमाधिरिव प्रसुदितक्षेत्रवा-  
श्, नयसहितभूपतिरिव विगतरुपलोचयः खलशोभा  
वहश्च, कामयमानइवजातपुलकः, हेमन्तसमयस्समी  
याय, यत्राञ्जलवितानाञ्जितकुचशिखरियुगलान्तराल  
नीतवदेनाससुकृतिनोयुवानः प्रमदयानन्दतन्दोहमनु  
भवन्तिरुपि, पृथुकरूपमाकलय संयाततनयाइवा  
सादयन्तिसुखंकृषीवलाः, सुषोमवहुलेनापियेनोपची-  
यतएवसन्तापो वियोगिनाम्,

श्रीः । पुण्येनि, परतेन भवितव्यनी भूगनितवयरोपयादित्पूनिग ।  
 शुरकरः गविकिरणः नोऽस्मद्ग । नामरादिनं मर्यनिगेष्वा । पङ्कजेतिम्ब  
 लवुत्येनपनामदर्शिनत्वमितिमातः । इयापागाविः तदानन्दनोवर्जन्म  
 मुग्धव्योवनान । क्लौकायतिरक्षान्तीकः, अभियातिः, देष्यः, मदायतिः ए  
 नस्स्वर्गथ । चित्रभानुः भास्करोऽनक्षश । अमृतं जलं सुवाच, अवगाह  
 स्नानमास्वादथ । परमाहेळासुरतम्यप्रोटेल्लायचप्रचामावधररमस्यक्षम  
 श्शोपकः, तत्र व्रणोऽयादिति । अन्यत्र परमहेलायाः परकीयवनिनाया अ  
 घररमस्यक्षम्भटः कामुकात्पर्यथः । तापस्यनाशनः अन्यत्रनापनस्यमानोऽवत  
 भक्षणीपद्धति । वाहूलकः कार्तिकः । वाहूलकं कचित्प्रवृत्तिरित्यादिव्युविं  
 शब्दशाखेपमिद्धम् । सुरतामोदः सुरतेनामोदः देवममुदायामोदथ । वर्णि  
 नन्दनीयफङ्गशालयो यवमचासौमार्गः मार्गशार्णिः । अन्यत्रताद्वक्षुद्देन  
 शालीशोभमानोमार्गः पन्था इति । क्षेत्रवान् कृपीवलः जीवथ । कमठोद्य  
 पड्कजसमुदयः छक्ष्मीसमुदयश्च । खलः धान्यस्यापनादिस्थानदुष्टव  
 प्रमदयेतिरुतीयार्थोनयनक्रियान्वर्या । पृथुकः चिपिटान्नं वाढथ सुषीम  
 शैत्यम् ।

ततोविपुलफलभरभारभिनन्दितजनिजुषांखपुर-  
 खर्जूरलाङ्गलिप्रसुखशाखिनां भुक्तविप्रलभ्माभिरिवव-  
 लुरीभिस्सविस्त्रम्भहृष्टपरीभ्मारम्भसम्भोगसम्भाविता-  
 नां शातकुम्भशोभिसुरभिसम्भुवस्तम्भोरुप्रसवसम्भारो  
 पलम्भाति भासुरम्भाजम्भलदुमाणां स्तम्भितजम्भा-  
 हितारामरमणीयदम्भासुपाटवीचिलोकयन् प्रमोदमा-  
 नमानसोऽसौनातिद्वैरसवतीरसानुबुभूषयाऽगतंविद्या

धरपुरमिव सागमोलसितद्विजनिकर्कुसुमसमयमिव,  
परिक्षयाकृतपरिवेषं चन्द्रमण्डलमिव, सानेक  
प्रालेयशैलमिव प्रासादैः, दुर्घोदधिमिव मणिमौक्तिक  
विद्वूमैः, पुरुहूनपत्तनमिव त्रुघगुरुकविकलाधैः, विश-  
ङ्गसङ्कटं, निर्गलार्गलगोपुरं पुरं पुरतः सम्पराये  
चित्रेखाप्रभृतिलेखालयाङ्गनाजनेष्यमाण निष्कृपकृप  
णलेखासमुदयस्य, जलधरस्येवविमलतरवारिधाराध-  
धीरितपरिपन्थिप्रतापस्य, सरमइव पद्मोलासभासित-  
स्य, प्रौढयुवतिवक्षोरुहस्येव सुवृत्तमनोहरस्य, पवनाश  
ननायकस्येव धृतक्षमस्य, प्रकृत्यादक्षिणस्यदक्षिणक्षो-  
णीरक्षिणोनिर्गक्षमाणः क्षिप्रमेष्यन्ती क्षणाकापालिकी  
मवधायसन्ध्यया तदीयपानाय सम्भादितइव मदिसरसे  
रागकैतवेन, दिवसश्रियाश्रितवारुणीकेऽन्वरंपरिहरति  
पश्चिमगिरिगहनकेलिकासुके पूषणि.

जनिजुपां प्राणिनाम्, सर्वेषामेवतदवस्त्रित्याशयः । सहुरः गृष्णाम्  
पाशः, लाङ्गोर्णा नारिवेहः, शातकूर्मं सुर्वर्णम्, सुभनः, कुटिलः, हृष-  
षान्, जम्भलः दादिमः, जम्पादितः इन्द्रः, रहदकीष्टर्णी सरमादनिला-  
ष, अनन्तमोऽपि असरूपातो भोगदान । अनन्ताभित नोनादृ, शार-  
मेत्यादि, आगमरथारुद । द्विजो दिवः, अगमोहः, दृष्टः एष्टो दस्त-  
नगरम् दुषः पष्ठितः एन्द्राल्लजद, हुरः ऐहः दास्तदृ, दृष्टः, वर-

गितो शक्तय, शक्ताऽऽस्तु कृत्पितृप्रदेव, दिवदेवे प्रदेवदेवे एवं  
शास्त्रम् । निर्मिति गतिविदा यांश्चात्मार्थं गौवेषं वाचेऽहं । तोहाँ शुद्धां शुद्धां  
हमर्योऽस्तु । शास्त्राग्नोपाद्यम्, वैवाहिकेन्द्रीयवर्णेन्द्रीयविद्युत् एवं  
र्विभागे । विवेदी, विष्वज्ञातवागेवं वर्णन्त्य जाग्रा, विष्वकाम  
विष्वीवाग्यावधारेन इ । वस्त्राभिः प्राप्तिविज्ञाना, प्राप्तिविज्ञान स्वतः  
म्लेजः द्रुक्त्वा प्राप्तेन वर्णन् । प्राप्ताभावः सम्पदः, रुपलक्ष्यनोद्दृशः  
मृद्गतं जीभनप्रवृत्तिः ते । मनोहाः । गृहमां र्वं शोषनोद्दृश, गतवामनते न  
कः शेषः, शपा शान्तिः पूर्णीन, रसिणुत्त्वश्चपुर्मित्यनेनान्वयः । तदीय  
पानं शपा शापालिङ्गास्त्रुकं पानं । शपागतो अनाशादितिमावः, वास्त्री  
पश्चिमाशा, पश्चान्, अम्बरमारुपां वसनंन, दिवसश्रियेति अथग्रेहेन्द्रीय-  
न्वेति तृतीयायास्त्रार्थस्त्वात् ।

निशावसानोन्मिष्टप्रणयकलहकुपितापनोदनान्तराय-  
तरणिक्षमुदयावलोकनायातमामिनीमानापहरणोत्क-  
लिकाकलापसुपनेत्रुमायातिकुमुदिनीनायके, सञ्च-  
रणमारभमाणेषु शम्भलीजनेषु, अभिसरणपथ्य  
नेपथ्यधारिकास्वभिसारिकाषु, सखी सुरत कौतूहलोद-  
वसिते वयस्यामिः स्थाप्यमानासु पञ्जरस्थसारिकाषु,  
विधिवश विघटमाने चक्रवाकमिथुनै, त्रिदिवमिव  
साप्सरोहंसक्षणितरामणीयक्षम्, कृष्णवरितमिव  
शुक्रभाषितम्, सदाचरणपर्यणमिव सुकृतमालानि  
तम्, तारुण्यमिव मन्मथावापितच्छायम्, अभिजन-

मिव पुन्नामदीपितम्, अनागरिकमपि श्यामालिंगि  
तम्, नवदरेणाऽपिवदरेण पलाशिनाऽपि हरिप्रियेण  
रुचिरम्, चम्पकवकुलमालती माधविकाकामिनी मद-  
नमञ्जरीद्रुमैर्मञ्जुलम्. वियोगिविसरविशारणायमा-  
रमाधकाभिचारमन्त्रोच्चारणध्वनिभिर्वि परिमलसुदि-  
तचञ्चरीकनिचयगुञ्जितैरासञ्जितम्, । अलक्ष्या  
इव पुटभेदनाद्विर्विद्यमानमुद्यानं सान्ध्यविधिविधा-  
नाय समासाद्य लम्पादिताशेषकृत्यः क्षपां क्षपयितु-  
ङ्कस्यचन घनच्छदनं । खाविशालस्य रसालशाल-  
स्य प्रच्छायतयाऽशीतलेतत्त्वे विहितासनपरिग्रहः त-  
दातदासन्नप्रदेशेषु भ्राम्यता नागरिकेण केनचिदा-  
याय दर्शनमात्रोपजात

शम्भलीकृष्टिनी । पथं, समुचितम्, नेपथं वेशरचना । साप्सरो-  
हंसकः सजलसगेवरस्यहंसः तस्परणितेन रुतेन रामणीयकंयं च तत्,  
अप्सरसां पादकटकरणितेन यद्रामणीयकं तेनसहितञ्च । शुक्रः कीर-  
शुक्राचार्यश्च । शुक्रतमाळाचितम् अतिशयेनशोभनैर्वाक्तपालैराजदृक्षैः,  
शुक्रतस्य पुण्यस्य मालयापरम्परयाच व्याप्तिः । मन्मथः कपित्थः  
मदनश्च, छाया पत्रच्छायाकान्तिश्च । अमिजनःकुकुर्देशश्च, पुन्नागः  
देववल्लभपादपः पुरुषप्रेषुद्धच । अनागरिकं नागरिकं जनातिरिच्यमानं  
नगरेऽजातंच नगरवाद्यत्वस्य तश्रीद्याने वक्ष्यमाणत्वात्, श्यामासुग्षयो-  
वनाप्रियंगुद्धच । नवदरेण बद्रभिन्नेन, नवदक्षताच रक्षयोरेक्यात्, ।

यितो गुकम, कलाधरः कलाभिज्ञानद्रव्य, विशहूर्दैः पद्धिर्जनेः सहं  
व्याप्तम् । निर्गतः अनाधिता अग्निपात्प्रियवत् तावशं । गोपुरं पुगाहां कं  
तज्जयोक्तम् । सम्परायोयुद्धम्, एतेनगाजविषयिणीचित्रलेखादिनिष्ठा पर्वति  
धर्वन्यते । विषलेति, विषलयोतरवारेः वद्गस्य धारया, विषतरया कं  
रिणोषार्यासम्पातेनच, । अवधारितः परिषन्थिनां, परिषन्थीव प्रवाह  
स्तेजः पक्षष्टस्तापश्चयेनतस्य, । पद्मोङ्गामः सम्पदः, कमलस्यचोडासः ।  
सुवृत्तं शोभनप्रवृत्तिः तेन मनोहरः । सुवृत्तो नर्तुलोपनोहग्नव, पवनाशननाय-  
कः शेषः, क्षमा शान्तिः पृथ्वीच, रक्षिणडत्यस्यपुरमित्यनेनान्वयः, । तर्दीय  
पानं क्षपोक्तापालिकीकर्तृकं पानं । क्षपागतौ गनाशादितिभावः, वार्षणी  
पश्चिमपाशा, मद्यं च, अम्बरमाकाशं वसनं च, दिवसश्रियेति श्रयणेकेलौ च-  
न्वेति वृत्तीयायास्सहार्थक्त्वात् ।

निशावसानोन्मिष्टप्रणयक्लहकुपितापनोदनान्तराय-  
तरणिसमुदयावलोकनायातभासिनीमानापहरणोत्क-  
लिकाकलापमुपनेत्रुमायातिक्षुदिनीनायके, सञ्च-  
रणमारभमाणेषु शम्भलीजनेषु, अभिसरणपथ्य  
नेपथ्यधारिकास्वभिनारिकासु, सखी सुरत कौतूहलोद-  
वभिते वयस्याभिः स्थाप्यमानासु पञ्जरस्थसारिकासु,  
विधिवश विघटमाने चक्रवाकमिथुनै, त्रिदिवमिव  
साप्तरोहं मकरणितरामणीयकम्, कृष्णचरितमिव  
शुक्रमाषितम्, सदाचरणपरग्यणमिव सुकृतमालाचि-  
तम्, तारुण्यमिव मन्मथावापितच्छायम्, अभिजन



पदाशिना मांसाशिना पत्रवत्ताच, हरिप्रियेण हरिप्रियेण कदम्बद्वुमेणच । विसरः समुद्रायः । विशारणं मारणम्, मारः मारणक-स्मर स्सएवसाधकः अनुष्टुपाता, तस्यशामाधकः कार्यकारकशब्दवरीकः उच्चारणश्वनिभिः अनेकेषां युगपदुच्चारणेऽवनिर्जायित इतिवस्तुस्थिति । अभिचारप्रयोगेवाचिकजपस्यैवागभेदिवान्मितिनकाप्यनुपपत्तिः । अङ्गकायाइवेति, “ वाद्योद्यानस्थित हरशिरश्चनिद्रकाघौतर्म्मा ” इति मेषदूतकाव्येकालिदासस्य महाकवेरभिधानात्, पुटभेदनं पुरम् । क्षणिय दुँगपरितुम् । छद्मं, पत्रम्, शालोवृक्षः,

नितान्तभक्तिना सपदि शिञ्जिरस्त्रुमनःसुरभि  
तसरोवारिणावहुविधकलपुष्कलेनोपवनसमुचितेनाति  
थेयेनातनितसत्कृतिः प्रणम्य कौतुहलापहतहृदयेन  
सविनयमन्वयुज्यत, देव ! महजवैयात्यशतस्याधम-  
तमजनस्य सुलभैवभवत्यशालीनता, याचक्षमणी  
यैवस्यात् सांसिद्धिरुक्तान्तिशालिभिर्वर्द्धैर्महानुभा-  
वैः, मौम्य ?

“ स्वसजातीयोत्कर्षः प्रायेणहिदुससहोभवति ”

इति भवदीय विलोकनाकलिताशेषसुखभागिनी  
लोचनेमोद्दमशक्तुवान श्रवणेन्द्रियं भावत्कवचदद-  
नन्दन्दिगंगादीगितपरिचयप्रवृत्तिमन्तिनिशमनस्तुधामा-  
धानुं प्रायति मामवदितम्, आर्य ! कतमं देशं  
ज्ञाणार्थ्यनार्ताना, कस्यपुण्यास्पदस्यजनपदस्य



राघवस्य, पुरुषिवाग्मन्त्रा, नन्ददेव यादवस्य, मना-  
गप्यनासृष्टारीवादगङ्गतयाऽतिविशदयशसो बुसौता-  
न्वयस्य निदानं नेमिपाट्टीस्थलदेव क्रतुममात्राण-  
विमलः, क्षितिपालभालदेशदेव धीरोज्ज्वलः, राका-  
पतिरिव चाडवकुलामोदकरः, श्रोत्रियाग्रेसरः पदकर्म-  
तयानयाधिकः, उक्तरोपनामधेयो विधीयमानमहाऽ  
ध्वरपञ्चकः कृतिकुलकमल विकाशकोग्विकरः पवित्रया  
मासजन्मनाधरणीतलम् । येनात्मनास्तमानः प्रथमा-  
यां पत्न्यासुपदेशकौशलकृतकंनान्तेवासिनिकरे स्फी-  
तमतितोयकरोबुद्धिकरः । रतिकान्तदेव विबुद्धप्रसादको-  
ऽसदलक्ष्यःकान्तश्चरतिकान्तो द्वितीयाया मुदपादिषा-  
ताम्, तयोरादिमो नगवारेति परोगाढेतिनामकं सं-  
वसथमसङ्ख्यसङ्ख्यावदतिक्रान्तवैदुष्यपरितोषितेन  
महीभृतोपहारीकृतमुपार्जिजत्, यतो बुसौतनगवारे-  
ति बुसौतगढेति मूलग्रामौ प्राचीनसम्प्रदायानुरोधेन  
तावविन्दताम् । तत्ररतिकान्ततः कीर्तिप्रकरकरः  
कीर्तिकरः ततश्चदूवदनाभिधानः परमपावनः प्रादुग-  
सीत् । बुद्धिकरस्तु समस्तप्रशस्तक्रियावपास्तनिर्वादौ  
सुगृहीतसम्बिदौ हलधरकेशवाविव गोकुलगोपकाव-  
कूरपक्षपातिनौ हलधरकेशवावजीजनत्, तत्रहलधरः  
शाणपाषाणकषणविमलीकृतं पुरातनंरत्नमिवरतनं के-

शवश्चादपत्न्यामरुन्धतीशीलं सन्दधत्यां गोविन्द-  
नामानं मां गोनू-श्रीहर्षेऽच् कनिष्ठभार्यां कविगण  
रुचिकरं रुचिकरं महायिक मण्डुदपीपदत् । (१)

क्षुरुरधर्तो मुनिवरश्च धीरः पण्डितः कुरुकृष्णं च । बाहवो वूद्धणः  
बाहवानउष्म, कुलं समूहः स्थानं च, आमोदोर्पौद्विदिश । पद्मर्पणि  
यागादीनि, तदुक्तम् “इष्य इष्य यनदानानि याजनाध्यापनेतथा, प्रति-  
प्रश्वर्तर्युक्तः पद्मर्पणिविप्रत्यप्ने” इति । नयोन्यायः सत्रे पञ्चैश्वरपर्व-  
णिसन्ति अतएव तदधिकः । पहाड्वरपञ्चकञ्च “पाठोहोमश्वातिथीनां  
सप्त्यात्पर्णं वलिः, एतेषञ्चमहायज्ञा वलयज्ञादिनामकाः” इति ।  
विकाशकइति एतेन धरणीतज्जपावनत्येत्तरविकारसोद्दृश्यप्रिष्ठामूलपा-  
व्यञ्जनयाध्वन्यते । कतकः सलिलप्रसादकरो द्रव्यविशेषः, तेनान्वर्धना-  
पत्वं सूचितम् । विवृथः पण्डितोदेवश्च, अमदनक्षयः अपतामलक्ष्यः  
असन् अविद्यमानोलक्ष्योपस्थ स च । उदपादिपातामुत्पादितौ । सं  
वसथं ग्रामम् । सहूरुपावान् पण्डितः, अत्र विरोधाक्षारोव्यञ्जयः ।  
निर्वाटो निन्दा । गोकुलं गवांकुलं ब्रजपुरं शास्त्रं च, अकूरः मथुरावासी  
कूरभिन्नश्च । शाणपापाणः निरूपः । रुचिकरं स्पृहाकरं कविगणस्पृह-  
णीयपाण्डित्यशालिनमितियावत् । उदपीपदत् उत्तादयामस ।

तेषु श्रीहर्षः सामूज्यमिव लावण्यस्य, सरूपमि-  
वरमणीयतायाः, सम्मोहद्ववामभुवाम्, आनायइव

<sup>१</sup> “घोगोदेष्या श्रेष्ठमतनप. केशनरस्यात्प्रसाद्या, श्रीगोविन्दोहारकरक्षे रेषमपात्र इमीश्वर ।  
भीमसारापणपरायोः सम्यगाधापवित्ते नत्वासारस्तपपिमहं वाव्यनस्य व्यन्ति” इति  
गोविन्दठक्कुर प्रणीतस्य काव्यशदीपस्याय सोऽस्मि ।

रघवस्य, पुरुशिवपौरवस्य, चन्द्रइव यादवस्य, मना-  
गप्यनासृष्टपरीवादपङ्कतयाऽतिविशदयशसो बुसौता-  
न्वयस्य निदानं नैमिषाट्वीस्थलइव क्रतुसमाचरण-  
विमलः, क्षितिपालभालदेशइव धीरोज्ज्वलः, रका-  
पतिरिव वाढवकुलामोदकरः, श्रोत्रियाग्रेसरः पद्मर्म  
तयानयाधिकः, ठक्कुरोपनामधेयो विधीयमानमहाऽ  
ध्वरपञ्चकः कृतिकुलकमल विकाशकोगविकरः पवित्रया  
मासजन्मनाधरणीतलम् । येनात्मनासुमानः प्रथमा  
यां पत्न्यासुपदेशकौशलकृतकेनान्तेवासिनिकरे स्फी  
तमतितोयकरोद्भुद्धिकरः । रतिकान्तइव विद्वत्प्रसादगो  
ऽसदलक्ष्यःकान्तश्वरतिकान्तो द्वितीयाया सुदपादिधा-  
ताम्, तयोरादिमो नगवागेति एगोगादेतिनामकं सं-  
वमयमनङ्गख्यमङ्गख्याधदतिकान्तवैदुष्यपमितोपितेन  
महीभृतोपहारीकृतमुपार्जिजर, यतां बुसौतनगवारे-  
ति बुसौतगदेति मूलग्रामो प्राचीनसम्प्रदायानुरोधेन  
तावविन्दताम् । तत्रतिकान्ततः कीर्तिप्रकरकः  
कीर्तिकरः ततश्वदनाभिधानः पग्मपावनः प्रादुग-  
र्दातु । वृद्धिकर्मनु समस्तप्रगस्तक्रियावपास्तनिर्दीर्घ-  
द्वयादीनसम्बिदी द्वलधाकेशवाविव गांकुलगांगकार-  
कृगदक्षदातिनो द्वलधाकेशवावर्जीजनर, तत्रएलवा-  
शादपादागङ्गपगपितर्याहनं पुगननंतरमिवगतं सं-

शवश्चाद्यपत्न्यामरुन्धतीशीलंसन्दधत्यां गोविन्द-  
नामानं मां गोनू-श्रीहर्षीन् कनिष्ठभार्यां कविगण  
रुचिकरं रुचिकरं महायिक मध्युद्पीपदत् । (१]

कुरुरधरो मुनिशरथ धीरः पण्डितः कुरुकृष्ण च । वाट्वो वृद्धणः  
वाट्वानलक्ष, कुलं समूदः स्थानं च, भासोदोर्पोदिदिश । पद्मर्पणि  
यागादीनि, तदुक्तम् “इद्यद्ययनदानानि याजनाध्यापनेतथा, प्रति-  
प्रथत्यैर्युक्तः पद्मर्पा विप्रचयने” इति । नयोन्पापः सत्र पञ्चैररुपर्णि-  
णिसन्ति अतएव सदधिकः । महाद्वरपञ्चकञ्च “पाठोदोपश्चातिथीनां  
सप्तर्यात्पर्णंवलिः, एतेषञ्चमहायज्ञा व्रजयज्ञादिनामकाः” इति ।  
विकाशकृइति एतेन धरणीनलपावनत्येनचरविकृतोहृष्यमिधामूलया  
व्यञ्जनयाध्यन्यते । कतकः सलिलप्रसादकरो द्रव्यविशेषः, तेनान्वर्थना-  
मत्वं सुचितम् । विवुधः पण्डितोदेवथ, असदलक्ष्यः असतामलक्ष्यः  
असन् अविद्यमानोलक्ष्योपस्थ स च । उदपादिपातामुत्पादितौ । सं  
वसयं ग्रामम् । सद्गुणावान् पण्डितः, अत्र विरोधालङ्कारोव्यञ्जयः ।  
निर्वात्रो निन्दा । गोकुकं गवांकुलं व्रजपुरं शास्त्रं च, अकूरः मथुरावासी  
कूरभिन्नश्च । शाणपापाणः निरुपः । रुचिकरं स्पृहाकरं कविगणस्पृह-  
णीयपाणिडत्यशालिनमितियावत् । उद्पीपदत् उत्तगादयामस ।

तेषु श्रीहर्षः सामूज्यमिव लावण्यस्य, सरूपमि-  
वरमणीयतायाः, सम्मोहृष्ववामभुवाम्, आनायइव

१ “सोनोदेख्याः प्रथमतत्यः फेशवस्यापमज्ञामा, शोगोवि-दोषायक्षरक्षये भ्रेपान वनीयाद् ।  
भीमसारायणपरणयोः सप्तप्रगापापवित्तं नत्यासारस्तत्परिप्रहः वाभ्यतद्यं व्यनक्ति” इति  
तोविन्दठक्कर प्रणीतस्य काष्यप्रदीपस्याप सोऽन् ।

मनश्शकुलिनाम्, प्रदीपपावकहव यौवतविवेकहवि-  
 षाम्, प्रत्याख्यानमाश्विनेययुगलस्य, प्रत्यादेशः कुसु-  
 मकासुकस्य, प्रत्याहारोरुचिरजातस्य, निग्रहस्थान-  
 ममृतदीधितेः, परस्परप्रतिस्पर्धिशोभैरवयवैरुद्धासितो  
 ल्पीयसावयसापूर्वभवानन्तभवाभ्यस्तसमस्तशास्त्रतया  
 ऽधिजगौ समुदितामेव विद्युद्विद्योतमानानवद्यहृद्य-  
 विद्याम् । आससादच स्तोकेनैवकालेन कमनीयं  
 विपुलापुलाकां प्रतिष्ठाम्, अनाकलितकैतवेन नारा-  
 यणे प्रणयेन पौरस्त्यान्यप्यधश्चकार वृन्दानि भक्ति-  
 भाजाम्, हन्त हन्त सचासौपश्यत्येव दग्धदृशाभि  
 दुरजरठदीर्घयाप्यजीवने मयिज्यायसि सोदरे भ्रातरि  
 विहाय मेदिनीतलं सुरधामललाभतामभिजगाम(१),  
 तदिति विनैवस्तनयित्नुं कुलिशपातः कोऽपि, ततो  
 विदितप्रवृत्तिराशापि मलिनाम्वरतां पर्यधात, पश्चि-  
 माचलकाननमगात्तापनोऽपि, अभिव्यापच्च मोहसन्त  
 मसं जन्मिनां मनांसि, अदत्तमवायः सुमनसाम्,  
 प्रावृषीव समाप्लयतवसुमतीनयनसलिलासारैः, मुख  
 रतामयततारतारैर्हाहाकारैरन्तरालंनभसः, असकृत

१ ख्येष्टे सर्वगुणैः इनीयसिरयोपयेण पात्रेभिया, गात्रेण स्मरगर्थं लर्णकरे, निषाप्रतिष्ठाम्बै !  
 शीर्हेष निदिवं गते मयिमनोहीनेच, कदशोधये दग्धाशुद्ध महो महत्तु विभिनाभारोऽप्यमारोपितः”  
 इति शाप्यप्रदीपान्ते शोऽः ॥

ॐ श्रीलक्ष्मीभरी चरितम् ॐ (११७)

पृथिव्या अप्रथतवेपथुः(२), वाष्पपयः प्रवाहपतनभी-  
त्येव निद्रापि लोचनकं नाग्रहीत्, रमरणीयतामया  
दालयं श्रेयसः, अशिश्रियत् शास्त्रीयविचारसरसत-  
कथाशेषताम्, अविन्दतजलाऽजलिंसमज्यासुवा-  
रिमराजतावराकी, तथ्यमेतत् सर्वसहावसुन्धरेति यत्  
तदा नैवव्यदीर्यतसहस्रया शतधावा । नचातः पर-  
मदसीयवान्धवदशा शक्यते कथयितुम्, उद्बुद्धश्च  
कश्चिद्दिक्कारोमीलयतिचेतन्यम् ।

आनायो वागुरा, शुकुलीपत्स्यः । यौवतं युवतिसमूहः । समुदिता  
मकला समेधिता च । पूर्वमवः पुरातनः, भवोजन्म (१) । अपुलाका  
निस्तृपा निर्मलेतियावत् । दग्धदशेति खेदोक्तिः, भिदुरः कुलिशः, जरठः  
कठोरः, याप्यो निन्दनीयः, स्तनयित्तुर्मेघः, आशादिषातद्वास्तव्यष्ठ,  
मलिनाम्भरता पलिनाकाशता मलिनवसनताच । ताप्नोऽपि किमृत-  
साधुः । मुपनसां पुष्टाणां सच्चेतसां च । समाप्लूप्त पुण्ड ।  
अयत गतः । अप्रथत विस्तीर्णः । कषित अनिर्वचनीयः ।

आवृणोतीन्द्रियमिहिरं महामोहेमिहिका, लुप्यते  
स्मृतिः, विलीयतेधृतिः, अपैति विवेकशक्तिः,  
अपह्रियतेहष्टिः, कारुण्यपयोनिधौ पुनर्निमम  
मात्मानसपि नाधुनाजानामि प्रागेवापरम्, इत्यभि

२ अद्वृदप्रथतपेपथुः पृथिव्या इत्येवा पाठ.

धाय क्षणंतृष्णीमास्त, ततोविवेकेन स्मरणाहितवि-  
कारं व्युदस्य वदितुमारेभे, अतिदुस्थ्यजो वान्धविदि-  
योगाहितः शोकसर्वप्रमायी, यश्चाशमनवदनदर्शनो  
निश्यः, सलिलानिवर्तनीय आश्रयाशः, मन्त्रादिप्र-  
योगानपहार्यः पिशाचः सम्प्रहाराजनितंशरविसर-  
शयनम्, प्रोद्धामदारुदहनादधिक्तरं दहतिशोकात्मा  
कृष्णवत्माकिमत्रविधेलिमम् केवलंविवेकितैव समाश-  
यणीया, पश्यतु भवान् आत्मसात्करोति सकल  
मेव जगति भगवती प्रेतभर्तुरगङ्गा, शब्दायतेऽ-  
न्दुभिरनारं महाप्रयाणपिशुनः प्राणिपटलोनाम्, स-  
र्वसत्त्वसंहारकोदण्ड ससन्ततं परिध्रमति, किस  
लयकोणान्तदरलभपाथःपृष्ठदिव, सौदामिनाविलसि  
तमिव, तसायमपात्राहितहविरिव, नैदाघवलाहकच्छा  
यावस्थानमिव, प्रकुपितपृदाकुभोगप्रणडलमिव, स्वाम-  
शातमिव, जीवनं पारिष्टुरं प्राणभृताम्, शरीर-  
णिच विसिनीसूत्राणीव, घनकालक्ष्मोलिनीपुलिना  
नीवच्छिदुगणि, नचजन्तुनां वपुस्सहस्रेणापि सौहित्य  
मुपयात्यौदरानलो मृत्योः, अतिशीघ्रवाहिनी किलन  
श्वरता सरित, विद्यतेचजीवशुको निर्गमनमार्गवहूल  
एव शरीर पित्रजरे, सोनस्वती प्रवाह पतित दारु-  
दयसमिलनमिव संगतं जनानाम्, अनति क्रमणीय

ॐ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ॐ (११९)

स्माप्यिक स्वभावः, अनुक्षणपरिणामिनः क्षणाः,  
क्लेशमयं सर्वम्, अमारः संसारः, तदहं स्वदेशात्  
श्रीजगदीशवदनदर्शनेनानेकजन्मसञ्चितवाच्यकर्म  
वीजोद्भूतक्लुप्तताप्रतानेराहृता मात्मभूमिं प्रसाधयितुं  
राजमरहव सचित्रोत्पलं, रमणीकरकुरेशय मिव

दन्दिय मिहिमिति, प्रकाशकत्वादन्दियरय मिहरत्वम्, विदिका  
मेषः । एवुद्स्य निगृह्यत्य । निरयोनरकः आधयाश लाश्चयनाश-  
नेषः । सम्प्राप्तो युद्धम् । वृष्णवत्तर्वा ददनः । न्यगतादृष्ट्यं रूपक-  
लङ्घारः । दुन्दुभिरित्यबदण्डइत्यप्रच नेतपर्तु गित्प्रुष्ठयम् । आपदा-  
र देवी पृथग्ने बलिप्रशानावपरे पशोः महाप्राणयुवको दुन्दुभिरहात्य-  
। पृथकुः सर्पः । रवाप्रशानं स्वप्न उखम् । शरिष्ठुर्व दद्धिलार् । गौति-  
पं वृसिम् । परिणामिनः धर्मक्षणायस्य त्यतापरिणामदम्भः, क्षणाः  
वाशात्यभिन्नाः । वाच्यं निश्चय् । सचिशात्यलं दिष्टोत्पलाभिगाम-  
नया विशेषज्ञोत्पलेनप्रतिष्ठ । उद्देश्यं प्रशम

पट १० पशोभिन्नम्, अनिर्वचनीयरजनभिद वाज्ञिभा-  
सितम्, क्षितिपतिमिद निषि-स्तिपितिनस्, तदोत्त  
भिद क्षपिकुलपागलितनलिलैः, दितीयादिपिभिद दि-  
मलनन्द्र भागादलोमनैः, सरुरस्त्र इत्यहन्तित-  
म्भणीः, नजामिदेशसुत्तन्नादुरभिति । भर्तु इति  
शुत्य ऊषीतपेहाः सोऽयं गोदित्व इति इत्यमात्रां  
नादधारयह, अविगदेष्यादित्याभास्य ॥ १०८ ॥ द्विंश्च-

वक्तव्योगमिद्दाते द्वाष्टाण एवं इति विवाहात्मक  
नायापुराविरामिता विविदा पाठ्यादेवान्वयादेव  
न उदाने गार्वान्वदान्वदान्वदान्वदान्वदान्वदान्वदान्वदान्व  
भूत, भवान् तन्निशमान्वेऽपान्वदान्वदान्वदान्वदान्वदान्व  
दितशरीरः रत्नकशो दधिवान् हमममन्वं तप्वन्वया  
न्वेत्र वाप्त वाजपानउल्लृ विनेः, निनेवमन्वदता  
वि सूटो मग्नोऽथगम, अतनुवित्त एवानुवायिभिः  
पश्चादभिद्वन्वेभदनिवहन, अन्ताण्याऽर्ववर्तिन एव  
द्वचरीकृत उत्कलिकाकलपेत् पुरोगमिविवुस्तोऽनु  
गतः पौरस्त्यं प्रमितस्यमनमः, भक्तिभाभाव विमु  
तोऽपि इतिति तत्प्रदशमायात् । ततो दर्शनादेव ध-  
न्यतममात्मानं मन्यमानः अपास्य शाश्वतिकमपि स  
पत्नभावं विधाय चानेक विग्रहं शुभ्रांशुनाऽपिनखमि-  
पेण निषेव्यमाणे, गोविन्द पादभवसायनख कान्ति-  
कैतवान्मन्दाकिनी स्नोतसंवसेव्यमाने, तदीयचरण-  
म्बुजे रसालीनशिरसा सप्रणयं प्रणम्य पश्चादागतस्य  
तन्नागरिकस्य हस्तादादायनृपसमुचितादप्यधिकैरु  
पचारैः कृतार्चनो बद्धाऽजलिरवोचत् ।

कटक एतदविधानं महानगरं वलयश्च । अनिर्वचनीयरजतम् प्रति  
भासिकं तुलाविद्यापरिणामभूतं रजतम्, साक्षिभासितं साक्षिणचैतन्येन  
साक्षिगोपालेन च भासितं दीपितं इष्टितं च । निषिर्वारिषिः, शेवषिश्च ।

ॐ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ॐ (१२१)

ऋषिकुल्या तमामधेयानदी मुनेः न लवहनपणाकिकाच । विमलेति, विमलं  
विगतं मलं पापयस्मादिति, स्फोतञ्च, चन्द्रभागानदी चन्द्रभागः इन्दुक  
लाच । इन्द्रयुम्नो महाराजः, इन्द्रस्यशतकतोः युम्नं धनं च, तस्य विजृ-  
म्णैः चेष्टिते विज्ञासैश्च । सोऽप्यमिति, राजतनयामयनिवर्तकोगण क-  
निदेशित इत्यर्थः । सम्बादेनेति, इदमपरं मातिभाभिधानं प्रमाणम् ।  
नायायेति, राज्ञः पृथक्वीपतित्वादितिभावः । अङ्गसाशीघ्रम् । सम्पत्तो  
धारा धानं पानम् । कुम्भसम्भवो महामुनिरगस्त्यः । भद्रं कल्याणं तस्य  
पश्चाद्वित्वात् । अपास्येति, कम्लेनसाकं सार्वदिकएवविरोधश्चन्द्रस्य  
तमपिशुश्रूपालिप्सयाविहायेत्यर्थः, तेनगोविन्दे माहात्म्यातिशयोध्वन्यते,  
एवमग्रेऽपि । विग्रहं शरीरम् । अद्भुतुष्ठनखयो द्वित्वादितिभावः । मन्दाकि-  
नीति, अस्यागोविन्दपादप्रभवत्वं पुराणादौ प्रसिद्ध मिति । रसेति, एतेन  
साप्राह्नत्वं प्रणतौ सुचितम् ॥

महाभाग ? भगवतोदर्शनं समाभाद्य सद्यः परिहृताव  
द्यक्स्यमे प्रत्यपद्यत कृतार्थतां न यन्नद्यम्, भवत्पाद  
पायोजपरागस्पर्शलेशतोऽपि परमपवित्रतां प्रयातापु-  
रीयमधात्प्रधानतां न गरीषु गरीयसीषु, परमुपनकार  
चैपा पितृप्रसुः, धन्यधन्यमिदमुपवनं यदनुगृहीतमा-  
सनेन, तमोवहुलेष्यशेषजननिलब्धैतदेशभागधेय सु-  
धादीषितिमण्डलोदयादत्रागतानत्रभवतः किमिव  
कथमिव च समाचरेयमिति तरलतां मन समारप्तने  
प्रयाति, अभवदीयं वा नैवकिञ्चिदस्मदीयं वस्तु,

यत्तु तदुपयोगिभावं लभेत्, नन्दवचसाऽपि नदिवा-  
ने प्रभवामि, तथा हि अतीव वृद्धतीपञ्चतिर्भवद्वलम्-  
नानां गुणानाम्, इयतीत्तु मे मतिपरिमितिः, किञ्च  
श्रित विदेशैः कोविदेशैरपि धिक्कृतमाध्वीक्षुरसाभि-  
र्भवभरितभारतीभिरनुभूयभूयस्सम्भूयनूयमानात् तत्र  
भवतः स्तुवन् महार्घमणिमौक्तिक प्रवालहीरकाणाम्  
पायनस्यास्पदे काचवराटकोभवेय मितिमन्दाक्षसुपै-  
ति मेहदयमिति । ततएव मधिनन्दितोऽयं तोयनिधि-  
रिवासन्नरत्ननिधिस्तेजोविशेषानुभूत तदीयभूपभावः  
सप्रश्रयादर

‘अवधकं पापम् । पितृप्रसूः, सार्यमन्धा तमोवहुले, तमसाशोकं  
नान्धकारेण च वहुले, एतेन दुःप्रवेशत्वं व्यञ्जयते । ‘जननि, र्जन्म, मण्डलं,  
चक्रवालं, समूहश्च, समुदयादिति, एतेन तपसिनाशिते आगमनमुपत्रमि-  
त्याशयः । ‘अत्रभवतः, पूज्यान, प्रयातीति, अकस्मात् मठत्तमानां स  
मागमेचेतमइच्चाङ्गल्यं भवतीतिवस्तुगतिः’ तदुपयोगीति, आराधनो ।  
योगीत्यर्थः, नहितदीयेनैव वस्तुनातदादरोयुक्त इति भावः । ‘तत्, आग-  
धनग् । ‘कोविदः पण्डितः । आसन्नेति, आसन्नः प्राप्तः समीपस्थितश्च  
रत्नानां निधिपदमादिर्येत्यस्येतिवार्यः ।

दर्शनदत्तविस्मयापन्नलानसो विनयमपि विनीतता-  
वेदयन्तं, भक्तिमपि भक्तिमत्तां शिक्षयन्तम्, ऋच्छता-

मेषि मृदुतामादिशन्तं, वाग्मिंवरानप्यतितरां त्रपांतो  
यधौनिमज्जयन्तं, वरासने सहसैव संसुपवेश्येवसुम-  
तीपतिं प्रदायकरकिसलययुगेनसफलामाशिषां राशि  
उरुरिवसुरनायकं, दैपायन इवं धेमत्मिंजं, मैत्रा-  
वरुणिरिव रामचन्द्रं, प्रणयेन घनसारंक्षोदैरिव,  
पुञ्जितविसञ्चल्लैरिव, पारदनिकरैरिव, नीहारविसरे-  
रिव, शारदेन्दु किरणैरिव, दशनमरीचिभिर्धवलंयन्  
नभोवलय मभापत, भूमीपते । किंनाचरित मायुषम  
ता ग्रेमप्रद्वीभावयोस्स्वरूपमादर्शयता, नन्वियं  
परमासीमा सत्कृतेस्मम्बिधानस्य, श्रद्धयानिष्टगादि  
तस्तनुरप्यादरोपचारः प्रीतेरतिशयं जनयतेनाम, कि-  
मुत ईदृशः, परन्तु जगन्नाथ विलोकनसमीहेयो  
गच्छतोमे माभवतुभङ्गोविधे रितिकस्मैचित द्विजन्म  
ने दुर्विधाय देय मेत दुप्रहृतं सदयेनमहोदयेनेति ।  
अथाय सुरथाय प्राञ्जलोवद्धाञ्जलिना व्यजिङ्गप-  
त् नाथ ?

‘सहसैव, ईदैव, एतेनराज्ञिविनयातिशयोद्योत्यते, ‘सफरां, फ-  
लेन पादपानुवन्विना भविष्यदिष्टनव सहिताम्, “रिक्तदस्तोन पर्येत्  
राजानं भिषजं गुरुषु :” इतिस्मरणात् । ‘मैत्रावरुणः, दसिष्ठः । ‘घन-

यत्तु तदुपयोगिभावं लभेत्, नचवचमाऽपि तद्रिष्णु  
ने प्रभवामि, तथा हि अतीव वृद्धतीपञ्चतिर्भवद्वलम्  
नानां गुणानाम्, इयतीतुमे मतिपरिमितिः, किञ्च  
श्रित विदेशैः कोविदेशैरपि विकृतमाध्वीक्षुरसाभि  
भर्वभरितभारतीभिरनुभृयभृयसस्मभृयनूयमानादत्त्र  
भवतः स्तुवन् महार्घमणिमौक्तिक प्रवालहीरकाणाम्  
पायनस्यासपदे काचवराटकोभवेय मितिमन्दाक्षमुण्डे  
ति मेहृदयमिति । ततएवमभिनन्दितोऽयं तोयनिधि  
रिवासन्नरत्ननिधिम्तेजोविशेषानुभूत तदीयभृपभावः  
सप्रश्रयादर

‘अवधकं पापम् । पितृप्रसूः, सायंसन्ध्या तमोवहुले, तमसां  
नान्धकारेण च वहुले, एतेन हुःप्रवेशत्वं व्यज्यते । ‘जननि, जन्म, मण्ड  
चक्रवालं, समूहश्च, समुदयादिति, एतेन तपसिनाशिते आगमनमुपान्ना  
त्पाशयः । ‘अत्रभवतः, पूज्यान, प्रयातीति, अकस्मात् मठत्तमानां  
मागमेचेतपश्चाङ्गत्य भवतीतिवस्तुगतिः’ तदुपयोगीति, आराधने  
योगीत्पर्यः, नहितदीयेनैव वस्तुनातदादरोयुक्त इति भावः । ‘तत्, आ  
धनम् । ‘कोविदः पण्डितः । आसन्नेति, आसन्नः प्राप्तः समीपस्थितश्च  
रत्नानां निधिपदमादिर्येत्यस्येतिवार्यः ।

दर्शनदत्तविसमयापन्नलानसो विनयमपि विनीततां  
वेदयन्तं, भक्तिमपि भक्तिमत्तां शिक्षयत्तम्, कृच्छ्रता

मपि मृदुतामादिशन्तं, वाग्मिवरानप्यतिरं त्रपांतो  
 यधौनिमज्जयन्तं, वरासने सहस्रैव समुपवेश्यवसुम-  
 तीपति प्रदायकरकिसलययुगेनमफलामाशिषां राशिं  
 युरुस्विसुरनायकं, द्वैपायन इव धर्मात्मजं, मैत्रा-  
 वरुणिरिव रामचन्द्रं, प्रणयेन घनसारक्षोदैरिव,  
 पुञ्जितविमच्छदैरिव, पारदनिकरैरिव, नीहारविसरै-  
 रिव, शारदेन्दु किरणैरिव, दशनमरीचिमिर्धवलयन्  
 नभोवलय ममापत, भूमीपते । किनाचरित मायुषम-  
 ता प्रेमप्रह्लीभावयोस्स्वरूपमादर्शयता, नन्वियं  
 परमासीमा सत्कृतेस्मभिधानस्य, श्रद्धयानिष्ठादि-  
 तस्तनुरप्यादरोपचारः प्रीतेरतिशयं जनयतेनाम, कि-  
 मुत ईदृशः, परन्तु जगन्नाथ विलोकनसमीहयां  
 गच्छतोमे माभवतुभङ्गोविधे रितिकस्मैचित द्विजन्म  
 ने दुर्विधाय देय मेत दुपहृतं सदयेनमहोदयेनेति ।  
 अयाय सुख्याय प्राञ्जलोवद्धाञ्जलिना व्यजिङ्गप-  
 त नाथ ?

• सहस्रैव, हठादेव, एतेनराज्ञिविनयातिशयोद्योत्यते, ‘सफलां, फ-  
 लेन पादपानुबन्धिना भविष्यदिष्टेनच सहिताम्, “रिक्तहस्तोन पश्येत्तु  
 राजानं भिषजं गुरुम्”’ इतिस्मरणात् । ‘मैत्रावरुणिः, वसिष्ठः । ‘घन-

यत्तु तदुपयोगिभावं लभेत्, नचवचसाऽपि तद्विवाने प्रभवामि, तथाहि अतीव वृहतीपद्धतिर्भवद्वलम् नानां युणानाम्, इयतीतुमे मतिपरिमितिः, किञ्च श्रित विदेशैः कोविदेशैरपि धिक्कृतमाध्वीकसुरसामि भावभरितमारतीभिरनुभूयभूयस्सम्भूयनूयमानात् तत्र भवतः स्तुवन् महार्घमणिमौक्तिक प्रवालहीरकाणामु पायनस्यास्पदै काचवराटकोभवेय मितिमन्दाक्षमुपैति मेहृदयमिति । ततएवमभिनन्दितोऽयं तोयनिधिरिवासन्नरत्ननिधिस्तेजोविशेषानुभूत तदीयभूपभावः सप्रश्रयादर

‘अवधकं पापम् । पितृप्रसूः, सायंमन्धया तमोवहुले, तमसाशोऽनान्धकारेण च वहुले, एतेन दुःप्रवेशत्वं व्यञ्जयते । ‘जननि, जन्म, मण्डलं, चक्रवालं, समूहश्च, समुदयादिति, एतेन तपसिनाशिते आगमनमुपग्रहमित्याशयः । ‘अत्रभवतः, पूज्यान्, प्रयातीति, अकस्मात् पठ्यमानां ग्रामामेचेतपश्चाच्छ्वल्यं भवतीतिवस्तुगतिः । तदुपयोगीति, आराधनोऽयोगीत्यर्थः, नहितरीयेनैव वस्तुनातदादरोयुक्त इति भावः । ‘तत्, आग् धनम् । ‘कोविदः पण्डितः । आसन्नेति, आसन्नः प्राप्तः समीपस्थितम्, रनानां निधिपदमादिर्येनयस्येनिवार्यः ।

दर्शनदत्तविसमयापन्नस्तानसो विनयमपि विनीतां वेद्यन्तं, भक्तिमपि भक्तिमत्तां शिक्षयन्तम्, कद्गुरा

मपि मृदुतामादिशन्तं, वाग्मवरानप्यतितरां त्रपांतो  
यधौनिमज्जयन्तं, वरामने सहस्रेव समुपवेश्यवसुम-  
तीपति प्रदायकस्किसलययुगेनमफलामाशिषां राशिं  
युरुरिवसुरनायकं, दैपायन इव धर्मात्मजं, मैत्रा-  
वरुणिरिव रामचन्द्रं, प्रणयेन घनसारक्षोदैरिव,  
पुञ्जितविसच्छदैरिव, पारदनिकरैरिव, नीहारविसरै-  
रिव, शरदेन्दु किरणेरिव, दशनमरीचिभिर्धवलयन्  
नभोवलय मभापत, भूमीपते । किंनाचरित मायुषम  
ता ग्रेमप्रद्वीभावयोस्वरूपमादर्शयता, नन्वियं  
परमासीमा सत्कृतेस्मम्बिधानस्य, श्रद्धयानिष्टांदि  
तस्तनुरप्यादरोपचारः प्रीतेरतिशयं जनयतेनाम, कि-  
मुत ईदृशः, परन्तु जगन्नाथ विलोकनसमीहयां  
गच्छतोमे माभवतुभङ्गोविधे रितिकस्मैचित द्विजन्म  
ने दुर्विधाय देय मेत दुपहृतं सदयेनमहोदयेनेति ।  
अथाय मुख्याय प्राञ्जलोवद्धाञ्जलिना व्यजिङ्गप-  
त् नाथ ?

‘सर्वसैव, एठादेव, एतेनराज्ञिविनयातिशयोद्योत्पत्ते, ‘सर्वां, फ-  
लेन पादपातुवन्विना भविष्यदिष्टवच सहिताम्, “रिक्तहस्तोन पश्येत्तु  
राजानं भिषजं गुरुम्” इतिस्मरणात्। ‘मैत्रावरुणः, वसिष्ठः। ‘घन-

सारक्षोदः, कर्पूरचूर्णम्, 'पारदो, धातुविशेषः । 'नीहारः, तुर्दिनम् ।  
भङ्गइति, तीर्थगमने हि मार्गेष्यातिश्यग्रहणं निषिद्धम् । प्राञ्जलोमृदुः ।

किं नविधत्ते सदागमोऽभिलषितम्, पर्सं कोटिमानय-  
त्यानन्दनिस्यन्दोहृदयस्य, दयानिधे ? विधेहृतकस्य-  
प्रतिहृतप्रवृत्तितया कालपाशप्रतीकाशेनामयेन द्वितय  
समातस्समास्कन्दिते, अनीकिनीनायक इव संवि-  
त्योग कुशले, माधवइव शुचिरुचिचञ्चिते, आलेख्य  
इव कृष्णविशदभक्तिभाजने, मधुमासद्वृम इव कुसुम  
सुकुमारकाये, मकरवगाकृष्यमाणमातड़ंग इव गोविन्द  
मात्रशरणे, दुस्सहस्रसकरकरनिकर चिर संस्पर्श-  
सुकुलायमान शिरीषप्रसुख पेशलमृदुप्रसून इव, वि-  
षुन्तुदोदग्रदरानावदलितेन्दुमण्डल इव, तुलतापनो  
पक्रमकालिक प्रालेयगलदुतपलप्रकर इव, प्राभातिक  
प्रदीप इव क्षामक्षामदशामुपेयुपि, स्थूलेश्वयथुभिस्स  
वर्द्धनसद्वैः प्रवर्धिते, सन्ततविकाशिकाशश्वासैः स-  
मृते ज्वलनजाज्वल्यमानज्वरः, विरहिते वर्लैः, आ-  
म्पदेमन्दभागधेयानाम्, प्रियपदे विपदाम्, परिशी-  
लितनये मदायतनये मकम्पाभिः प्रतिकृतिपरम्पराभि-  
भावि भृभुजामिव प्रोद्धउभट वारभयानाम्, चक्षि-



चरणस्यामृतं जलमेव सुधातत् । सुवनं लोकः । पञ्चने भद्रस्ते  
स्थिरानाथः क्षितिपतिः । उद्पत्तिभिः स्वस्मिन्नामयस्यानाशक्त्वोपरादि  
काभिर्युक्तिभिः । सुहृदृद्धः सुहृदादपिहृदः । एतमेतम् आगतमिमम् ।  
अभिनिवेशात् आग्रहात् । द्विरदपोगजराजः, यादवानां वनं प्रमूहस्ते  
वनं काननं तस्यामोदी । सूत्राम्णः इन्द्रात् । भावकः प्रापकः ॥

प्रभो ! अपनयनयनिपुणनृपतनयस्योपतापमविल-  
त्वम्वितम्, प्रमाणयगणकवराकभाषितम्, पालय  
किङ्गर प्रतिष्ठाम्, इत्येवमभिस्तुत्यप्रार्थमानोनारायण  
चरणकरुणयामाभिमानो भूमीपते ! एपवजामिभव-  
त्सूनुविपदपनोदनायेत्युदाहरत् । राजातुतदाकर्ण्ण  
सुप्रीततमान्तः ससम्भ्रमं परिजनाय महारजत रजन  
वन्नवैदूर्यादि विनिर्मितं, किर्मीरमयान्तिकविधायिदी-  
धिति, वा नवावासमिव हुमनोमनोहरं, मखमण्डपमिव  
किसलयवलयलसितं, हरिचकमिव विच्छिन्नतमस्तुद-  
र्शनम्, भागवतमिव कुवलयापीडान्वितं, मायिनमि-  
वानेकमृपधारणम्, अपार्थिवमपिचकवर्तिनं, गोवि-  
न्दमविश्वापयितु मानिनीषिनमपिदारुकविरहितं, पुण्य  
रथसुपस्यापयेत्यादिक्षत् । ततो गोविन्दः ननाथ ।  
नादेवाहनमविग्रहयामि किमपीतिरुतं तदानयने-

❀ श्रीलक्ष्मीश्री चरितम् ❀ (१२९)

नेतितप्रत्यरौत्सीत् । तथापि महीपति महतासंरम्भेण  
तमनुब्रजन् अमन्दमाहतसुरजव्रजं, ज्ञटितज्ञणज्ञणाय  
मानज्ञल्लीरकं, भूयोऽभिभूयमानभेरीभाङ्गारनिर्भर-  
भरितसुवनं, वाद्यमानदक्षापटहपटलाद्यवाद्यं, धिक्ता  
परोद्धुरध्वनिकम्बुनिकुरम्बध्वानं, मदकलकोकिल  
काकलीकोमलालापिजेगीयमानवारसुन्दरीदीयमान

साभिमानः अहमवश्यं हस्तिकृपातोराजततुजरुजमपनेष्यामीत्यभिमान  
वान् । महारजतं कनकम् । वासवीवासः स्वर्गः, सुपनः पुष्पम्, सुपनाश्र  
देवः । तमस्तिमिरं राहुश्च, सुदर्शनं शोभनदर्शनं, सुदर्शनाभिघानं च । कुव-  
चणपीडः कुवचयमाका, तन्नामधेयोगजश्च । रूपं वर्णः स्वरूपं च । चक्र-  
वर्तिनं सार्वभौमं चक्रेणवर्तिनं च । दारुकः गोविन्दसाधिः काष्ठुं च ।  
पुष्परथं विहरणोपयोगिस्यन्दनम् । अधिरोक्ष्यामीति, तीर्थयात्राविधि-  
भङ्गभीत्येतिमात्रः, ज्ञल्लीरकः ज्ञैश्चइतिभाष्याप्रयितोद्यविशेषः । अभि  
भूयमानाताङ्गमाना । कम्बुनिकुरम्बं शङ्खं समृद्धः ।

तालतरलमणिकङ्गणं, धीरविध्यमानचमरीचामरसद-  
सं हर्षोत्कर्षं प्रसूतप्रसूनलाजानूनवर्षणं, पार्श्वदयो  
दश्चितप्रासादस्थितकामिनी क्रियमाणनीराजनं, शत-  
दलतयेन्द्रैकं निलयेस्वमन्दिरेसमानयत् । उप  
वेश्योच्छ्रुतं विधुधवलमहाधनासने महीपतिर्महिष्या-  
समं समप्लुपुजत् । प्राणमञ्च सुतेनापि तापितेन तेन

चरणस्यामृतं जलमेव सुधातत् । सुवनं लोकः । मञ्जने भङ्गरणे  
 स्थिरानाथः क्षितिपतिः । उपपत्तिभिः स्वस्मिन्नामयस्यानाशक्त्वोपपादि  
 काभिर्युक्तिभिः । सुदृढदृढः सुदृढादपिदृढः । एतमेतम् आगतमिमम् ।  
 अभिनिवेशात् आग्रहात् । हिरदपोगजराजः, यादवानां वनं पमूहस्तदेव  
 वनं काननं तस्यामोदी । सूत्रामणः इन्द्रात् । भावकः प्रापकः ॥

प्रभो ! अपनयनयनिपुणनृपतनयस्योपतापमविल-  
 लिविमितम्, प्रमाणयगणकवराकभाषितम्, पालय  
 किङ्कर प्रतिष्ठाम्, इत्येवमभिस्तुत्यप्रार्थमानोनारायण  
 चरणकरुणयामाभिमानो भूमीपते ! एष ब्रजामिभव-  
 त्सूनुविपदपनोदनायेत्युदाहरत् । राजानुतदाकर्ण्य  
 सुप्रीततमान्तः स सम्भ्रमं परिजनाय महारजत रजत  
 वज्रवैदूर्यादि विनिर्मितं, किर्षीमयान्तिकविधायिदी-  
 धिति, वा नवावासमिव शुमनोमनोहरं, मखमण्डपमिव  
 किसलयवलयलसितं, हरिचक्रमिव विच्छिन्नतमसुद-  
 र्शनम्, भागवतमिव कुवलयापीडान्तितं, मायिनमि-  
 वानेकरूपधारिणम्, अपार्थिवमपिचक्रवर्तिनं, गोवि-  
 न्दमविश्वापयितु मानिनीषितमपिदारुकविरहितं, पुण्य  
 रथमुपस्यापयेत्यादिक्षर् । ततो गोविन्दः न गनाथ ।  
 नाहं वाहनमधिगोद्यामि क्रिमपीतिकृतं तदानयन-

नेतितप्रत्यरौत्सीत् । तथापि महीपति र्महतासंरम्भेण  
तमनुब्रजन् अमन्दमाहतमुरजब्रजं, द्विटिज्ञणज्ञणाय  
मानज्ञल्लीरकं, भूयोऽभिभूयमानभेरीभाङ्गारनिर्भर-  
भरितभुवनं, वाद्यमानदक्षापटहपटलाद्यवाद्यं, धिक्ता  
परोदधुरध्वनिकम्बुनिकुरम्बध्वानं, मदकलकोकिल  
काकलीकोमलालापिजेगीयमानवारसुन्दरीदीयमान

साभिमानः अहमवश्यं हरिकृपातोराजतनुजरुजमपनेष्यामीत्यभिमान  
वान् । महारजतं कनकम् । वासवीवासः स्वर्गः, सुमनः पुष्पम्, सुमनाश  
देवः । तमस्तिमिरं राहुश्च, सुदर्शनं शोभनदर्शनं, सुदर्शनाभिधानं च । कुव-  
च्छयापीढः कुवच्छयमाका, तन्नामधेयोगजश्च । रूपं वर्णः स्वरूपंच । चक्र-  
वर्तिनं सार्वभौमं चक्रेणवर्तिनं च । दारुकः गोविन्दसाधिः काष्ठंच ।  
पुष्परथं विद्वरणोपयोगिस्यन्दनम् । अधिरोध्यामीति, तीर्थयात्राविधि-  
भद्रभीत्येतिगावः, ज्ञानाद्विग्नापयाप्रयितोवाद्यविशेषः । अभि  
भूयमानाताल्यमाना । कम्बुनिकुरम्बं शब्देष्व समृद्धः ।

तालतरलमणिकद्वणं, धीरविध्रुयमानचमरीचामरसद्व-  
सं हर्षोत्कर्षं प्रसूतप्रसूनलाजानूनवर्पणं, पार्श्वद्वयो  
दध्यितप्रासादस्थितकामिनी क्रियमाणनीराजनं, शत-  
दलतयेन्द्रिरैक निलयेस्वमन्दिरेसमानयत् । उप  
वेश्योच्छ्रूत विधुधवलमहाधनासने महीपतिर्महिष्या-  
समं समपूरुजत । प्राणमञ्च सुतेनापि तापितेन तेन

साकमसकृत्तदीयपादपाथोजानि, अधाच्चतदनुव-  
 न्धिर्नीपयस्सुधामादरेण, अनन्तं द्रागेवपश्यतो  
 स्तयोस्सुकुमारेनपकुमारो नीरोगतांगतोमारोपमित  
 कलेवरोऽभ्राजत नितराम्, ततस्यएवते सुषुसिमयी  
 मिवस्तम्भमयीमिवावस्थामचिरमन्वभूवन् । अनुप-  
 मप्रमोदवाष्परयाङ्कलाः कियत्कालकलांलेशतोऽपि  
 किमपिनिवेदयितुं नाशकन्, अथ दयितयासनाथः  
 क्षितिनाथश्चन्द्रमसमिव राहुवक्त्रकुहरनिष्कान्तं, राज  
 श्रीसौन्दर्यमिवप्रत्यागतं, जीवलोकमहनिवहमिव,  
 पुनरावृत्तिसुपयातं परिसुषितसर्वस्वमिव ब्रयासात्पृथ-  
 गादानकर्मीकृतं, तादृशं भृशं हशातनयं विलोक्यन्  
 स्नापितः प्रीतिगिरिनदीनीर्निर्ज्ञैः, भञ्चारितशिश-  
 शिरोच्छ्वसित समीरणैः, अनुलिप्तः प्रसादहिम  
 चन्दनैः, उल्लसितः सितसुमनोनवमालिकाप्रकाशैः,

शतदलतया शतभाग (कवाट) तया कपलतयाच, इन्दिरैकनिकये त-  
 स्याः पद्मेवासादित्याशयः । सुतेनापीत्यपिनादयितापरिगृह्यते । अधा-  
 त, अपिवत् । तयोशङ्गोः । अन्वभूवच्चिति, तेन विस्पयरसोव्यज्यते ।  
 सनाथः सहितः । पद्मउत्तमवः । स्नापित इत्यादि मन्तापेन पर्यहारीत्यत्रहे-  
 तुः । तद्वकाढ्यलिंगपरिणामौ समुच्चयश्चाळङ्काराः । प्रत्येकमपितापनिवारणे  
 पर्याप्तानामनेकेषां तत्रोपादानात् । सितसुमनोनवमालिका स्वच्छशोभन-  
 मनसां नवीनामालिका परम्परा सत्संकल्पसंहितिरितियावत्, सैवशूक्लकृ-

मुमस्यनवा मालिकामाल्यम् ।

आलिंगतस्तत्त्वुजवदनचन्द्रकिरणैः, दूरं पर्यहारि  
सन्तापेन । तत्सर्वएवतंसुचिरमतन्वतस्तुतिभिः ।  
समातङ्गुरुर्गमस्यन्दनमगणितमणिव्याकोशकोशं च  
राज्यमेवतस्मै समार्पिपत्, न च मानसेऽनुप्यदेतेनापि  
लवतोऽपि, अचक्थच्च पूज्यपाद ? नियुज्यता मनव-  
स्कराश्रववर्ति क्रीतमिदं शरीरजातम्, अयमस्मि भव  
दादेशसर्णशिरसावोडुं प्रतीक्षमाण इति । अथ तदशेष  
मेपक्षोणीभुजासमर्पितं तृणायमन्यगानः मानवेन्द्र ?  
कृतं ममेतेन, प्रत्युतवायुरेवैसारिणानां बन्धनायस्या  
त्. तथाहि सार्वजनीनैव लोभनीयता विषयदस्य,  
तरलताच्च चेतसः, आयुष्मन् ? प्रथममपि प्राकृतिरु  
योगनिवन्धनवन्धनमशक्यमेव वाधितुं, किम्पुनर्नृतन-  
म्, अभिवीक्षिता लुलापृष्ठामप्यसृशतीभवति  
भक्तिः, आकलिताच्च दर्शित प्रसवा सुजनतानतान-  
तिः. अधिगताच्च निरदिशयस्य विनयशाखिनो मूल  
भूतागतिः, आसादिताच्च परमाप्रीतिः. तथापि महानु  
भावो विषमेऽस्य नीवृतः प्रदेशे पद्धतिं समशमयाऽनु  
रूप्यनिदेशितं विशालां धर्मशालां निर्मापयतु, चृयेत  
येनजगदीशदर्शनायगच्छनामध्यनीनानां ह्यान्तिरान्ति  
भिरित्तुदाहरत्, राजा ज्ञादमिति सगाद दार्दमदद् ।

न्याकोशः दीपितः मुख्यार्थवाषात् । अनन्तस्कग्रथवः निर्पत्ताङ्गीकारः । सरं माल्यम् । पन्यपानडति, एतेन विस्तिर्यजयते, वागुरा आनायः, वैसारिणोमीनः, प्राकृतिक्योगः प्रधानपुरुषयोर्योगविशेषः, वन्वनं बन्धः, “ननित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तथोगम्तयोगाहते” इति कापिळसूत्रात् । तुलापृष्ठीं मादृश्यकणाम्, अस्पृशतीति निरुपमेतिभावः पद्धतिं समया भार्गवमीपे ।

एवमेव परिणताक्षणायमाना विभावरी, भूपतितनुद्भवशुभोदये प्रतीते चिरात्प्रतिरुद्धमपि प्रावर्तत नीतं विभासगगेणजनानाम्, अयाचन्त भोजनायजननीमर्भकाः, अदीप्यन्तप्रीत्येव मिहिकांशुकानावृतानि हरिदङ्गनानां सुखानि, वासन्तिकवासराइव प्रियनखानेकक्षता किंशुकाभिरामताऽजायतवधूवक्षोजेषु, मित्रोदयावसरेऽपि खल्लोऽग्नाइव म्लानिमासेदिरे कैरवकदम्बकानि, असेव्यत सौधान्तरालवर्तिनीचेतांसि तरलयन्तीहमन्तीस्वापतेयितरुणैः, वदुविधै विंदुधप्रवोधनायताज्य मानवाद्य शब्दै रायतवाचालतांनगरम्. वैदेहकगेहधूपधूमपरिमिलोऽप्रायतनागरिकैः, मानसानीवसमाहितानां तमसानिद्रयानागृह्यन्तलोक लौचनानि, गोविन्दस्तुमनुजपतितनुजरुजमिव क्षीणा मभिवीक्ष्य क्षणादां, राज्ञी मिव प्रसन्नवदनां विचिन्त्य प्राचीं सम्पादितकल्यकृत्यनिकरोमधुमधुस्यागिरास्नेह

❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀ (१३३)

विस्फारितेन नयनेन नृपाय प्रत्यपादयत् । क-  
ल्याणवल्ल्यालय ? अतिक्रामतिमेप्रयाणसमयः त-  
दनुजानाङ्गामिति । एवसुपरतवचमि तरिमन् पद-  
मेतदलङ्घणीयमितिप्रकमप्रतीपम्, हमेजनाभृत्य  
भूताआजीवनाचरणगजीवयुगलमासेवितुं यिया-  
सन्तीति धूर्तरयेव भाषितम्, कृतार्थेभितुमिन्द्रामा-  
ति रवार्थपगयणता प्रकाशनम्,

पणायमानेति, ग्रमोदातिशयेनामापानयामत्वादिति भावः । महि  
रुद्धपर्णोति, रोगाक्तात्तदात्तुपृथाररथेति वाच्यर्थम् । मित्रादयः युव-  
पकाशः उद्दद्वृच्छिष्ठ । एषन्ती अल्पास्थानी आयगणामध्यनिपापाचम-  
र्दत्ती, तरलपर्णी आकर्षणी, तथाचाप्रत्यक्षुर्यती पवटारसामाद्यापाम-  
पासोक्तिः । रवापतेर्याधनी । वैदेवतोरणिक । अर्थं प्राप्ते भूयेन शह वा  
प्राप्तात्तदाचारः । पदनं सुखं गायत्रामहाय । दद्यं प्राप्तः ।

एतेऽपिनेतव्या इत्याह्ना, भवानेयनरमभेदां भारणमित्य  
गिनन्दनम्, परितापोभवन्तमन्तरेण भविष्यते । ह्याश-  
न्नाभन्तम्, भवद्दत्तग इमैत्यात्ममभावना, रिष-  
तिमारपायसंविषेयमितिताटस्यस् । तदेद गांडित-  
यपर्णनास्तोऽस्मि निवेदयित्तमितिशाहाय विहात्वात्तर्णी  
दभूत भूपतिः । त्वोऽस्मादिदमोयददन ददर्षददने  
दुर्ग्रोदपिषेन प्रदन धदल भवेणाहुददन्त्वा ददर्ष-  
परणिषेते । अहुशारद्दरुददन्त्वा रद्ददर्षद ददन्

नियमयतु कार्गिगान, परहर्णीप्रभान, जागरन्ति  
 भगवतपदाग्विन्दम्, प्रसावगत्यन्तर्विभूष्य, दीप-  
 गतु मर्यादा गच्छतागम्य, चन्नगमेन हण्डीयो भवो-  
 दृशानामिति । अथ पार्थिवस्त्रं त्यभिभागस्यन्दना-  
 य प्रतीहारिणं समादिशत् । अनन्तं गोविन्दः न  
 चास्तिमेप्रयोजनं तीर्थयात्रानुपयोगिनास्यन्दनेन,  
 तत्पादाभ्यामेव यानायानुजानातुमाय्, तोहि सङ्कल-  
 जन्मतां नेतुमभिलप्तामि, नदिरुद्रुमिहमाप्नन मभि-  
 निवेशसाम्प्रतमित्यववीत् । ततोऽङ्गिष्ठसेवाविह-  
 भयविहस्तीकृतेनराज्ञा कथमप्यनुज्ञात् प्रस्थानमका-  
 र्षीत् । कृच्छेणच स्वार्पितवाष्पाम्बुपूरपूरितलोचना-  
 च स्वमहातुकामान् महीभृत्प्रभृतीननुगच्छतोन्यवर्त-  
 यत्, अप्रहितैरपितदीयहृदयैस्संगं निरक्षमतनगरात् ।  
 तेचनयनायनमतियान्त माकलयन्तोऽपि गोविन्दं ता-  
 माशामाशाभिर्दरदर्शनस्याभिवीक्षमाणाः कथं कथ-  
 मपि निलयमागत्याधियामिनि नलेभिरेनिद्रां लेश-  
 तोऽपि, अनुचिन्तयदेवतस्यानुभावं विस्मयतेस्म मा-  
 नसमभीषाय्, कृत्स्नाँश्रतस्यकथाभिरेवमनोविनोद-

❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀ (१३५)

यतः पर्युक्तिलयांवभूव विलोक्नं गोचरयन्तीनकुण्ठा  
उत्कण्ठा । राजात्मुयथोक्तां धर्मशालामकल्पयदल्प  
तमेनसमयेन याचगोविन्दसत्रनम्ना समाप्नातासुचिर  
मदधतोपकारदक्षतां दक्षिणाध्वगानामिति ॥

इति मैथिलश्रोत्रिय श्रीवालहृष्णमिथ्रविरचिते  
श्री लक्ष्मीश्वरीचरिते द्वितीय उच्चवासः ॥

आस्थाय विज्ञाय । साम्रतं युक्तम्, मांपतं, सरपति ।  
अभिनिषेदशाग्रहः । विद्वतीकृतः व्याकुर्वाकृतः । अपर्दितः अपर्वितः  
स्वपगेवगत्तरितियाकृत्, तेन गोविन्दविषयिणीरतिरतेषु व्यञ्यते । नयना  
यनं नेत्रमार्गम् । तामाशायु तां दिशपृ । नकुण्ठा पृणा ॥ इति द्वितीयो  
च्छवासटिष्णी ॥

(१३६)

ऋग्ग्रीष्मीश्वरी चरितम्

## तृतीय उच्छ्वासः ।

वहुकालादाकलितं सङ्कलिप्तनियमवन्धनं यद्यत् ।  
सम्पादयति दयातो भगवान् तद्वक्तव्यस्लो नित्यम्॥१॥

अथ पृथग्विधान् नगनगर संवसथान्, चित्राणि  
च काननानि, कलनेनापि कायकम्पनकारणीश  
कलोलिनीः, नयनप्रसादनतासुपेयिवांसि परमपावन  
पयांसि च सरांसि समतिक्रामन्, नवीनहैयङ्गवी-  
नेनाव्युतनियमेनाव्युतापचेतानियतिप्रहितचेताअसौ  
प्रणयाभिमानिन्यामिवांशुमतासमंनीयमानायां वासर-  
सुषमायां, वासकसज्जिकास्त्रिवस्मयमानवदनव्युतिषु  
कुमुदतीषु, लक्षितललनायामिवलक्ष्यमाणानेका-  
वलोकनमुदितायां गगनपद्मतौ, प्रोषितपतियोषि  
तीवदर्शितरागायां ककुभि प्रतीच्याम्, पावक  
परितापितायःपिण्डइव, आलक्तकच्छदइव, वन्धु-  
जीवकप्रसूनइव, पश्चिमाचलशयित महाभुजगभोग  
रत्नइव, हाटकताटङ्गइव सन्ध्यायाः, सुन्दरसिन्दूर  
विन्दाविववरुणाङ्गनायाः, प्रतिभाति भानुमति, वार-  
नारीमिव प्राचीमसाचीकृतवदनमात्रमिवतांकरेणसमा-  
ति मेदुरानुरागेचन्द्रमसि, दुरन्तप्रान्तराभ्यन्तरस्थ

श्रीः । वहुकालेति, आकृतिम् आचरितम् । एतेन स्थङ्गविश्वे  
दुरासदेनापि नवनीतेन भगवदर्चनं नियमस्यपूर्तिसंजाता गोविन्दस्येति  
सूचितम् । विशेषेवक्तव्ये सामान्यस्योक्त्याऽपस्तुतप्रशंसा, भक्तवत्सलत्वं  
स्यबाक्यार्थनिष्पादकतयाकाव्यलिङ्गं चालङ्कारः, यद्वा सम्पादनयोग्यत्वं  
स्वपव्यङ्गयद्वारा तस्यतथात्वेपरिकरिति । नगः पर्वतः पादपश्च, सं  
वसयोग्रामः, कलनेन दर्शनेन हैयहृषीनेन नवनीतेन, अच्युतनियमेन, न  
च्युतः नियमोयस्यतेन, अच्युतापचेताहरिपूजकः, नियति नियमः,  
प्रणयाभिमानिनी प्रेमगर्वितानायिका, वंशुपतासूर्येण, ऋक्षितऋक्षना,  
प्रकटप्रपुरुपस्नेहापरकीयायोपित्, लक्ष्यमाण मनेकस्य सूर्यस्य चन्द्रस्य  
च, अन्यत्र नायकस्य, अवलोकनेन मुदितं प्रकाशोहर्षोवा यस्या स्तस्या  
मित्यर्थः । दर्शितः रागोरक्षिमा अनुरागो वा अभिक्षापस्मृति चिन्तागुण  
कथनेद्वेगसंप्रकापादिनाययातस्याम् । ककुभिदिशायाम् । वस्त्राङ्गुनायाः  
पश्चिमदिशः । असार्चीकृतवदनम्, असार्चीकृतं नर्तिर्यकृतं वदनं  
मध्यो मुखं च यस्मिन्नदितिचुम्बनक्रियाविशेषणम् । करेणकिरणेनहस्तेन च

मप्रथितप्रथंकमप्यवसर्थंपथसवेशावस्थितं विलो-  
क्य तत्रैव रात्रिमतिवाहयितुं चेतश्चकार । गत्वा च  
तत्रच्छायासच्छायानोकहतले परिसमापितसायन्त  
तकृत्यसंहतिस्सुखसुपाससाद् निद्राम् । अथासोढ  
क्षेत्रस्थित्यमानवियोगिगणवितीर्णशापपरिणति राज-  
यक्षमा स्कन्दितायामिव क्रमेणक्षीणतामुपगच्छन्त्यां  
यामवत्याम्, अनन्तपुटभेदनराज्यशासनं निज  
१८

## तृतीय उच्छ्वासः ।

वदुकालादाकलितं सङ्कलिपतनियमवन्धनंयद्यत ।  
सम्पादयति दयातो भगवान् तद्वक्तव्यस्त्वा नित्यम्॥१॥

अथ पृथग्विधान् नगनगर संवसथान्, चित्राणि  
च काननानि, कलनेनापि कायकम्पनकारिणीश्व  
कलोलिनीः, नयनप्रसादनतासुपेयिवांसि परमेषावन  
पयांसि च सरांसि समतिक्रामन्, नवीनहैयद्वयी-  
नेनाच्युतनियमेनाच्युतापचेतानियतिप्रहितचेताअसौ  
प्रणयाभिमानिन्यामिवांशुमतासमनीयमानायांवासर-  
सुषमायां, वासकसज्जिकास्विवस्मयमानवदनयुतिषु  
कुमुदतीषु, लक्षितललनायामिवलक्ष्यमाणानेका-  
वलोकनमुदितायां गगनपद्धतौ, प्रोषितपतियोषि  
तीवदर्शितरागायां ककुभि प्रतीच्याम्, पावक  
परितापितायःपिण्डइव, आलक्तकच्छदइव, वन्धु-  
जीवकप्रसूनइव, पश्चिमाचलशयित महाभुजगभोग  
रत्नइव, हाटकताटङ्गइव सन्ध्यायाः, सुन्दरसिन्दूर  
विन्दाविववरुणाङ्गनायाः, प्रतिभाति भानुमति, वार-  
नारीमिव प्राचीमसाचीकृतवदनमाचुम्बितांकरेणसमा  
लिंगति मेदुरानुरागेचन्द्रमसि, दुरन्तप्रान्तराभ्यन्तरस्थ

धीः । एहाकालेति, आकृतिम् आचरितम् । एतेन स्थबविशेषे  
दुरासदेनापि नदनीतेन भगवदर्चनं नियमस्यपूर्तिसंजाता गोविन्दस्येवि  
सृष्टिम् । दिशेषेदत्तत्वे सामान्यस्योदत्याऽप्रभृतमशंसा, भक्तवत्सलत्वं  
स्यदाक्षयार्थनिधादकात्याकाष्यलिङ्गं चादृकारः, यदा सम्पादनयोग्यत्वं  
स्यपव्यङ्गपद्मारा तस्यतथात्मेपरिकरइति । नगः पर्वतः पादपथ, सं  
दर्शयोग्रामः, कलनेन दर्शनेन हैयद्वन्वीनेन नवनीतेन, अच्युतनियमेन, न  
स्युहः नियमोयस्यतेन, अच्युतापचेताऽपिष्ठकः, नियतिः नियमः,  
प्रणयाभिमानिनी भ्रेमार्विक्तानायिका, अंशुमताद्यर्थेण, ऋक्षितक्ळङ्गना,  
प्रकटपरपुरप्सनेदापरकीयायोदित्, उद्यमाण मनेकस्य सूर्यस्य चन्द्रस्य  
च, अन्यत्र नायकस्य, अवलोकनेन मुदितं प्रकाशोदपौवा यस्या स्तस्या  
मित्यर्थः । दर्शितः रागोरक्तिमा अनुरागो वा अभिङ्गापस्मृति चिन्तागुण  
कायनोद्वेगसंमकापादिनायप्रातस्याम् । ककुभिदिशायाम् । वरुणाहृतायाः  
पश्चिमदिशः । असाच्चाकृतवदनम्, असाच्चाकृतं नर्तिर्यक्तुं वदनं  
पद्धो मुखं च यस्मिन्तदितिज्ञम्बनक्रियाविशेषणम् । करेणकिरणेनहस्तेनच

मप्रधितप्रथंकमप्यवसरंपथसवेशावस्थितं विलो-  
क्य तत्रैव रात्रिमतिवाहयितुं चेतश्चकार । गत्वा च  
तत्रच्छायासच्छायानोकहतले परिसमापितसायन्त  
तकृत्यसंहतिस्सुखसुपाससाद् निद्राम् । अथासोढ  
क्लेशस्त्रियमानवियोगिगणवितीर्णशापपरिणति राज-  
यक्षमा स्कन्दितायामिव क्रमेणक्षीणतासुपगच्छन्त्यां  
यामवत्याम्, अनन्तपुटभेदनराज्यशासनं निज  
१८

वाजिवाहकोदय निराकृताराति तिमिरे चिर्णीर्षति  
 विकृतने प्रावर्ततकर्तव्येषु प्रात्यहिकेषु, उपासथायच  
 प्रथमसन्ध्यां भगवत्पादाम्बुजसवनीयनवनीतसम्पत्त-  
 ये तदवनीवासिनस्समस्तान् कुत्रलभ्यतेक्षीरमित्यपृ-  
 छ्त् । तैश्च नैतामध्यास्तेमहीमाहेयीमहिषी वा दूरे  
 च तदित्यभिहितोनियमभङ्गभयानुवन्धिवाधनोदन्व  
 ति निमज्जन् नचिरादनुचरेणसमाहतं तद्वलोक्या-  
 श्र्वयचकितचेताः कथमिवैतदासादितन्त्वयेति दास  
 मन्वयुक्त । ततस्तस्मात् ‘सौरभेयीग्रामं ग्रामं निकपा  
 गोपायमानेन विमलतरनीरसरसीसनीडे, नूतनत-  
 रुणतारम्भ सम्भावितेन, कौडुमविशेषक विशेषित  
 विशालभालेन, अलिकुलानुकूलातिललामकानन-  
 कुसुममालाक्लितोरु मौक्किकमारहारभारप्रतिभासित  
 वक्षस्थलेन, कोकनदानुकारिकरचरणकमनीयेन,  
 भ्रमग्रंथाजित वक्त्राम्भोरुहेण, कमलरागकृत मकरा-  
 कृतिकर्णकुण्डलकान्ति निराकृत कायकेतु कौतुकेन,  
 चृणित वर्णमानचश्चलाधिवासितवसनेन,

अपयितप्रथम्, अविदितनापवेषकम् । अवसर्यंग्रामम्, मवेशो  
 न्तिकः । छायामन्त्रायः छाययसतीच्छायाकान्तिर्यस्यमः । यापवत्यां  
 निशायाम्, भवनिच गशयश्चमापये शयः क्रमेणाद्वयेति । अनन्तमाक्ष-  
 श्च नदेवानन्दपुरमेदन मनिविश्वतं नगरं नग्रं रात्यम्यशामनम् । निज

वाजिवाहकः अरुणः, उपास्थाय उपास्य, नवनीयं पूजनसम्बन्धि, माहेयी  
गौः, तत् क्षीरम्, अनुबन्धिजन्यम्, वाधनोदन्वति पीडासमुद्रे, तत्  
क्षीरम्, अन्वयुक्तं पृष्ठवान् । तस्मात् दासात्, एतस्यवस्थ्यमाणेन निश-  
म्येत्यनेनान्वयः । सौरभेयी-ग्रामंगोममृहम्, ग्रामंनिकपा ग्राममीपे,  
सनीडे अन्तिके, विशेषकं तिळकम्, अनुकूलेति, एतेन सौगन्ध्याति  
श्योन्यज्यते । क्षोकनदं रक्तोत्पलम्, भ्रमरकोऽलकः सएव भ्रमरको  
मधुपः, कमलरागः पश्चागमणिः कणेति, नचैतत्पदं व्यर्थं, कर्णसंलग्नार्थं  
कत्वात्, “कर्णवितंसादिष्टे” इत्यादिना काव्यगकाशेतथाप्रतिपादनात् ।  
केनुः पताका साचमदत्स्य र्मानमयी, चूर्णितेति, चूर्णितः तिःस्तुतः;  
वर्णस्य रूपस्य मानोगवौयस्यास्तथाभूता विद्युत् येन तत् । अधिवासितं  
वसनं यस्यतेनेत्यर्थः ।

विलासि महीपतिकृतूहलशहनेनेव नवनीरदावली  
श्यामलता कान्तेन, जामदग्न्य प्रतिपाद्यमानमेदिनी  
तलेनेव नक्षत्रमालाच्छ्रुतेन, जीमूतवाहनेनेव अं-  
गदस्थितिशोभनेन, विद्यानामिव नामिनीमनोमी  
नाकर्षकाणां तिमिरत्यणुन्सञ्चयानामिव कुटिलाल  
कानां रोचिषालिम्पतेवान्तरीक्षम्, मणिवन्धवन्धुरव-  
लयमणिमरीचिभिः रत्नकुट्टिममिव विदधताप्रदेशम्.  
आश्विनेयादि सममनोरमनिमणिपरिशीलनप्रयोजने  
नेवकमलजन्मतः, प्रकटितसृगमदेनापि सृगमदाप-  
हारिणा, चन्द्रकरुचिच्छिच्छतेनापि विभाकरेण, वंशी-

वाजियाहकोदय निराकृताराति तिमिरे चिर्णीष्टिं  
 विकर्तने प्रावर्ततकर्तव्येषु प्रात्यहिकेषु, उपास्थायच  
 प्रथमसन्ध्यां भगवत्पादाम्बुजसवनीयनवनीतसम्पत्त-  
 ये तदवनीवासिनस्समस्तान् कुब्रलभ्यतेक्षीरमित्यपृ-  
 छ्त् । तैश्च नैतामध्यास्तेमर्द्दिमाहेयीमहिषी वा दूरे  
 च तदित्यमिहितोनियमभङ्गभयानुवन्धवाधनोदन्व-  
 ति निमज्जन् नचिरादनुचरेणसमाहतं तदवलोक्या-  
 श्वर्यचकितचेताः कथमिवैतदासादितन्त्वयेति दास  
 मन्वयुक्त । ततस्तस्मात् “सौरभेयीश्वरम् श्रावं निकपा  
 गोपायमानेन विमलतरनीरसरसीसनीडे, नूतनत-  
 रुणतारम्भ सम्मावितेन, कौडुङ्गमविशेषक विशेषित  
 विशालभालेन, अलिकुलानुकूलातिललामकानन-  
 कुसुममालाकलितोह मौक्किकसारङ्गारभारप्रतिभासित  
 वक्षस्थलेन, कोकनदानुकारिकरचरणकमनीयेन,  
 भ्रमरक्ष्माजित वक्त्राम्भोरुहेण, कमलशगकृत मकरा-  
 कृतिकर्णकुण्डलकान्ति निराकृत काषकेतु कौतुकेन,  
 चूर्णित वर्णमानचञ्चलाधिवासितवसनेन,

अप्रथितप्रथम्, अविदितनामधेयकम् । अवसर्थंग्रामम्, सवेऽन्तो  
 नितकः । छापासच्छायः छाययासतीच्छायाकान्तिर्यस्यसः । यामवत्यां  
 निशायाम्, भवतिच राज्यक्षमामये भयः क्रमेणाद्वस्येति । अनन्तमाकां-  
 शं तदेवानन्तपुटभेदन मतिविश्वृतं नगरं तत्र राज्यस्यशासनम् । तित्र

आसेचनकेन “ तदासेचनकं वृक्षेनस्त्यन्तोयस्यदर्शनात् ” इत्येतत्प्रति-  
पादितेन । नैचिकी गवामुत्तमागौः, मनिर्बन्धं साग्रहम्, ईयिवान् गतवान्  
गन्धर्दिनगरं मायानिर्भिंतं नगरम्, प्रातीतिकविषयं नैयायिकानभ्युपग-  
तानिर्बद्धनीयख्यातिविषयीभूतंरजतादि । अतथाभूतम् उत्तरकालिक  
वाघशानविषयीभूतम् ।

मविद्ययानवच्छिन्न मानन्दमयमध्यासितभव मभवम-  
पिशास्त्रप्रकाशितं, गायाधिष्ठानमपि सर्ववेदिनं म-  
नोऽमेयमपि मनसैवदर्शनीयं, भक्तानुकम्पाकलित  
श्रीकृष्णकलेवरं समवधारयन्, तदीययुणगणगरिम-  
समज्ञामगायन्निराम् । ततो विधेय ! अहोत्व सकल  
लोकावधेयं भागधेयम्, आतृसि निपीत ममृतामृतं  
लोचनपुटेन, हृष्टाच परमारमासीमारामणीयकस्य,  
अद्यत्वे तवावसितप्रयोजनंजननं यत्र नयनयो  
रतिथिभावमभजतयोगाभ्यास गमितजन्मभिर्यमिभि  
रपिद्वुरा सदावलोकनोदेवकीनन्दनइत्यादिभृशंदासं  
प्राशंसत् । एवं तत्प्रदेशादागत्याकस्मान्नीतेननव-  
नीतेन स्थेन्नासहितेनप्रेमणा परेण भगवतः समातनुत  
पूजाम् । अथततः कतिपयेन वासरेण पुरी मूरीकृता  
वतारां जगदी श्वेत, दूरीभूतविधिप्रवृत्तितयाधुरीणां

वशीकृतकरसरसीरुहेण, आकरेणलावण्यसलिलानां  
 क्रीडैकनिकेतनेन सौन्दर्यसारसमुदयानां, सकलसु-  
 कृतपरिणाम मवसीयमानेन नयनानाम्, आसेचन  
 केन केनचिदाभीरकिशोरेण सिखासोरुपागतस्य त-  
 दीयरुचिरतांचकितगचिन्तयानस्य चिरायतत्रस्थित  
 वतो ममाभ्यर्थनात्पुरैव झटितिस्वकीयनैचिकी मुण-  
 दुद्य मूलयेनविना समीहितादपिसनिर्वन्धमाधिकंदुर्घ  
 मिदगदीयत, इत्येतदानिशम्य सपदितमुद्देशमीपि  
 वान् दासादासादितं स्वाप्नोदन्तमिव, गन्धर्वनगर  
 मिव, ऐन्द्रजालमिव, प्रातीति ऋविष्यमिव, अतथाभृ-  
 तमभिवीक्षण तं माक्षात्स्वप्रकाशापरोक्षमवच्छेदरहित

गदनेन विपिनेन, इपापलता इपापलस्यमात्रः । इयामात्मताच । प्र-  
 गदयपानं दीयपानम्, नश्व्रपात्रया ममितिमंदगाकगु टिकावित्तप  
 द्वृति तेन दीपेन, क्षत्राणां क्षत्रियाणां पात्रयाप गदयानच्छुमितेनश्यां  
 च, अद्वद्यस्युद्यमित्यन्या वत्त्वानेन अद्युमितिप्रद्यति नां  
 पात्राणी भितिर्वादत्त्वापनोर्येण । वदिशानां वन्मानिमैविष्ण-  
 ववा ॥ द्वृताना प्रसदद्वृत्यरक्तानाम्, यजिवन्वः काष्ठृताम्; ३॥  
 द्वृतम्, एव ददन्वनोर्येववः । यगपदः कस्तृतिः । पृष्ठम् नानी-  
 द्वृतिरामवद उद्वहः तदः । यद्वृत्यित्तमित्यनद्राहितिप्रद्यते, ॥५  
 ६॥ दृतः ॥ द्वृतिरित्यादाय । विमापर्वित शानकियातिरेष्वन-

करन्दसुरभीकृत रवादुमलिलैः, निःश्रेयस निश्रेणिका  
भिरिदि लोपानश्रेणीभिरगिगजितेः, मानवमिपेण  
जगन्नाथदर्शनार्थं पायाते स्त्रिदशोरिजनै रवगाह्य-  
गातेः, सरोभिरुदशोभिताम्, विपिनपालपालिषीय  
माननास्त्रिकेलमधुररसेः, अध्वगशतदीयमानकमुक-  
खज्जूरादिस्फुरत्स्फीतफलैः, अलिकृलक्षोलाहलव्याकुलैः  
एलालताप्रसूनपरियलविछुब्ध गन्धवाहनिपेवितै  
रागमनिकैः प्रियदर्शनां, पिङ्गलसुभापितैरिव सदं-  
शस्थैः क्षमान्वितैश्च, मैथिलैरिव विद्योपासकैः आगम  
रहयकुशलैश्च, सत्कविपद्यवन्धैरिव विशदचरणेर्मुदुल  
मधुरेश्च द्विजैराकीर्णमिशित्रियत् । तत्र च यथाविधि  
आम्नायसयेव पड़ङ्गसङ्गतस्य, रवेरिवक्षमलोनन्दनस्य  
चैत्ररथस्येव सुमनसांसमवायै रासेव्यमानस्य देवस्य  
दर्शनादनैपीत्कृतकृत्यतामात्मानम् । तत एतदाय  
नात्पुरुषं “योऽसौ मैथिल द्विजन्मोगोविन्दनामा  
कामाभिरामाकृतिः कृतिकुलललामाति धवलयशो-  
धामात्र त्रियामानन्तरं निरतिशयभक्तिभूम्ना मामा  
लोकयितुमागन्ता, स च सार्च्छमेवानल धौतमलकल  
धौतप्रतिमधौत युगलेनास्मदीयनेवेद्यं निवेद्य सद्यः  
प्रसाद्य सभाजयितव्यःव्यपदेष्टव्यश्चास्माकीनयागिरा

श्रेयसीषुनगरीषु, सद्ब्याख्यामिव तालमालातिलसि  
तां, मखमहमहीमिव कदलीवनमण्डितां, चक्रवाक  
चक्रवालोपेतैः, कादम्बरमणीरमणीयैः,

स्वप्रकाशेति, स्वप्रकाशप्रत्यक्षात्मकं मित्यर्थः, अवच्छेदः परिच्छेदोदेश  
दिना, एतेन नित्यत्वं व्यापकत्वं च इर्शितं भवति ‘आनन्दमयमिति, तत्त्वं  
“आनन्द मयोऽभ्यासात्” इत्यादि सूत्रैः प्रत्यपादि वादरायणेन वेदान्तां  
र्थने । अध्यासितः सन्धृष्ट इत्यादि सद्विशेष्यक्षप्रतीत्यापकारीभूतः भः  
संसारोयत्वत्म्, अभवमपि अजन्यपपि शास्त्रेण उपनिषदा प्रकाशितम् ६  
त्पञ्चं ज्ञापितं वा, मायेति इहविरोधः स्फुटएव । मायिनोऽसर्वज्ञत्वात् जी  
वत्, परिहारस्तु आवरणशक्तिविशिष्टवायाविकरणत्वं ब्रह्मणि नोपगम  
ते विशिष्टाविकरण ताया विक्षणत्वात् तथाच सर्ववेदित्वोपगतिः  
मनोऽपेयमपि “अवाङ्मनस गोचर” मिति श्रुतेः, इहापि स्पष्टएव विरोधः  
परीहारस्तु उक्तश्चुतौ मनः पदम् स्कृत मनः पत्म्, “मनसैवानुद्रष्टव्य  
म्” इति श्रुतिविग्रेधात्, मनसैव श्रवणमननादिना संस्कृतेन मनसैवेति  
आकलितः गृहीतः, समझां कीर्तिम् । अवधेयं सुश्रूषितव्यम्, अमृतामृत  
म् अमृतादप्यमृतं सुधाविक पितियावत् । अवसितं प्राप्तम्, विधिप्रवृत्ति  
रहष्टोत्पत्तिः जगन्नाथपुर्णगपनेन जीवन्मुक्तना भवनीतिभावः । ताङ्गमा-  
का तालवृक्षस्य करध्वनेवा परम्परा, सद्ब्याख्यायां करध्वनिरिति नव्य  
सभ्यानामाचारः । कदलीवनं रम्भावनं पताकानिवद्वय चक्रवालं मण्ड-  
वम्, कादम्बः कलहंसः ।

रोलम्बकदम्बकावलम्बिताम्बुजनिकुरम्बस्यन्दमानम-

करन्दसुरभीकृत स्वादुसलिलैः, निःश्रेयस निश्रेणिका  
 भिरिव सोपानश्रेणीभिरभिराजितैः, मानवमिषेण  
 जगन्नाथदर्शनार्थ मायातै खिदर्शैरिवजनै रवगाह्य-  
 मानैः, सरोभिरुपशोभिताम्, विपिनपालपालिषीय  
 माननास्तिकेलमधुररसैः, अध्वगशतदीयमानक्रमुक-  
 खर्ज्ञादिस्फुर्तस्फीतफलैः, अलिकुलकोलाहलव्याकुलैः  
 एलालताप्रसूनपरिमलविलुब्ध गन्धवाहनिषेवितै  
 रोगमनिकैः प्रियदर्शनां, पिङ्गलसुभाषितैरिव सद्ब-  
 शस्थैः ज्ञानितैश्च, मैथिलैरिव विद्योपायकैः आगम  
 रहयकुशलैश्च, सत्कविपद्यवन्धैरिव विशदचरणेर्मृदुल  
 मधुरेश्च द्विजैराकीणामिश्रित्रियत् । तत्र च यथाविधि  
 आमन्नायस्येव पड़ुसङ्गतस्य, रवेरिवक्रमलोनन्दनस्य  
 चेत्ररथस्येव सुपनसांसमवायै रासेव्यमानस्य दंवस्य  
 दर्शनादनैपीत्कृतवृत्त्यता गात्मानम् । तत एतदाय  
 नात्पुरेव “योऽसौ मैथिल द्विजन्मांगोविन्दनामा  
 क्षमाभिरामाकृतिः कृतिकुलललामाति धवलयशो-  
 धामात्र त्रियामानन्तरं निरतिशयभक्तिभृत्ना मासा  
 लोकयितुगागन्ता, स च सार्ज्जमेवानल धोतमलकल  
 धोतप्रतिमधौत युगलेभास्मदीयन्तेवेद्यं निवेद्य सद्यः  
 प्रसाद्य सभाजयितव्यः व्यपदेष्टव्यश्चास्माकीनयागिरा

(१४४)      ❁ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❁

निश्चेणिका सोपानम्, इयमुत्प्रेक्षा, एवमग्रेऽपि, त्रिदशैरिवेति इम  
मुत्प्रेक्षा सापद्वेति विच्छित्तिविशेषः । अध्वगशतर्दीयमानं पथिकशतार  
वितीर्यमाणं तस्यशतेनखण्डयमानं च । पिङ्गलसुभाषितेः पिङ्गलनागप्रभीत  
च्छन्दो निवन्धैः, सद्वशस्थैः समीचीनकुलवर्तिभिः वंशस्थेन च्छन्दसाऽ  
न्वितैश्च, समाशोन्तिः तदभिधानं छन्दश्च । विद्याशास्त्रं कालिकादिर्भा  
वती च, आगमोवेदशास्त्रं तन्त्रं च, विशदचरणैः पवित्राचरणैः निर्दो  
पादैश्च, पठङ्गानि सर्वङ्गता वृष्ट्यनादिवोधादीनि शिक्षाकल्पव्याकरणार्दी  
निच । कमलानन्दनस्य कमलायालक्ष्म्या कमलस्य पदस्यवाऽऽनन्दनस्य  
सुखदस्य विकाशकस्थच । चैवरथः कुवेरोधानम्, सुपनसां सावत्रा  
पुष्पाणां देवानां च । आयनात् आगमनात् । कलघौतं सुवर्णम्,  
मधाजयितव्यः पूजनीयः ।

तेन तत्सन्ततिसन्तानैश्च नाममनक्षेत्रो विधेयः, अ-  
विहितास्मदी यदनदर्शनैऽपितै नरनिवाप्तं स्यात्तदु-  
द्ध्रवं तदेककस्य ममागमेनसुकृतम्” इति स्वप्नमा  
प्नुवानोऽस्वप्नदेशीयतां दधानो देवसेवनैकं परायण  
ससकलागमगहन गाहन मृगनायको विप्रगणनीयो  
विप्रः क्षिप्रं निरीक्ष्य गवेषणेन पौरस्त्यक्षणदावलोकित  
स्वप्न निरूपित स्वरूपाय तस्मै सम मुद्रमनीययुग्मेन  
भगवते निवेदितं नैवेद्यं सादर सुपाहरत् । अथ्रावयव  
स्वप्नानादित मुदन्तजातम्, सच केनाप्यलब्धं म-  
माधारण मनिप्रमदेन देवस्यान्वितं प्रसादेन निर्दे-  
शितं मृच्छा प्रणम्याग्रहीत्, अमन्यतत्र धन्यतपम-

ॐ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ॥ (१४५)

न्यमेवात्मानम्, अवसच्च जगदीशं सेवमानश्चिरा-  
य, अकरोच्च नवसंस्तवसमेधित सुदिताऽन् सकला-  
नेवोत्कलीयाऽन्, अनैषीच्च व्याकोशकोशतामदसीय  
हृदय सरसीरुहाणि, ततोऽतीतेषु गणरात्रेषु कृतनिर्ण-  
यः प्रयाणाय विधायच यथारुचि तदुचितानि  
कर्तव्यानि, समानन्दितदेवसेवकोऽसकृन्नमस्कृत्य-  
नारायणं, संयाच्य चाचला मनुरति मयनातिथीच-  
कारचरणौ । अथ यहृच्छयाऽऽगच्छन् अभिवीक्ष्य  
श्रीसाक्षिगोपालपादपाथोज माहततरस्तत्रत्यै र्जन-  
समुदयैः, हृषितहृदयैः, तत्त्वदेशजनिजुषो विषय-  
विशेषान् प्रतिलोचने प्रेषयन्, नगरहृव सदिन्दु  
चन्दन विन्दुसरसाऽभिनन्दिते, अपत्यप्रदपानपयो-  
मरीचिकुण्डमण्डिते शमनाशावस्थितेऽपि उदयाच-  
लान्तिकतरे, लक्षितलक्षाधिकमन्दिरे पदे प्रतिष्ठितं  
स्मरजित्वरं श्रीभुवनेश्वरं व्यलोकयत् ।

अस्वप्रदेशीयतां देवसाहश्यमितियावत् । विमगणनीयः विशेषेणप्र-  
कृष्टतयागणनीयः विमेषुगणनीयोवा उद्गमनीयं धौतवस्त्रम्, असाधारणत्वे  
केनाप्यकल्पत्वंहेतुः, अन्यमेवलोकोच्चरमेव, लोकेषुकेनापिताहशप्रसादस्या  
प्रोप्त्वात् । संस्तवः परिचयः । गणरात्रेषुवहीषुनिश्चासु । समानन्दितेति,  
द्रविण दानादिनेतिभावः । अयनं पार्गः, सदिन्दुचन्दनेति, शोभनचन्द्र  
चन्दनयोश्चवेततया सद्येन विन्दुसरसा विन्दुसरोवरेण, शोभनेन्दुसर्वः

चन्दनस्यविन्दुर्यत्र ताटसेन सरसेन ॥ क ॥ ॥  
 अपत्येति, अपत्यप्रदं पानंयस्य तथाभूतंपयोयत्र तेन ॥ च ॥  
 इत्यर्थः शमनाशा यमस्यतृणा इक्षिणदिशाच, उदयाचलः ॥  
 वृद्धिः । सूर्योदयं पर्वतः उदयाचलनामधेरस्तत्प्रान्तेस्थितोगिरिश्च

तत्रच कियन्ति वासराणि शङ्करसमाराधनेनातिवा-  
 ह्य वाह्याति कीर्तितकीर्तिः सुप्रीतचेता अलञ्चकार-  
 जनेश्वराशायायिनीसरणिम् । एवमासन्नानित्रिदश-  
 सदनानि पावनवनवाहिनीश्च तटिनी सम्भावयन्-  
 चिरात्रायाक्षान्तकलेवरशान्तस्वान्तो निमीलहल-  
 नलिल निलयान्विहाय तन्मधुनि पोनप्रमत्तभ्रमद्भ-  
 मर प्रकर विरुतनान्दी समारभ्यमेषाणे चित्रे मदनना-  
 टके, उपपते रिव कलाकरस्यकरसम्पर्कलवेनापिसङ्को-  
 च मञ्चन्तीषु सविकामिनीषु कमलिनीषु, चिरवि-  
 शुक्तकुमुदिनीप्रेमाणमिवक्षङ्गमरागकैतवेन धारयति  
 कुमुदिनीनायके, नितान्तमलिनच्छायतां शनैरुपग-  
 च्छति नववधूवदनपङ्कजे, निशादो निशान्त माज-  
 गाम । दूरादेवहप्तमात्रेतस्मिन् सुचिर विलोकनाद-  
 भिनवीभूतेनेव प्रणयपुञ्जेनातीवविकृवर्णान् सर्वा-  
 नेव वाष्प सलिलासार शोभितास्यसारसान् सम्भूया-  
 वस्थितान् निसर्गानुराग शालिनो वन्धुवर्गन्यथाकं-  
 प्राणाधिकान् श्राणमत् प्राणम्यतच कतिपयेन तेषाम्,

❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀ (१४७)

उमालिङ्गयतचाङ्गेषु सकलै रुक्मिकाऽतिविकलैः,  
अथससम्ब्रम प्रधावितविधेयजनाधीयमान मासन-  
मुपाविशदासीनेषु युरुजनेषु, अपृच्छयतच कुशलं-  
तैः, अजिज्ञासतच प्रत्येक मनामयं कनीयसाम्,  
ततोऽति दुरासद तीर्थगत निजजनो

नेश्वराशा उत्तरदिशा । वनं जलम्, तटिनीः नदीः; ‘निमीळ दिति,  
येयमानकवाटे शौण्डकालयेसति मध्यास्ततोनिः क्राम्यन्तीति वस्तु-  
तिः, नलिनमेव निलयः, चित्रइति, मधुपान प्रमत्तस्य नान्दीपाठक-  
दितिभावः । उपपतेः जारस्य । पङ्कजइति, युक्तमेवैतत् पङ्कजस्य  
व्यायां क्रमेणप्रक्रिनच्छायतेति । निशान्त मिति सदनार्थकम्, एवंच  
ोधा भासोलङ्कारो व्यज्यते, निशादौ निशाया अन्तस्य प्राप्त्यसम्भवेन  
ोघस्यापारतः प्रतीतेः । विकृर्वाणान् हृष्टपानसान् । उत्क्लिकेति,  
लिङ्गनस्येत्पाशयः । आधीयमानं दीयमानम् । तैः गुरुजनैः ।

चिताचार्दिसत्कारं विन्दन्नतितरामनन्दत । विज्ञातभा-  
बुक्ते स्तैरनुयुक्तो विषमतमसृति प्रवृत्ति मादितः क्रमेण  
कृत्स्नामेव न्यवेदयत् । तदुदन्तसन्ततिश्रवणाहित-  
विस्मयास्तेमुदं परमामुपागमन्, अभ्युदैरयँश्च तन्म-  
हानुभावताया निवेदकानिवचनानि, कर्णाकर्णिकयाच  
तावार्ता विश्रुतता मयासिषु र्जगतीतलेषु, अवर्धत-  
चवहुविधोतस्य कार्तिकराकाकला करकला कीर्तिल-  
तिका, प्रतिव्यधत्तच गिरिगणयुरोर्गरि माणं तदीय

माहांत्म्यम्, येन्नतस्यतनया विद्योपति दामोदर गम-  
नाथ देवनाथ गोपीनाथ मधुसूदन जनार्दना भिशा-  
नो, दवीयसीमपि महामहोपाध्याय पदर्वीं दधाना-  
अपाकृत भूमण्डलपण्डिताभिमाना, असमानसम्मा-  
ना, विकाशित भुवनाननलिनकानना, दीपिता  
भिजनाः, प्रसन्ना, शुणसौरभलोभनिपतदस्तोक लोक-  
मनोमधुपगणा, धीधनचणा, धिक्कृतधिषण धीर-  
धिषणाः, सरसपेशलसत्यभाषणा, नवनवोद्यदिशद्य-  
मानसद्यशसः, विदितसर्वदिव्यविद्याः, संसद्यनन्य-  
तुलितहृद्यानवद्य गद्यपद्यवैशद्यविद्योतितभारतीकाः  
द्युमणिद्युतयः, सदाश्रवाः, श्रितश्रौतकृत्याः, परपरीवा-  
दपराचीनचेतसः वाग्मिनः, हरिचरिताकलनकौतु-  
किनः, नयोपनिषद्दर्शिनः, रमणीय परस्परप्रेमशा-  
लिनः, न्यायवादिनः, सोमपीथिनस्समासन्, तेऽपि  
पितुः प्रभावं प्रतिपद्य परां प्रसन्नतां प्रापन-

सत्कारमिति, द्वृवक्षतादिग्रहणमित्यर्थः । भाकुकैः कुशलैः, प्रतिब्ध-  
धचनिराकरोत् । असमानम् अनुपमम्, धिषणः सुरगुरुः, उद्यदिशद्य-  
मानेत्यत्र कार्यकारण पौर्वपर्यविपर्ययलक्षणाऽतिशयोक्तिः । सदाश्रवा-  
सत्यप्रतिश्वाः सतां वचनेस्थिताइच । उपनिषद् रहस्यम्, सोमपीथिनः  
सोपयाजिनः ।

तेषा मादिमाश्रत्वारः प्रोच्चातिचारुचावचन्यायवचो-

गोचरोचित प्रचुरचिरविचारातुल चातुरी चमत्कारच-  
यचकितचेतसा ज्वसायरसाभृतोशाब्दानुशासनेऽर्क-  
स्येव कल्याणोदर्कतर्क सम्पर्क भागिविषये कर्कशम-  
तिशालिता मपिंतेन तर्ककानन पञ्चननेति पदेन  
सनाथो गोपीनाथो निखिलप्रतिभाषिमनीषि मानमर्द-  
नेन जनार्दनेन साध्यं मध्यापयन्तो मेधाविनोऽन्ते वा  
सिनोव्यराजन्त ॥ तत्रा प्रतिहत प्रतिभा प्रतिभासितो  
देवनाथस्तु प्रत्येकंतन्त्र मन्तरायापरतन्त्रो निरन्तर  
मादरेण चिरेण यथेष्ट मध्यगीष्ट, समस्तशान्त्र मंपार  
पारावार ममश्नान्मतिवैभवेन मन्दरेण, यस्मादधीत्य-  
दवीयसोऽपि दूरदर्शिदलादर माददाना निजदेशगौ-  
खोदवसितता मासेदिरे, यदालयः प्रस्थितस्यापि  
कोविदकथायाः पन्थान मदर्शयदिव मण्डनमिश्रम-  
न्दिरस्य सुषमाम्, यस्सङ्घ्यातिगात् सङ्घ्यावद्धिरपि  
दुरवचोधाभिघेयात् कौसुदीनामधेय प्रधानान्निवन्धा-  
न्निरमात्, यश्च विदुरोऽपि धृतराष्ट्रपक्षपातीः, गोत्रा-  
मोदनावस्थोऽपि देवनाथः, कलियुगजातजन्माऽपि  
त्रेताश्रितः, प्रश्रितः, द्यातिगोऽसाधारणः, स्वाहृत  
माश्रममुचितेन सुकृतेन पालयत्,

तेषाम्, उक्तानामशानां, मध्ये चत्वारः, विद्याप्रतिमारभ्य रामनाथान्ताः,  
उच्चावचं नैकभेदम्, रसाभृता, राजा, शालिकामित्यस्य ऋषसायेत्यनेन

माहात्म्यम्, येचतस्यतनया विद्यापति दामोदर गम-  
नाथ देवनाथ गोपीनाथ मधुसूदन जनार्दना भिशा-  
नो, दवीयसीमपि महामहोपाध्याय घट्वां दधाना-  
अपाकृत भूमण्डलपण्डिताभिमाना, असमानसम्मा-  
ना, विकाशित भुवनानननलिनकानना, दीपिता  
भिजनाः, प्रसन्ना, शुणसौरभलोभनिपतदस्तोक लोक-  
मनोमधुपगणा, धीधनचणा, धिक्कृतधिषण धीर-  
धिषणाः, सरसपेशलसत्यभाषणा, नवनवोद्यदिशद्य-  
मानसद्यशसः, विदितसर्वदिव्यविद्याः, संसद्यनन्य-  
तुलितहृद्यानवद्य गद्यपद्यवैशद्यविद्योतितभारतीकाः;  
द्युमणिद्युतयः, सदाश्रवाः, श्रितश्रौतकृत्याः, परपरीवा-  
दपराचीनचेतसः वाग्मिनः, हरिचरिताकलनकौरु-  
किनः, नयोपनिषद्गुरुदर्शिनः, रमणीय परस्परप्रेमशा-  
लिनः, न्यायवादिनः, सोमपीथिनससमासद्यतेऽपि  
पितुः प्रभावं प्रतिपद्य परां प्रसन्नतां प्रापन-

सत्कारमिति, दूर्बक्षतादिग्रहणमित्यर्थः । भावुकैः कुशलैः, प्रति-  
घचनिराकरोत् । असमानम् अनुपमम्, धिषणः सुरगुरुः, उद्यदित्त-  
मानेत्यत्र कार्यकारण पौर्वापर्यविषययलक्षणाऽतिशयोक्तिः । सदाश्रवा-  
सत्यपतिष्ठाः सतां वचनेस्थिताश्च । उपनिषद् रहस्यम्, सोमपीथिन-  
सोपयाजिनः ।

तेषा मादिमीश्वत्वारः प्रोच्चातिचारुचावचन्यायवचो-

गोचरोचित प्रत्युरचिरविचारात्तुल चातुरी चमत्कारच-  
यचक्तिचेतसा उवसायरसाभृतोशाब्दानुशासनेऽर्क-  
स्येव कल्याणोदर्कतर्क सम्पर्कं भागिविषये कर्कशम-  
तिशालिता मर्पितेन तर्ककानन पञ्चाननेति पदेन  
सनाथो गोपीनाथो निखिलप्रतिभाषिमनीषि मानमर्द-  
नेन जनार्दनेन सार्धं मध्यापयन्तो मेधाविनोऽन्ते वा  
सिनोव्यराजन्त ॥ तत्रा प्रतिहत प्रतिभा प्रतिभासितो  
देवनाथस्तु प्रत्येकंतन्त्र मन्तरायापरतन्त्रो निरन्तर  
मादरेण चिरेण यथेष्ट मध्यगीष्ट, समस्तशात्र मंपार  
पारावार ममथान्मतिवैभवेन मन्दरेण, यस्मादधीत्य-  
द्वीयस्तोऽपि दूरदर्शिदलादर माददाना निजदेशगौ-  
र्खोदवसितता मासेदिरे, यदालयः प्रस्थितस्यापि  
कोविदकथायाः पन्थान मदर्शयदिव मण्डनमिश्रम-  
न्दिरस्य सुषमाम्, यस्सङ्घातिगान् सङ्घन्यावद्धिरपि  
दुरववोधाभिधेयात् कौमुदीनामधेय प्रधानान्निवन्धा-  
न्निरमात्, यश्च विदुरोऽपि धृतराष्ट्रपक्षपाती, गोत्रा-  
मोदनावस्थोऽपि देवनाथः, कलियुगजातजन्माऽपि  
त्रेताश्रितः, प्रश्रितः, द्वयातिगोऽसाधारणः, स्वाहृत  
माश्रममुचितेन सुकृतेन पालयत्,

तेषाम्, उक्तानामष्टानां, मध्ये चत्वारः, विद्यापतिमारभ्य रामनाथान्ताः,  
उच्चावचं नैकभेदम्, रसाभृता, राजा, शालिक्षमित्यस्य अवसायेत्यनेन

प्राक्तनेनान्वयः । प्रतिभाषिमानः, प्रतिवादिनामभिमानः, सहृद्या वहि-  
वुष्टैः, कौमुदीति, अविकरणकौमुदी, स्मृतिकौमुदी, साहित्य कौमुदी,  
मन्त्रकौमुदी प्रभृतीनित्यर्थः । विदुरः तन्नामधेयोऽर्जुनस्य सुहृत्, ज्ञाताच्  
धृतराष्ट्रः दुर्योधनजनकः धृतं राष्ट्रं राज्यं येनासौ धृतराष्ट्रो राजाच् ।  
गोत्रामोदनम् पर्वतानां पृथिव्याश्च प्रहर्षणम्, देवनाथः सुरेश स्तन्नामा-  
च । त्रेता एतद्भिधानं युगम्, दक्षिण गाईपत्याहवनीयाग्रयश्च । प्रश्रितः  
विनीतः, द्र्यातिगः, निवृत्तरजस्तमोगुणः, असाधारणः अतुलितः

आम्नायस्मृति निदेशित मनुचरन्, विजितोन्मद  
मदनमालव वियोगिवनितावदनरोचिषा यशसा व-  
सुमर्तीं विभासयन्, अजीजनज्जनाना माह्लादम् ॥  
एवमेव भूमिदेवतापनिषूदनो मधुसूदनोऽपि मनो-  
मतयाऽवधुतमधुसखः, शैशवाकलित सकलविद्याव-  
दातहृदयः, सद्विचाराभिनिवेश पेशलातिमांसल  
मीमांसोदयः, सोदयः, जल्पनीयानल्पकल्पपर्यन्तस्था-  
य्यनन्यदीयकल्पनाशक्ति—सीमन्तिनीतल्पभूतः;  
अलक्षितप्रति पक्षरक्षणदक्षविचक्षणः, सूक्ष्मतम् ( शे-  
मुषी ) चेतनासूचिकाभि मौचनो ग्रन्थग्रन्थि निव-  
हस्य, समाराधको गणाधिपस्य, पारदृश्वा विश्वाश्रि-  
तशास्त्रसरस्वदोघस्य, अवतारो वाग्देवतायाः, निरव-  
धि प्रवृद्धानन्द विभावस्तु विकचवदनारविन्दतां ज-  
नतां प्रापयन्, उपदेशादानपात्रब्लात्रसन्दोहानुपदि-

शन्, न्यक्कुत केरलकमनीयकामिनीकपोलकान्त्या  
कीत्या विशदयन् मेदिनीवलयमदीप्ततराम् । येन  
विरचिता अदभ्रसद्गुक्तिगभस्सन्दभन्निचिरस्यकस्य  
नामापश्चिमचेतनाश्चितस्य विपश्चितश्चेतश्चमत्तुर्व-  
न्नित ॥ अथ स्वसजातीयवियुक्तश्वमितसम्बर्धनक्षमे  
वहतिमनोभवाशुशुक्षणि सन्धुक्षणदक्षेदक्षिणसमीरणे,  
मञ्जुलं युञ्जति नवमञ्जुमञ्जरी रस सम्पलम्पटे  
मिलिन्दपुञ्जे, मधुरकुहूर्णं सुहु स्समालपति ललना-  
दशनां शुक्रानुकारि प्रवालमालशाल रसालशाल-  
शाखावलम्बिनि तत्प्रसुतप्रसूनरसामवास्वादनो

भृषीति, एतेन पधुसूदनठक्कुरे द्वे स्सादश्यमभिषामूलयाव्यञ्जन  
पावोध्य, भृमिदेवस्य भृमिदेवयोथतापनिपुदनत्वस्य साधारण धर्मत्वा  
त् । मधुसखः क्षापः, अभिनिवेशः आग्रहः अभितः प्रवेशश, पांसलः  
स्फीतः, पीपांसा विचारः, सोइयः उच्चतः, अनन्यदीयकल्पा अनुपमा,  
बद्रावहुला, अठिचतस्यपूजितस्य । स्वसजातीयेति, श्वसितदक्षिणानिङ्ग-  
योर्धयुत्येनसाजात्यम्, सजातीयमुच्चपयनितलोका इतिवस्तुस्थितिः । आ-  
शुशुक्षणिः अमि, सन्धुक्षणं दीपनम्, कम्पट इति, नायकविशेषव्यवहा-  
रसमारोपान्मिलिन्दे समासोक्तिः, दशनांशुक्रोऽधरः, शालेति, शोभमा-  
नेत्यर्थः । तदितिशाखार्थकम् ।

दितमुदिते ससुदये पिकानाम्, कङ्कुनूतन सेमागम-  
जातलज्जयेव विनतायां श्रितनवपलाशवाससिव्रततौ,

निरहिदेहदाग्याय वस्त्रना धारि देवताभ्युपर्य ॥  
 न्यशश्चिनिपते; पराश कर्तव्येनेनशानोऽगति  
 उद्बनिष्टलक्षणलेण्योगिना प्रागपितनो रु  
 नागेन, विकृत कमलोदपाण्डीकरकलंभ  
 कुल शोलाहलन्याहुले प्रनिमानिष्ठमिष्टलिले मधि,  
 कान्तेन मां क्रमानन्यकृत्युले कलषति कदम्बके  
 कामिनीनाम्, पश्चपस्वेण प्रसुदिनमुहीयमानवम्  
 न्तरागापद्यतहदयेषु लोकेषु, वात्सयायनविवोवितवन्व  
 वद्विधां निखुवनक्रीडामनिशं विदधानेषु स्मरण-  
 कृतकम्पदम्पतिजनेषु, कामसापन्तवसन्तपाशयेव  
 मष्टिकावकुलमालती मालया प्रतिवध्यमानेषु भृङ्गा-  
 टनासङ्ग्निशृङ्गाटके तरुण मानसेषु, पटवासवामितवस  
 नवदनै र्युवजनै मुरजखमनोहरमुच्चे गर्यमानाश्ली-  
 लगीतिगाथादोहा निशमनेन विहसन्तीषु समन्ततो  
 नागरिक सीमन्तिनीषु, प्रसूनाशुगदैवतदरिद्रिता  
 दूरीकरणदर्शितदातृभावे, वनितावयव इव कनकरुचि-  
 कम्पक चम्पकद्युति मनोरमे, पूर्वानुरागइव उत्कलि-  
 का निकरमेदुरागमे, भूपति भवनइव विकशितका-  
 च्चने, वेशसन्निवेशइव गणिकाशतद्रवपरायणमधुप-  
 गणे, वैद्यक

## ❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀ (१५३)

ऋतुः बसन्तः स्त्रीणां पुष्पगमयथ, वाससीति, ऋतौ चतुर्थदिवमे  
त्रवंवासो गृहणन्ति ख्रिय इत्याचारः । क्रकचेकरपत्रे, पक्लशक्लैः पांस-  
खण्डैः, जागमिकेन, तान्त्रिकेण, वात्स्यायनः कामशास्त्रपणेता, पादया  
पाशसमूहेन, शृङ्खटके चतुर्थधे, पटवासः जावीरकः दूरीकरणेति, पुष्पा  
णां मात्रुर्येणाधिकशरवाभादितिभावः, चम्पकधुतिः चम्पकस्य तत्सदृशी  
षा कान्तिः, उत्कलिकेति, उत्कलिक्षाया उद्गतकोरकस्य उत्कण्टाया या  
निकरेण मेदुरसान्द्रः अगमो वृक्षो यत्र आगमो यस्येति वा ततादृशः । का-  
शनपदं कचनारेति भाष्यापयाप्रथितस्य पुष्पस्य, सुवर्णस्य च वोधकम् । देशः  
ऐश्वर्याजनाथयः, गणिका यूथिका वाराह्णगनाच, द्रवः केलिः द्रवणं च,  
मधुपो भ्रमरः मधुपोच्यभिचारी च ।

इव शतप्राशामो दितजने, सुन्दरीस्तन इव नवमालिका  
समुद्दीपिते, दारवतीनगर इव माधवीस्मितधवलिते,  
वैभातिक विलासिनी वक्षो ज इव प्रियनखक्षतकिंशुभा  
भिरामे, केशव इव सुरोलासप्रकाशके, संजातरजसा-  
पि उपभोग्यया प्रसूत संहत्या चित्रीकृते, पुष्पन्धय  
निचयपरिधीयमान माधवीमधृनां दूरदर्शनादपि मद्यः  
प्रगायतामहं यूनागपि यूनामङ्गनाहैमवाहुयुग्म निग-  
डगाढवन्धने नाभिनन्दनीये दिलसति सुरभिसमये, क  
दाचिदसौ देवनाथः प्रकृत्याद्यशक्तिभक्तियुक्तो गृहीत  
तदीयदीक्षो मन्त्रसिद्धिकामः वामाख्यागमनाय  
पितुः पादपञ्चेषु प्रार्थयां वभूव । सच्च जगती सङ्ग्रहीत

(१५४)      ❁ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❁

कीर्तिस्स्वसङ्गगिनमङ्गीचकारतङ्गमयितुम्, ततोदेव-  
नाथस्तदधिगम्य सुप्रीतमानसः प्रयाण समयं प्रः  
तीक्ष्माणस्तस्थौ ।

इति मैथिल श्रोत्रिय श्रीवालकृष्णमिश्र विरचिते  
लक्ष्मीश्वरी चरिते तृतीयोच्छ्वासः ॥

शतप्राशः कर्वीरो भैषज्यंच, आपोदितः सुगन्धिविशेषंप्राप्तिः  
आपयनिराकरणेन हर्षितश्च । नवपालिका सप्तला नवीनामालाच, माधवी  
स्मितं वासन्तिका विकाशः माधवस्त्रीहसितंच । नखक्षतेति, इहविशेषं  
विशेषणम् । वैपर्यात्यात्सधारणधर्मत्वं वोध्यम् । सुरोल्लासः उल्लितं प  
देवोल्लासश्च, प्रकाशके जनके, रजः स्त्रीणा मार्तवं परागश्च, चिरांक  
किर्मीरिते विश्वयविषयीकृतेच । पुष्पन्धयोध्यमरः, धीयमानं पीयमानम्  
अहंयुनाम् अहङ्कारवताम्, अभिनन्दनीयडति, प्रमचस्यशृंखलयावन्धन  
दितिभावः, सुभिः वसन्तः, आद्यर्जक्तिर्भगवती, स्वसङ्गिनमिति, नते  
काकिनमितिवातालयं व्यजयत इति ॥

इति तृतीयोच्छ्वास टिप्पणी ॥

---

ॐ अथ चतुर्थोऽच्छवासः ॥

अनवगतं नरेद्रभावं किमिमंजनं मीहसेपराभविकुम् ।  
सोऽयमनन्यसहक्षोऽवहितो जागर्तिंजित्वागत्रात् ॥१॥

अथामरतरङ्गिणीप्रवाहइव हरिपदपरिच्युते, निपी  
तासवइव गलितांशुके, अधोनिपतिंच, निशानाय-  
के, पुष्कराकास्कारोदेरेषु संप्रमिताञ्चुदयादेवचञ्चरीक  
निचयानचिरेण मोचयितर्हि, मयूषमालामयेऽपि कौ  
शिककुलान्धकास्कारके, मित्रेऽपि कोकशोकपरिप-  
न्थितामुपगते पुरुहूतवधू पाग्नितप्रसूनइव, लोका  
लोकलोचनइव, गगनाङ्गणरत्नप्रदीपकइव, हक्क  
पथमवतीर्णे विभाक्षरे, हनापचितिकृत्यः शुभेऽहनि  
प्रदक्षिणं ज्वलतिभव्ये हव्यवाहने, शिशिरसौमनसा-  
मोदनोदने वहत्यनुकूलेपवमाने, प्रसन्नाननासु आ-  
शासु, पुरस्ताच्चर्ति धृतधवलपीवरपयोधे धेनुमण्ड-  
ले, परिलसति श्रुतिपारयायिनि विश्रुते श्रोत्रियगणे  
कनककलसप्रतीकाशकुचयुगलविनतायामग्रतः स्थि-  
तायां दिव्यवनितायामसौ धोविन्दः प्रकामंकामाख्यां  
कामप्रतिमानेन मानन्द ममन्देहेन समंदेवनाथेन  
प्रतस्थे । गत्वाच कियतिदूरे सविशेषभीपणस्तोतो  
मित्रुलां, प्रोपितभर्तृकामिवोर्मि

श्रीः । नरेन्द्रः विष्वेद्यो राजाद्, सद्यकः सहशः अवहितः नावषानः,



॥ अथ चतुर्थोच्छ्वासः ॥

अनवगत नरेदभावं किमिमंजन मीहसेपराभवितुम् ।  
सोऽयमनन्यसहक्षोऽवहितो जागर्तिजिह्वग्रात् ॥१॥

अथामरतरङ्गीनीप्रवाहव इरिपदपरिच्युते, निर्णी  
तासवहव गलितांशुके, अधोनिपतितेच, निशानाय-  
के, पुष्कराकारकारोदरेषु संयमितानुदयादेवचञ्चरीक  
निचयानचिरेण मोचयितरि, मयूषमालामयेऽपि क्री  
शिककुलान्धकारकारके, मित्रेऽपि कोकशोऽपतिर-  
नितामुपगते पुरुहृतवधू पाग्नितप्रसूनहव, लोका  
लोकलोचनहव, गगनाङ्गणरत्नप्रदीपकहव, दृढ  
पथमवतीर्णे विभाकरे, कृतापचितिकृत्यः शुद्धेऽपि  
प्रदक्षिणं ज्वलतिभव्ये हठयवाहने, शिशिरवेच्छान्  
मोदनोदने वहत्यनुकूलेपवमाने, प्रसन्नानन् तु उ-  
शासु, पुरस्ताच्चर्गति धृतधवलपीवरपयोऽपि दृढ़गद्ध-  
ले, परिलसति श्रुतिपारयायिनि विश्वन् दृढ़द्वयन्  
कनककलसप्रतीकाशकुचयुगलविन् दृढ़द्वयन्  
तार्या दिव्यवनितायामसौ गोविन्दः दृढ़द्वयन्  
कामप्रतिमानेन नानन्द ममन्देन दृढ़द्वयन्  
प्रतस्थे । गत्वाच क्रियतिदृढ़ दृढ़द्वयन्  
भिरुलां, प्रोपित भर्तृकामिन् ॥

श्रीः । नरेन्द्रः विष्वेषो राजाः, दृढ़द्वयन् दृढ़द्वयन् ॥१॥

तिरातः पर्वः द्विषत्पदम्, यातु तु गंगां देवः तातु तु लोक-  
द्वजान्तेन पश्चात्प्रयात्तेऽपाप्ति-नष्टो इति तु गंगां देवः  
वतान् । हस्तिरथाकारः त्रिसाम्याद्य, तेजोः त्रिसाम्य-  
द्युम्याकाराद्य रथाद्याद्य वतानः, संप्रभिरात्, रुद्रात्, वैर-  
भितिरुचिं, वैननकर्षणः पाता: प्रपञ्चः । अन्योऽपि त्रिसाम्याद्य  
गागतु गढान् पो रातीतिरातामिग्निः । पश्चेति, त्रिभिरादिगोप्य-  
कारः । पिंख गूढित तजामनेगेत, पुराणात् पार्वी, लोकांकोऽ-  
श्रीपतीभूषिः, नोदनेपापहे, प्रतीकाङ्गः गदयः, विड्या उग्रामा, ५  
घुक्कनेः भनिष्यन्तीप्रगागमंसिद्धिः गृचिता । प्रनिपानेन प्रनिदृतिना  
द्युमेनिगावत् । अगन्देहेन उत्तरेन्द्रानन्ता, ऊर्मिमत्तरद्वा: उत्कल्पाच,

मालाकुलां, बद्ध्येत्प्रकृतिमिवदर्शितावर्ती, वाञ्छे-  
वतामिव पाठीन शालाश्रितां, यमिमनोदृत्तिमिव अस-  
कृदाकलितनकां, भोज्यभवनभूमिमिवविविधावहार-  
गम्भृतां, क्वचित् मरसीहृदवनीमिव तरणि विलमितां  
क्वचित् दण्डकामिवागाधकवन्धां, क्वचित् द्रुमशाखा-  
मिवोक्तानपुष्करां, राजन्यस्यापि केवलेन तपोदक्षेन  
ब्रह्मर्षितां गतवतो नृतनविधे स्त्रिरांकुशोकवाग्धिव-  
हित्रस्य विश्वामित्रस्य भगिनीं भगवर्तीं कौशिर्कीं द-  
दर्श । तत्रच विहितस्नानादिकृत्यः कृतिपयेनवा-  
सरेणसरणिक्रमेण प्रवणीकरणोच्चाटनादिपटलपरिपाटी  
पाटवित चाङ्गतरटितजनसंकटं, वाटनिकटवर्तिवाटि-  
काघटित मनोरमकमलाकरणकुसुमपरिमलमयामो-

दि मलयमारुतान्दोलित मिलितमिलिन्दवृन्दमालती  
ब्रततिनिकेतनान्तिकसञ्चमाणचाम्पेयश्चिह्नचिरतनु  
लताभिर्मूर्गलोचनाभिः चीनमेचकसिचयाश्वित प्रक-  
टितप्रायस्तनगिरीशावलम्बि वन्धनातिविभ्यत्कुन्तल  
मुजङ्गमसंयमनञ्जन्नदूरीकृतदुकूल त्रिवलिवाहुमूल  
दर्शनेन वशीकृतैः, कटाक्षविशिखनि क्षेपणेनवेष्ठित  
हृदयैरध्वगसमुदयैससङ्कटं, तपनीयकान्त्याऽपिश्याम-  
या प्रमदया, विभक्तेनाप्यपृथरजनेन

माला परम्परा । आवर्तः अमासांत्रमः, शास्त्राधावृत्तिश्च । पार्वीन  
शालाश्रितां पार्वीनशालास्पां मत्स्यविशेषाभ्यामाश्रितां पाठकजनागारमा-  
भितांच आकृक्तिः दृष्टोविष्याकृतश्च । नक्षत्रदभिषानो जलचरविशेषः  
नासाग्रन्तक्रम् “नासाग्रेचित्तसम्बित्” इति हि पातञ्जलसूत्रम् । अवहारो  
ग्राहः शर्करादिस्वादूकृतं भक्षणीयक्षच । तरणिः नौकादिवाकरश्च । दण्ड  
काढण्डकारण्यम्, अगाधकवन्धां गम्भीरजलां शश्वस्थितस्तवन्धाभिषदा  
नवांश । उत्तानपुष्कराम् अगमीरमलिलाम् ऊद्दर्वास्य शयितविहगांश्च ।  
पटलंसमूहा, पाटवितः पटः, चाटु प्रियम्, सङ्कटं व्यासम्, वाटः पथः,  
घाटिश उपषनम्, घटितः निर्भितः, गिरीशः हिमाचलः शिवश्च, वि-  
भ्यदिति, इतरोऽपिदन्वनाद्विभ्यत् शिवमवलम्बत इति, सङ्कटं दुस्तरम्,  
तपनीयं सुदर्शनम्, श्यामया श्यामकरूपया मुग्धयौवनयाच, विभक्तेन पृथग्मू-  
तेन विशिष्टभवतेनच, अपृथग्मूतजनभिन्नेन, अदामरणनीदेनच  
जनेनचालितं, विष्णाशुगशासनैकपरवर्णं, प्रति  
निधिमिव विद्याधरपुरस्य, तौर्यत्रिक निर्माणसीमान

मिव विश्वकर्मणः अध्यापनालयं कलाकलापस्य,  
 प्रयोगधाम काम कामाख्याद्यागमाभिधेयस्य, तिल-  
 कातिललितालिकानां, यौवनमददेशितविदग्धताना-  
 विसुग्धनैगमानां, कामकुलदेवतानां, सुक्तावर्लभिषि-  
 निषेवितोग्रकुचशालिनीनाम् अंशुकोचितकृत्यकारि-  
 चिकुरस्थितीनां, बहुविधासप्तनरत्नमालिकाच्छ्लेष-  
 ग्रहगणमपिवशमानयन्तीनां, बलिन्नयवलिततया वै-  
 रोचनिपुरीतोप्यधिकश्रियमावहन्तीनां, स्मरणगोचरी-  
 कृतशरीरमपिस्मरं सपदिनरुणयन्तीनाम्, उज्ज्वलम-  
 तिमतीनाम्, इतस्ततोभ्रमन्तीनां, रमणीमणीनां म-  
 णिमयमञ्जुमञ्जीर शिङ्गिर्जर्तर्मनोहरं. बहूमूमिभूषा-  
 करं नगरं समाससाद् । यत्र यमः केशपाशेषु, निय-  
 मोनखक्षतेषु, आसनवन्धो निधुवनेषु, प्राणायाम-  
 स्तदवसानेषु, प्रत्याहारश्चेलाञ्चलेषु, धारणा वक्षोर्हे-  
 षु, ध्यानं विटपायगामिषु वलीमुखेषु, समाधिसुरता-  
 न्तरालेषु, वन्धनविसुक्ति-

वलिनं भूषितम्, शावनैकेनिष्ठेन गवशागानपागवश्यविशेषजमानामि-  
 गतिश्चयं द्युद्वयनि । वौर्यनिकं नृपतिवाद्यम् । मयोगोऽनुष्ट्रानम्, श-  
 ळोऽपाटः, शौरनमदेशिरोऽनेत दग्धोऽनेताजन्यनं गम्भेते, गैषपाता-  
 का त्रिपदेदित्य । मुक्तावर्त्ताविः सीकिर्माकाविः मुक्तजन्मार्त-  
 दित्य, उद्दृशः रामः द्विरोगादृशः । शेषुतोनिर्यनि, गैषपाता-

त्वं अपाप्नेति एव विषयं शास्त्राणां, अस्य विद्युत्तम-  
त्वं अपाप्नेति एव, अपाप्नेति विषयं विद्युत्तमत्वं । इतीव  
महते विद्युत्तमाणां, एवं विद्युत्तमत्याकरणं,  
विद्युत्तमं विद्युत्तमत्याकरणं विद्युत्तमं एवं विद्युत्तमं,  
विद्युत्तमं विद्युत्तमत्याकरणं विद्युत्तमं एवं विद्युत्तमं,

देवतान्तरे विद्युत्तमव्याजिर्ग्राम वर्णकामिनीनां  
विद्युत्तमविद्युत्तम इष्टाग्रवृथिव विषयत्वल प्रतिकृतिपै-  
तवेद द्रवन्ति विद्युत्तमाः विद्युत्तमाः । गत्यजशक-  
ठेत चन्द्रगदर्घ्यनान्तरिक्षामित्य विद्युत्तमानाम् ।  
तत्राय परिवायमप्यत्यन्तर्याम्य चामिप्रायं नाकना-  
यविनिकायं मार्गमाणो मार्गमिलितमान्त्रकस्तोमानु-  
पीयमानमिलसावोऽमिरामिकुहचिदाराम चन्द्रिकाद-  
पविष्यभूतयाऽस्थिर्यया नवविशल्यश्यामलकमलमा-  
लावलनजनितयन्दिरयापरयाच शोभन, भवपुटमेद-  
नद्वारदर्शनद्वेषणावलादनकवाटयुग्मापतं, भारत-  
व्याहृतमिव सानेकपताकर्णलूपं प्रकटितेहामृगंच,

मिव विश्वकर्मणः अध्यापनालयं कलाकलापस्य  
प्रयोगधाम काम कामाख्याद्यागमाभिधेयस्य, तिर्थ-  
कातिलितालिकानां, यौवनमददेशितविदग्धतानां  
निसुर्घनैगमानां, शामकुलदेवतानां, मुक्तावलीभिर्यि  
निषेचितोग्रकृतशालिनीनाम् अंशुकोचितकृतशारी  
विहृस्थितीनां, बहुविवासपत्नरत्नमालिकालकालं  
ग्रहणमपि शमानयन्तीनां, वलित्रयनलिततया वे-  
गेचनिषुगीतोपथिकश्रियमानयन्तीनां, स्मरणगोनी  
कृतशरीग्रपिस्मां पपदितरुणगन्तीनाम्, उदायम्  
तिप्रतीनाम्, इन्द्रियांश्चन्तीनां, गाणीपाणीनां म  
ग्रिम्यपद्मुमञ्जीर्णितज्ञतीनोहां, नक्षत्रमिम्बा  
कां नगां नमामसाद् यत्र यमः कर्माशया, तिर्थ-  
मानवत्वन्तेषु, भागवत्वन्त्वां तिषुवन्तेषु, ग्रामाणां  
स्वदद्वयन्तेषु, प्रस्यादामश्चकान्तकायु, शाम्या वर्णाण्य-  
षु, व्याख्यातिराधरामिषु च दीपुषेषु, गताविमाना-  
स्त्रावर्णेषु, वस्त्रवर्णदिग्भूतिः.

स्त्रियो विकल्पेषु विकल्पेषु विकल्पेषु विकल्पेषु विकल्पेषु  
विकल्पेषु विकल्पेषु विकल्पेषु विकल्पेषु विकल्पेषु विकल्पेषु  
विकल्पेषु विकल्पेषु विकल्पेषु विकल्पेषु विकल्पेषु विकल्पेषु  
विकल्पेषु विकल्पेषु विकल्पेषु विकल्पेषु विकल्पेषु विकल्पेषु

ॐ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ॐ (१६१)

अथ निशीथे कौतृटलियेषु नागरिकेषु केनचि-  
न्मान्त्रिकेणादसीय शोलितविद्धिशालितापरिचित्ती-  
पारुतोऽशायन प्रणालिक्ष्या किंयदुदानीयमानो देव-  
नाथः पायथ्रमनादयोऽपि निदया भयादिव सपदि  
निराकृतं नयन नलिनं निशायामपि समुन्मीलयन्,  
ऊर्ज्वलध्वानमध्याममानमात्मानं कलयन्नेव केतनीकृ-  
तो नितान्तमातद्वक्तेन, किंहकरीकृतोहृदयकम्पनेन,  
क्षेत्रीकृतो वैवर्ण्येन, विपयीकृतसदकलांगसंगिना स्वे-  
दोदयेन आत्मसात्कृतश्चिन्ता सन्तानेन, आलि-  
हृगितो वाष्पोत्पीडेन, समञ्चितो रोमाङ्चेन,  
निर्कर्तव्यताविमृद्दउदृदशास्त्रीयगृदविपयोऽपि क्षणमु-  
पास्तिपाश्वेऽधो दिक्षुविदिक्षु च प्राक्षिपदिस्मृतनिमेषं  
चक्षुः। ततो हा तात ! हा तात ! नोदीक्षसे मन्दभाग  
धेयं तनयम्, किमेतदक्षस्माद्गपनतं, महीतलं विहा-  
य विहायसमायापितोऽपि अहह नासादयामि स्थि-  
रताम्. किन्तु केनाप्याकृष्णमाण इव कुत्रचिद् व्रजा-  
मि, नजानेकस्यवा कुतोवा विषममिदं विजृम्भित-  
म्, तदेतदपायतोऽह्नाय परित्रायतां परित्रायता मिति-  
तारतारै स्वरै रचेतनेष्वपि निजवेदनाववोध माद-  
धानः प्रतिध्वानरूपेणोपाधिना भवनभित्तिकाऽभिलि-  
खित गीर्वणगणेनाऽपि तरुणकरुणया कृतानुभापणः

नारायणमिव शङ्खचक्राञ्जितं, हरमिवविधृतविशूलं  
 काश्मीरप्रदेशमिवकामनैकसम्पादकं देवीमुपासितु  
 मागतैरिव चित्रस्थितै स्थिदशनिकर्त्तिर्विराजितं, पशुरु-  
 धिरक्ताजिरं श्रीतारामन्दिरं विलोक्यमुदमानुकलु  
 पागमत्, भानुमानप्यध्वश्रमक्तान्तइवसानुमन्तमा-  
 श्रयत् । ततोऽसौ विधिमनुरुद्धयमानोव्यधत्त संध्यास-  
 म्बन्धिकरणीयम्, पूजकेनद्विजेननीराजनायापाहृते  
 द्वारे समपूजयदात्मजोदवचितैरर्चनसमुचितैर्भगवती  
 मकीटलूनैः प्रसुनैः ।

प्रतिकृतिः प्रतिविम्बः, एतेनकपोलेवैमल्यातिशयोध्वन्यते । चन्द्रं  
 वियोगिनीतापदायकत्वाद्विद्युं कर्पुरंच, स्वाभिप्रायं स्वाभिप्रायविषयम् ।  
 नाकनायकनिकायं देवमन्दिरम्, चन्द्रिकाद्वेषविषयभूतया चन्द्रिकाषिक  
 स्वच्छयेति यावत्, वलनंवेष्टनम्, भवेति, तन्मन्दिरकवाटं इष्टवन्तोनपुन  
 संसारमायान्तीतिभावः । भारतव्याहृतं भस्तप्रणीतं नारचशास्त्रम्, १  
 ताका, वैजयन्तीरूपके प्रसिद्धे पताकास्थानंच, शैलूषो विलवृक्षोनरथं,  
 ईहामृगः ईहाप्रधानोमृगः कोक्षः रूपकमभेदश्च, चक्रं यन्त्रविशेषआगम-  
 शास्त्रप्रसिद्धः, अस्त्रविशेषश्च, ताभ्यां मध्येकरेचस्थितत्वादञ्जितम्, विधृ-  
 तेति, अभ्यन्तरे त्रिशूलधारणं वोध्यम् । कामनैकसम्पादकं कामनाया-  
 अभीष्टस्य एकं कामसद्विशस्यादेकस्य पूरकं जनकंच । अजिरम् प्राङ्गणम्  
 सानुमन्तं पर्वतम्, अपाहृते उद्धाटिने, अकीटलूनैरिति कीटेनच्छिद्रित-  
 स्यपुष्पस्य देवार्चने प्रतिपेघस्परणात् ।

अथ निशीथे कौतूहलिकेषु नागस्तिकेषु केनचि-  
न्मान्त्रिकेणादसीय शीलितं छिशालितापरिच्छी-  
षाकृतोऽवायन प्रणालिक्या कियद्गुदानीयमानो देव-  
स्ताथः पाथश्रमगाढ्याऽपि निद्रया भयादिव सपदि  
निराकृतं नयन नलिनं निशायामपि मसुन्मीलयन्,  
ऊर्ध्वमध्यानमध्यासमानमात्मानं कलयन्नेव केतनीकृ-  
तो नितान्तमातङ्केन, किङ्करीकृतोहृदयकम्पनेन,  
क्षेत्रीकृतो वैवर्णेन, विषयीकृतस्सक्लांगसंगिना स्वे-  
दोदयेन आत्मसात्कृतश्चिन्ता सन्तानेन, आलि-  
ङ्गितो वाष्पोत्पीडेन, समज्ज्वितो रोमाङ्गेन,  
किंकर्तव्यताविमुढउद्गृह्यास्त्रीयगृद्विषयोऽपि क्षणसु-  
परिपाश्वेऽधो दिक्षुविदिक्षु च प्राञ्जिपद्विस्मृतनिमेषं  
चक्षुः । ततो हा तात ! हा तात ! नोदीक्षसे मन्दभाग  
धेयं तनयम्, किमेतदक्समादुपत्तं, महीतलं विहा-  
य विहायसमायापितोऽपि अहह नासादयामि स्थि-  
रताम्. किन्तु केनाप्याकृष्यमाण इव कुत्रचिद्वजा-  
मि, नजानेकस्यवा कृतोवा विषममिदं विजृम्भित-  
म्, तदेतदपायतोऽह्नाय परित्रायतां परित्रायता मिति-  
तारतारै स्वरै रचेतनेष्वपि निजवेदनाववोध माद-  
धानः प्रतिष्वानरूपेणोपाधिना भवनभित्तिकाऽभिलि-  
खित गीर्वणिगणेनाऽपि तरुणकरुणया कृतानुभाषणः

पितरं प्राप्नोधयत् । तत् एतदीयादवेदनादर्वापां  
 सर्वानि वद्य विवुद्धपतिः प्रबुद्धस्तदवस्थयायुतं सुनं मु  
 दीक्षय विषयनि चयान् गोचरयितुमाचलन्त्या विन  
 या विनिश्चित्य वृत्तान्तमनाकुलिनमना विष्टक्कदम्  
 पहामि श्राजगदम्बायां अविलम्बित मवलम्ब्यतां प  
 दाम्बुज मित्युदाजहार । अतन्तर मनुष्टितेऽपित्रन  
 यितुर्निदेशिते स्वमिव देव्या अप्यंघ्रिकमलमुत्कामित  
 मवलोक्य हन्त हन्त तामिणीचरणोऽपि चारणगणस-  
 रणि माकृष्यते, हा कष्टम्, किंकरोमि, कंमाश्रयामि,  
 कस्मैनिवेदयामि,

परिच्छीषा परिच्छेच्छा, उच्चायनम् उच्चाटनम्, विद्यायसम् अ  
 काशम्, अपायतोऽन्तरायतः, अद्वायशीघ्रम्, उपाधिना छद्मना, च  
 रणगणसरणिम् आकाशम्,

कागतिः, कउपायः, किंशरणम्, अहो विसद्वश  
 परिणामिता प्रथाणशकुनानाम्, हातात ? हातात ?  
 द्रुतमवतादित्यार्तनादं विललाप । ततो गृह्यतामेतद्दिँ  
 तद्दिँ गोविन्दस्यैव पदाङ्गुष्ठ मित्यनुज्ञयो यितुस्तथैव  
 प्रयतमानो मन्दतममपिनास्पन्दत । अथाधिगत्य प्र-  
 योजनजननचणे निजाचरणे विफलता मक्षीण मन्दा  
 क्षक्षितावसकृत्परीक्षितं सम्भूयसखिभिसमानै स्तम्भ-  
 यितुमुग्रप्रयोग मातन्वानेऽपि तस्मिन् नचमनागपि

॥ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ॥ (१६३)

चचालाङ्गुष्ठं गोविन्दचरणस्य, एवं नवकामिनी कल्पा  
 यिताप्रदासागत प्रियमङ्गलं प्रमदाक्षणकल्पाक्षणदाप्र-  
 तिक्रियेवतस्यक्षयमगच्छत्, उदन्तमेत मादीपयितु-  
 मिवोदियाय मेदुरोरागेण प्राच्याचलचूडामणिस्तरणिः,  
 अमीपासभिमानइव तमोविननाश, गोविन्दगोचरेण  
 नगरमिवारज्यतैन्द्रीवदन मारुणेन रागेण, उद्वजनं  
 प्रयुज्जानानां जनानां समवायइव कैखञ्जनं संकोच  
 माच्छत्, गोविन्दतनयाननमिव कमलकाननं वि-  
 काशपासादयत, विभाकर्गिरणाइवप्रवृत्तिः पुरम-  
 मिव्यापत्, व्यर्थभूतप्रयोगसमुदयारते साक्षोत्तुना  
 तुभावतयाऽवधार्य मिष्टतां प्रवृद्धाभिदर्शनोत्तरलि-  
 काभिराकृष्टा स्वह सहमूण नगर्यास्तिनां समाशय  
 निटिलतटनिहिताऽजलिपुटाः प्रणिपत्याभिनव भो-  
 धरधीरथनिगम्भीरस्तरघया गिरा गोविन्द मेडयद,  
 स्तुतिभिरेषपरितोपितश्चतेनिश्चलतारकेण लोचनेन  
 निषीयमानो नूनमय मनूनः प्रभावो भगवत्या भक्त  
 श्वशवारिनिष्ठितारिण्या इश्व्रीतारिण्या श्वरणमारनरपे  
 वेत्यभिपाय प्रशंसाभिस्तानभ्यनन्दयद् ।

अथ संज्ञातदिशमयात्स्माङ्गगग्निर्गत्य नादिर्ज-  
 न दिवसेन नीलाचलानिपादनदन दिनप्रस्तनित-

पितरं प्राप्तोधयत् । तत एतदीयादावेदनादर्वाग्ने  
सर्वानवद्यविबुधपतिः प्रबुद्धस्तदवस्थयायुतं सुतं स्तु  
द्वीक्ष्यविषयनिचयान् गोचरयितुमाचलन्त्या विल-  
या विनिश्चित्यवृत्तान्तमनाकुलितमना विपत्कदम्  
पद्मारि श्रीजगदम्बार्या अविलम्बित मवलम्भ्यतां प-  
दाम्बुज मित्युदाजद्वार । अनन्तर मनुष्टितेऽपिज्ञ  
यितुर्निर्देशिते स्वमिवदेव्याअप्यंघ्रिकमलमुत्कामित  
मवलोक्य हन्त हन्त तारिणीचरणोऽपि चारणगणस-  
रणि माकृष्यते, हा कष्टम्, किंकरोमि, केमाश्रयामि,  
कस्मैनिवेदयामि,

परिचिचीया परिचयेच्छा, उच्चायनम् उच्चाटनम्, विहापसम्  
काशम्, अपायतोऽन्तरायतः, अद्व्यायशीघ्रम्, उपाधिना छद्मना,  
रणगणमरणिम् आकाशम्,

कागतिः, कउपायः, किंशरणम्, अहो विसद्दृश  
परिणामिता प्रथाणशकुनानाम्, हातात ? हातात ?  
द्रुतमवतादित्यार्तनादं विललाप । ततो गृह्यतामेतदि  
तर्दि गोविन्दस्येव पदाङ्गुष्ठ मित्यनुज्ञयो पितुस्तथेव  
प्रयतमानो मन्दतममपिनास्पन्दत । अथाधिगत्य प्र-  
योजनजननचणे निजाचरणे विफलता मक्षीण मन्दा  
क्षक्षितावमकृत्परीक्षितं सम्भूयसखिभिसमानै स्तमुद्द-  
यितुमुग्रप्रयोग मातन्वानेऽपि तस्मिन् नचमनागपि

॥ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ॥ (१६३)

वचालाङ्गुष्ठं गोविन्दचरणस्य, एवं नवकामिनी कल्पा  
 यिताप्रवासागत प्रियसङ्गत प्रमदाक्षणकल्पाक्षणदाप्र-  
 वतस्यक्षयमनञ्जत्, उदन्तमेत मादीपयितु-  
 मिवोदियाय मेहुरोगमेण प्राच्याचलचृडापणिस्तरणिः,  
 अमीपायभिमानह्व तमोविननाश, गांविन्दगोचरेण  
 नगरमिवारज्यतैन्द्रीवदन मारुणेन गगेण, उद्वजनं  
 प्रयुञ्जनानानां जनानां समवायह्व केरवदनं संकोच  
 माञ्चत्, गोविन्दतनयाननमिव कमलकाननं वि-  
 काशमासादयत्, विभाकर्गकिरणावैपाप्रवृत्तिः पुग-  
 मिव्यापत्, व्यर्थभूतप्रयोगसमुदयास्ते माशात्कृता  
 नुभावतयाऽवधार्य मिछ्दतां प्रवृद्धाभिदर्शनोत्तिलि-  
 काभिराकृष्टा स्वह सहस्रेण नगस्वामिनां समायाय  
 निटिलतटनिहिताङ्गलिपुटाः प्रणिपत्याभिनव गभो-  
 धरधीरध्वनिगम्भीरस्त्रधया गिरा गोविन्द मेहवद्,  
 सुतिभिरेपपरितोपितश्चतेर्निश्चलतारवेण लोकनेन  
 निपीयमानो नूनमय मनूनः प्रभावो भगवत्या भक्त  
 हेशवाग्निपितारिण्या इथीतारिण्या श्ररणमारनस्ये  
 वेत्यभिपाय प्रशंसाभिरतानभ्यनन्दयत् ।

अथ संज्ञातविश्वयात्समाज्ञगग्निर्गत्य नाधिर-  
 न दिवसेन नीलाचलानिपावनदन दिव्यस्तहित-  
 । १) एवेनि दा लाः । २) एवेनि दा लाः ।

पितरं प्रावोधयत । तत एतदीयादावेदनादर्वा<sup>३</sup>  
 सर्वनिवद्यविबुधपतिः प्रबुद्धस्तदवस्थयायुतं सुतं  
 दीक्ष्यविषयनिचयान् गोचरयितुमाचलन्त्या ।  
 या विनिश्चित्यवृत्तान्तमनाकुलितमना विपत्तदा<sup>४</sup>  
 पहारि श्राजगदम्बार्या अविलम्बित मवलम्ब्यतां ।  
 दाम्बुज मित्युदाजहार । अनन्तर मनुष्टितेऽपि न  
 यितुर्निदेशिते स्वमिवदेव्या अप्यंघ्रिकमलसुत्कामिन्  
 मवलोक्य हन्त हन्त तारिणीचरणोऽपि चारणगणस-  
 रणि माकृष्यते, हा कष्टम्, किंकरोमि, किंमाश्रयामि,  
 कस्मैनिवेदयामि,

परिचिचीपा पर्वियेच्छा, उच्चायनम् उच्चाटनम्, विद्यापत्त-  
 काशम्, अपायतोऽन्तरायतः, अद्वनायशीघ्रम्, उपाधिता उद्दना,  
 रणगणसरणिम् आकाशम्,

कागतिः, कउपायः, किंशरणम्, अहो विसद्यु  
 परिणामिता प्रथाणशकुनानाम्, हातात ? हातात ?  
 द्रुतमवतादित्यार्तनादं विललाप । ततो गृह्यतामेती  
 तर्हि गोविन्दस्येव पदाङ्गुष्ठ मित्यनुज्ञयो पितुस्तये  
 प्रयतमानो मन्दनगमपिनास्पन्दत । अयाधिगत्य  
 योजनजननचणं निजाचाणे विफलता मक्षीण मन्त्रा  
 क्षमितावस्तुतर्गाभिनं सम्भृयमविमिसमग्नं समुद्ध-  
 यितुमुग्रदयोग मातन्वानेऽपि तस्मिन् नवयनागति

वचालाङ्गुष्ठं गोविन्दचरणस्य, एवं नवकामिनी कल्पा  
येताप्रवासागत प्रियसङ्घन्त प्रमदाक्षणकल्पाक्षणदाप्र-  
तेकियेवतस्यश्चयमगच्छत्, उदन्तमेत मादीपयितु-  
मेवोदियाय मेदुरोरागेण प्राच्याचलचूडामणिस्तरणिः;  
प्रमीषामभिमानह्व तमोविननाश, गोविन्दगोचरेण  
गर्वमिवारज्यतैन्द्रीवदन मारुणेन रागेण, उद्वजनं  
युज्जानानां जनानां समवायह्व कैववनं संकोच  
। अच्चत्, गोविन्दतनयाननमिव कमलकाननं वि-  
ष्णशमासादयत्, विभाकर्गकिरणाइवैप्रप्रवृत्तिः पुरम-  
भेद्यापत्, व्यर्थीभूतप्रयोगसमुदयास्ते साक्षात्कृता  
उभावतयाऽवधार्य सिद्धतां प्रवृद्धाभिदर्शनोत्कलि-  
ष्टाभिराकृष्टा स्पह सहमैण नगरवासिनां समायाय  
निटिलतटनिहिताङ्गलिपुटाः प्रणिपत्याभिनव भो-  
वधीरध्वनिगम्भीरस्त्रिरध्या गिरा गोविन्द मैडयद्,  
स्तुतिभिरेषपरितोपितश्चत्तर्निश्चलतारकेण लोचनेन  
निपीयमानो नूनमय मनूनः प्रभावो भगवत्या भक्त  
कृशवादिनिधितारिण्या इश्व्रीतारिण्या श्रणसारस्पस्यै  
वेत्यभिधाय प्रशंसाभिस्तानभ्यनन्दयत् ।

अथ संज्ञातविश्मयात्तस्मावगराङ्गिर्गत्य नाधिके-  
न दिवसेन नीलाचलातिपावनवन विन्यस्तनिल-

[ १ ] क्षयेति या पाठः । [ २ ] करतिकरति या पाठः ।

## या, नरहरिणनायका

विसद्वशेति असम्यक्येतिभावः । एतहि अधुना, चणे खण्डे, तौभूपौ, तं देवनाथम्, असकृत्परीक्षित मित्युग्रप्रयोगविशेषणम्, उद्ज्ञानं तिमिरंच, रागेण प्रेम्णा रक्ततयाच, उद्वजनमुष्वाटनम्, निलो भाळः, ऐडयन् अस्तुवन् अनूनः सर्वः, । नरहरिणनायको नरा-

कृतिमिव पूर्वकाष्ठाकलितोदयां प्रहलादेष्टदायिर्नीच, नारायणमूर्तिमिव ब्रह्मपुत्रोपास्यमानपादां, विष्णु भूमिमिव भैरव भ्राजितां घण्टारवाज्ज्वताङ्गं, रक्तादिस्थायिभावाभिव्यक्तिमिव प्रतीतानुभावां सुकृतभूतेनलभ्यां च, उद्यदादित्यमण्डले नेव रक्तांशुकैन, सूचनीयवृत्तविशेषेणेव चूलिकोद्घासितेन, विष्णुविवेकेनेव गण्डनविकाशितेन, हण्डिहरप्रणयिमानसेनेव विलसत्केशवेशेन, ममीचीनचित्रेणेव दिव्यवर्णभासुरेण, नीलकण्ठेनेव कौमागमोदकरेण, कुमारिकानिकरेण, नोन्यमानां दैवतैरिव कामरूपवर्तिगिः कञ्जुर्छिजनंसिव शुद्धान्तस्थितेः, अमाध्यमिकांगिन्यकृत विषयिभिः, दहन दग्धगजार्द्दरपि राजप्रिपैः विप्रेः पूज्यमानां, होमधूमधूमग्रित शशधरोहेत्विशिश्वगानिमुन्दरमन्दिगां, गद्दुत्तादयित्रीमपि सूक्ष्माम, अनाध्रितामापि व्यापिकां, प्राचीस्थितामपि इति, पूर्वादायां भाद्रा कर्त्तोदर्शित उदयोपता, पूर्व काष्ठा-

## श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ३३ (१६५)

वाऽर्थः, प्रह्लादेष्टद्यिर्ना प्रह्लादः प्रकृष्टभासोदस्सपेष्टस्तस्य, प्रह्ला-  
दस्य हिरण्यकश्चिपोरात्मजस्य यदिष्टं तस्यच इयिकाम्, ब्रह्मपुत्रोनदो-  
नारदश्च, पादः प्रत्यन्तपर्वतः चरणश्च, भैरवादिशबोभयानकोदेशश्च, घ-  
ण्डारवः घण्डायाःशब्दः, घण्डारवाशणपुष्टिका । प्रतीतः ख्यातोङ्गातश्च,  
अतुभावः प्रभावस्त्वेदादिश्च. सुहृतेति, ह्रितीयस्ते “पुण्यवन्तः प्रमिण  
न्तियोगिद्द्रसमन्ततिम्” इत्यमिधानान्नानुपपत्तिः, अंशुरुच्छनम् अंशुकः  
किरणः, चूलिकाचूर्णीकाषाभरणम् “अन्तर्यवनिकासंस्पैश्चूलिकार्धस्य  
सूचना” इत्युक्तक्षणसूचनादिवेष्ट, विषिद्धिवेष्टकोमीमांसानिवन्धः,  
मण्डनं भूषणं मण्डनमिश्रशमण्डनः, केशवेशः केशरचना केशवेशश केशव  
ईशाशिशवश्च, दर्णःस्वल्पं जातिः नीलपीतादिश्च, नीलकण्ठोमयूरशिशव-  
श, लौमारामोदः धैशवस्य कात्तिकेयस्यचापोदः, नोनूयमाना पर्तिशयेन  
स्तूयमानाम्, कामरूपवर्तिभिः कामरूपे तःभिषानेदेशे इच्छाधीनरूपे च  
स्थितैः, कञ्जुकिज्ञैः, “अन्तः पुरुचोद्भ्दो विप्रोगुणगणान्विनः, सर्व  
शास्त्रार्थतत्त्वः कञ्जुकोत्तरनिधीयते इत्युक्तक्षणगैर्चैकैः, शुद्धान्तस्थितैः  
विपडान्तः करणे राजावगेषेच स्थितैः, माध्यमिको विषयज्ञानयोरसत्य-  
त्ववादीयुद्धप्रधानशिष्यः, विषयि इन्द्रियं विषयविशिष्टं ह्यानं विषयोङ्गानं  
वेतिपावत्, राजाईः राजयोग्यं च स्तु अग्रहश्च, शशधरोल्लेखशिखरेत्यने-  
नौक्षत्यं पन्दिते व्यज्यते, महत् प्रह्लादरिमाणविशिष्टं प्रह्लत्वमन्तः कर-  
णं च, सूक्ष्माम् अणुस्वरूपां निरचयद्वद्वरूपां च, सूक्ष्मतरोपादानत्वनेव  
भवति सूक्ष्मस्पन्दनुमद्दुपादानन्व विति विगोष्टिभावः । अनाधिता प  
वृत्तिभूतां कारणानाश्रितां च, एतैः विशेषज्ञैर्मूलपठत्वरूपत्वं कामाख्या-  
यां व्यज्यते, “सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिः” “हेतुमदनित्यमव्यापिनक्रिय  
मनेकप्राश्रितं लिङ्गम्, सावधं परतन्त्रं व्यक्तं, विशरीनमव्यक्तम्” इति

## यां, नरहरिणनायका

विसद्येति असम्यक्तयेतिभावः । एतद्द्वि अधुना, चणे स्तु  
तौभूपौ, तं देवनाथम्, असकृत्परीक्षित मित्युग्रपयोगविवेषणम्,  
इज्ञानं तिपिरंच, रागेण प्रेम्गा रक्तनयाच, उद्व्रजनमुद्वाटनम् ॥  
लो भालः, ऐडयन् अम्तुवन् अनूनः मर्वः, । नरहरिणनायको ना

कृतिमिव पूर्वकाषाङ्कलितोदयां प्रहलादेष्टदायिर्वा  
च, लारायणमूर्तिमिव ब्रह्मपुत्रोपास्यमानपादां, विरि  
न भूमिमिव भैरव भ्राजितां घण्टारवाज्जिताज्ज्व, र  
त्यादिस्थायिभावाभिव्यक्तिमिव प्रतीतानुभावां सुरु  
तभृतेनलभ्यां च, उद्यदादित्यमण्डले नेव रक्तांशुरु  
न, सूचनीयवृत्तविशेषेणेव चूलिकोद्घासितेन, विषि  
विवेकेनेव गण्डनविकाशितेन, हव्हिरप्रणयिमानसे  
नेव विलसत्केशवेशेन, ममीचीनचित्रेणेव दिव्यवर्ण  
भासुरेण, नीलकण्ठेनेव कौमाण्यमोदकरेण, कुमारिका  
निक्ररेण, नोनुयमानां दैवतैरिव कामरूपवर्तिभिः  
कञ्चुकिजनैरिव शुद्धान्तस्थितैः, अमाध्यमिकैषि  
न्यकृत विपयिभिः, दहन दग्धराजाहैरपि गजप्रिपै  
विप्रेः पूज्यमानां, होमधूमधूमरित शशधरोलेखि शि  
खगतिसुन्दरमन्दिग्म, मट्टुत्पादयित्रीमपि सुखमाम  
अनाश्रितामपि व्यापिकां, प्राचीस्थितामपि  
पूर्वेति, पूर्वकाषायां शान्त्यां कलितोदर्शित उदयोपया, पूर्व काषार्वा

## ❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी उरितम् ❀ (१६५)

वाऽर्थः, प्रह्लादेष्टदायिनीं प्रह्लादः प्रकृष्टआमोदसप्तवेष्टस्तस्य, प्रह्ला-  
दस्य हिरण्यकशिपोरात्पञ्चस्य यदिष्टं तस्यच दायिकाम्, ब्रह्मपुत्रोनदो-  
नारदश, पादः प्रत्यन्तपर्वतः चरणश्र, भैरवशिश्वोभयानकोदेशश्र, घ-  
ण्टारबः घण्टायाःशब्दः, घण्टारवाशणपुष्टिका । प्रतीतः ख्यातोज्ञातश्र,  
अनुभावः प्रभावस्स्वेदादिश्व, सुकृतेति, द्वितीयपक्षे “पुण्यवन्तः प्रमिणव  
न्तियोगिवद्रससन्ततिम्” इत्यमिधानान्नानुपपत्तिः, अंशुकंवसनम् अंशुकः  
किरणः, चूलिकाचूर्छीत्राक्षामरणम् “अन्तर्यवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य  
सूचना” इत्युक्तलक्षणसमूचनाविशेषश्र, विविविवेकोमीमांसानिवन्धः,  
मण्डनं भूपणं मण्डनमिश्रथमण्डनः, केशवेशः केशरचना केशोवेशश्र केशव  
ईशशिशवश्व, वर्णःस्वरूपं जातिः नीलपीतादिश्व, नीलकण्ठोमयूरशिशव-  
श्र, कौमारामोदः शैशवस्य कार्तिकेयस्यचामोदः, नोनूयमाना मतिश्वयेन  
स्तूयमानाम्, कामरूपवर्तिभिः कामरूपे त्रभिधानेदेशे इच्छाधीनरूपे च  
स्थितैः, कञ्चुकिजनैः, “अन्तः पुरचरोटदो विप्रोगुणगणान्वितः, सर्व  
शास्त्रार्थतत्त्वः कञ्चुकीत्यमिधीयते इत्युक्तलक्षणैर्लोकैः, गुदान्तस्थितैः  
विप्रान्तः करणे राजावगेधेच स्थितैः, पाध्यमिको विषयज्ञानयोरसत्प-  
त्वचादीमुद्धप्रधानशिष्यः, विषयि इन्द्रियं विषयविशिष्टं ज्ञानं विषयोज्ञानं  
चेतियावत्, राजार्हः राजयोग्यवस्तु आगस्त्य, शशधरोल्लेखिशिखरेत्यने-  
नौन्नत्यं मन्दिरे व्यज्यते, मद्दत प्रह्लादिमाणविशिष्टं प्रह्लत्त्वमन्तः का-  
णंच, सूक्ष्माम् अणुस्वरूपां निरवद्रवद्यस्त्वांच, सूक्ष्मतरोपादानत्वमेव  
भवति सूक्ष्मस्यननुपद्वापादानत्वं विति विरोधतिभावः । अनाधिता म  
वृत्तिभूतां कारणानाधितांच, एतैः विशेषणैर्मूलपकृतिरूपत्वं कामाख्या-  
यां व्यज्यते, “सौक्ष्म्यात्तदनुपलविदः” “हेतुपदनित्यपव्यापिमक्षिय  
मनेकमाश्रितं लिङ्गम्, साक्ष्यवं परतन्त्रं व्यक्तं, विपरीतपव्यक्तम्” इति

साहृदयकारिकायामीश्वरकृष्णेनाभिवानात् ॥

दक्षिणपद प्रापणीयां, प्रतिपेधितसुरास्पर्शनविदि-  
जन्मनस्सुरालयं नयमानां, भारतवर्षप्रमुखभूपां, का-  
माख्या मधिदर्श मपरोक्षलक्षणदेवता दर्शभूतां, ददर्श ।  
तत्र च तां समाराधयदागमोदितैर्मोदितः प्रकारैः, व-  
पुरमार्जयन्मण्डलेषु कुण्डस्य, अशनवमनमण्डनशुभ्न  
दानेवृन्दान्यमानयक्षमाग्निकाणाम्, अतोपयन्न देवी  
सपर्याप्यग्यणात् द्रिजातीन्, अतनोदात्मजन्मनोम  
नोस्माधनोपाय मवधानेन, गिरिगुहागृहे गृहीतवासो  
विलोक्यन् गमणीयं नदनां नदतरंगाणां दिष्टा  
वद्विष्टं हृष्ट मानसोऽव्यनिष्टुत । अथ गणा  
त्रापगमेऽभिनवमीपन्तिनी मन्दाक्षेप्यवक्षेपणशीय  
माणेषु शंखलिनीजलेषु, पृथुवृद्धवधात्र्याः पर्याधा-  
नि तीव्रदीधिनिक्षे, सेव्यद्वलनाजनस्तन नितम-  
शेषाम्भालनेविग्नेश्वरानां श्रृणुनिग्लितेषाम्भाः  
वद्विग्नेविनमभिमन्यायदग्नं कृशानुरुणकटम्बर-  
दिव किञ्चनिकर्मनवान्कमलिनी दामुनेनासीर्णमा-  
द्यद्युम्भीश्वर व्रमदाकुचनविर्गं सवनि आग्निं  
दिवस्युपिलय विगमनादिवमनात् स्वायपानं परा-  
क्रमेत्, आर्द्धम् द्वायत्रयमन्नाभितपनिश्चान्नापा-



कान्ताकरकुशेशयेषु, जघनघनाघातमसहमानेनेव  
 नितम्बिनीनां क्रीडारवकैतवेन तारमारुदता पुलिने  
 पलायमानेन पाथसा प्रसादितेषु. हृदयस्थिति वाञ्छ  
 येव स्मणीनां श्रुतिपद प्रविष्ट पयोव्युदसनव्याधूयमा  
 नेनमूर्धा मञ्जुलेषु, अभिजात जलजातजलजातकौ  
 तृहळेषु मनोहरेषु, चरमाचलचृडान्तिकचलत्तरणिकि  
 रणाकलित निस्तलसमीरणायनजालकसमीपे समी  
 हयापुरसुषमावलोकनस्य स्थितानां वनितानां सपदि  
 पाटीरपङ्कानुलेपित स्तनतनूदगवदनेषु शोभामावहतः  
 सुकुद्धमस्थासकस्य पुरःस्थापित हाटकमृदुलदलपुटित  
 ताम्बूलबीटिका परिपूरित शातक्रमभभाजनभ्राजितसु  
 ध्रांशुविशद पर्यङ्किकासमासीनोऽज्जवलवेशशालिनी  
 नां क्लाकलापप्रवीणानां, वचनरवरविजितवीणानां,  
 व्यजनवातविधूयमान वाहुव्रतति वक्षोरुहवदनवम-  
 नानां वारविलासिनीनां, तैस्तेविर्विचेष्टिं गमनपथेन  
 प्रशान्तताप तयारमणीये वासरावसाने विहरतामहं  
 दृनां दृनां विमुह्यमानेमनसि, अनिकामति निदाष्ठ  
 ममयेऽविलम्बित मप्रवामिदपर्वापनक्षमं वर्णगमं  
 विभावयन्न मकुन्नममूर्त्य जगज्जननादिशक्तिनर्ती  
 मनङ्गवर्तीमगवर्ती ग्रामाय गुणग्रामायनाय पगवर्तन।  
 एवं तत्तदिष्पर्वायणेन सुपुनिशेष माणुवन इति

रापकृत्य तया प्रहृष्टचेता व्यर्तीत्यायानेन कतिपयाने  
इसोगेदं प्रीतिकेतनेन तनयेन समं समाययौ । एतदी  
यादागमनात्पुरैव प्रश्नित्यागत्यकीर्तिर्भुवनतलसुद्धा-  
सयन्ती प्राचीकशचेतां सिचिरं चातकायितानि-  
वन्धुतानाम्,

घनः सान्द्रः, पापसाज्ज्वेन, प्रसादितेषु प्रसन्नतां प्रापितेषु रमण्ये  
प्रितियावत्, अभिजातेति, अभिजातं रचिरं जछजातं कागङ्गं  
यत्र तस्मिन् जलेजातेषु कौतुल्येषु इत्यर्थः । निस्तलसमीरणायनजातकं  
र्तुकं गवास्तजाङ्गकम् । तनुदरं, छशोदरम् । स्थासकस्य चाचिवदस्य ।  
उच्छब्दवेशः, विमलवेशः, धूगारवेशश्च । तैस्तैः. अनिर्यदनायैः । जन-  
नादीति. आदिनास्थिति प्रलययोः परिग्रहः । जनध्वतीम्, अशर्णि-  
णीम्, शुणेति, गुणानां ग्रामैः समूहे रायताय पिरहृताय । शायानेन,  
आगमेन । अनेदसः, कालान ॥

मिलिताश्रता गोविन्दमध्यनन्दयज्ञादैः प्रणयातिशा-  
यावदोधनकरैः । अथ वादिसानसमानोन्माधवरो दे-  
वनाथश्चिरमागमोदीरितोचित क्रियाप्रचयाचरणेन वि-  
रचनेनच तन्त्रकौसुदीपराध्यगमनिवन्धानायविन्द-  
तानन्यगामिनी गागमाचार्यपदवीम् । एतेनसद्वता  
श्रसकलाएवसोदरा अनुदिनं तातपादमापादयन्सुदिन  
मतितमां नवनवैः शास्त्रीयदत्त्यन् कौशलैः । पिता  
ष समुचिताचार मकारयत्तुलकन्यकारत्नं पदिग्नेय-

कान्ताकरकुशेशयेषु, जघनघनावात्मसहमानेनेव  
 नितमिनीनां क्रीडारवकैतवेन तारमारुदता पुलिने-  
 पलायमानेन पाथसा प्रसादितेषु, हृदयस्थिति वाञ्छ  
 येव रमणीनां श्रुतिपद प्रविष्ट पर्योव्युदसनव्याघ्रयमा-  
 नेनमूर्धा मञ्जुलेषु, अभिजात जलजातजलजातकों  
 तृहळेषु मनोहरेषु, चरमाचलचृडान्तिकचलत्तरणिकि-  
 रणाकलित निस्तलसमीरणायनजालकसमीपे समी-  
 हयापुरसुषमावलोकनस्य स्थितानां वनितानां सपदि-  
 पाठीरपङ्कानुलेपित स्तनतनृदग्धदनेषु शोभामावहत-  
 सुकुङ्गमस्थासक्ष्य पुरःस्थापित हाटकमृदुलदलपुटित  
 ताम्बूलवीटिका परिपूरित शातकुम्भभाजनभाजितसु-  
 भ्रांशुविशद पर्यङ्किकासमार्मीनोड्डवलवेशशालिनी-  
 नां कलाकलापप्रवीणानां, वचनरवरविजितवीणानां,  
 व्यजनवातविध्रयमान वाहुव्रतति वक्षोरुहवदनवस-  
 नानां वारविलासिनीनां, तैर्स्तेविचेष्टिते गसब्रपथेन  
 प्रशान्तताप तयारमणीये वासरावसाने विहरतामहं  
 यूनां यूनां विमुख्यमनेमनसि, अतिक्रामति निदाय  
 ममयेऽविलम्बित मप्रवामिदर्पावपनक्षमं वर्पागमं  
 विभावयन्न मकुन्नमस्फृत्य जगजननादिशक्तिनी-  
 मनङ्गवर्तीभगवतीं ग्रामाय गुणग्रामायताय पगवर्तन।  
 एवं तत्तद्विषयवासणेन मुखविशेष मानुवन रुद्ध-

रापकृत्य तया प्रहृष्टचेता व्यतीत्यायनेन कतिपयाने  
इसोगेहं प्रीतिकेतनेन तनयेन समाययौ । एतदी  
यादागमनात्पुरैव ज्ञातियागत्यकीर्तिर्भुवनतलसुद्धा-  
सयन्ती प्राचीकशचेतां सिचिरं चातकायितानि-  
बन्धुतानाम्,

घनः सान्द्रः, पाथसाजळेन, प्रसादितेषु प्रसन्नतां प्रापितेषु रमण्ये  
त्रेतियावत्, अभिजातेति, अभिजातं रुचिरं जडजातं कमङ्गं  
त्र तस्मिन् जलेजातेषु कौतुक्लेषु इत्यर्थः । निस्तलसमीरणायनजालकं  
रुक्कं गवास्तजाङ्गकम् । तनुदर्शं, कुशोदरम् । स्थासकस्य चार्चिकप्रस्य ।  
उडदलवेशः, विमलवेशः, द्वंगारवेशश्च । तैह्तैः । अनिर्वचनायैः । जन-  
दीति. आदिनास्त्यति प्रलययोः परिग्रहः । अनप्रवतीम्, अशरीरि-  
म्, गुणेति, गुणानां ग्रामैः समूहे रायताय षिस्ततोय । जायानेन,  
आगमेन । अनेहसः, कालान ॥

मिलिताश्रता गोविन्दमध्यनन्दयज्ञादैः प्रणयातिश-  
यावदोधनकरैः । अथ वादिमानसमानोन्माथकरो दे-  
वनाथश्चिरमागमोदीरितोचित क्रियाप्रचयाचरणेन वि-  
रचनेनच तन्त्रकौमुदीपराध्यागमनिवन्धानामविन्द-  
तानन्यगामिनी मागमाचार्यपदवीम् । एतेनसङ्घन्ता  
श्रसकलाएवसोदरा अनुदिनं तातपादमापादयन्सुदिन  
मतितमां नवनवैः शास्त्रीयकल्पनाकौशलैः । पिता  
च समुचिताचार मकारयत्कुलकन्यकारत्नं परिग्रहं-

कान्ताकरकुरोशयेषु, जवनवनावातममहमानेन  
 नितम्भिनीनां क्रीडारवकेनवेन नारमारुदता पुलिने  
 पलायमानेन पाथमा प्रसादितेषु, हृदयस्थिति वाञ्छ  
 येव रमणीनां श्रुतिपद प्रविष्ट पर्योव्युदमन व्याघ्रयमा  
 नेनमूर्धा मञ्जुलेषु, अभिजात जलजातजलजातकौ  
 तृहलेषु मनोहरेषु, चरमाचलचूडान्तिकचलतरणिकि  
 रणाकलित निस्तलसमीरणायनजालकसमीपे समी  
 हयापुरसुषमावलोकनस्य स्थितानां वनितानां सपदि  
 पाठीरपङ्कानुलेपित स्तनतनूदग्वदनेषु शोभामावहव-  
 सुकुङ्कमस्थासकस्य पुरःस्थापित हाटकमृदुलदलपुष्टित  
 ताम्बूलवीटिका परिपूरित शातकुम्भभाजनभाजितसु  
 भ्रांथुविशद पर्यङ्किकासमासीनोज्जवलवेशशालिनी  
 नां कलाकलापप्रवीणानां, वचनस्वरविजितवीणानां,  
 व्यजनवातविधूयमान वाहुव्रतति वक्षोरुहवदनवस-  
 नानां वारविलासिनीनां, तैस्तैर्विचेष्टिते गसन्नपथेन  
 प्रशान्तताप तयारमणीये वासरावसाने विहरतामहं  
 शूनां यूनां विमुद्यमानेमनसि, अतिकामति निदाघ  
 समयेऽविलम्बित मप्रवासिहर्षवापनक्षमं वर्षागमं  
 विभावयन्न सकृन्नमस्कृत्य जगज्जननादिशक्तिनती  
 मनङ्गवतीभगवती ग्रामाय गुणग्रामायताय परावर्तत  
 एवं तत्तद्विषयवीक्षणेन सुखविशेष माप्नुवन् कृतदु-

रापकृत्य तया प्रदृष्टचेता व्यतीत्यायानेन कतिपयाने  
हसोगेहं प्रीतिकेतनेन तनयेन समं समाययौ । एतदी  
यादागमनात्पुरैव ज्ञातियागत्यकीर्तिर्भुवनतलमुद्धा-  
सयन्ती श्राचीकशचेतां सिचिरं चातकायितानि-  
वन्धुतानाम्,

घनः सान्द्रः, पाथसाजळेन, प्रसादितेषु प्रसन्नतां प्रापितेषु रपर्णाये  
प्रितियावत्, अभिजातेति, अभिजातं रुचिरं जडजातं कमळं  
यत्र तस्मिन् जलेजातेषु कौतूहलेषु इत्यर्थः । निस्तलसमीरणायनजालकं  
बर्तुकं गवाक्षजालकम् । तनुदरं, छशोदरम् । स्थासकस्य चार्चिकपस्य ।  
उष्णदलवेशः, विमङ्गवेशः, धृग्गारवेशश्च । तैस्तैः । अनिर्वचनायैः । जन-  
नादीति. वादिनास्त्यिति प्रक्षयपोः परिप्रहः । जनझवतीम्, अशरीरि-  
णीम्, गुणेति, गुणानां ग्रामैः समौ ह रापताय पिस्त्रतोय । आयानेन,  
आगमेन । अनेहसः, कालान् ॥

मिलिताश्रता गोविन्दमध्यन्दयन्नादैरैः प्रणयातिश-  
यावदोधनकरैः । अथ वादिमानसमानोन्माथकरो दे-  
वनाथभिरमागमोदीरितोचित क्रियाप्रचयाचरणेन वि-  
रचनेन च तन्त्रकौसुदीपराध्यगमनिवन्धानादविन्द  
तानन्यगामिनी मागमाचार्यपदवीम् । एतेन सङ्गता  
श्रसकलाएव सोदरा अनुदिनं तातपादमापादयन्सुदित  
मतितमां नवनवैः शास्त्रीयकल्पनाकौशलैः । पिता  
च समुचिताचार मकारयत्कुलकन्यकारत्न परिहंय-



ॐ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ॐ (१७१)

स्सरणे रङ्गानतिमिरवारणैकतरणेः स्पर्शमणे रम्बिके  
वारुन्धतीव सावित्रीव सुकन्येव रोहिणीव वैदेहीव  
सतीनामशेषवर वर्णिनीनां ललामभूतायां-

आपादयन्, प्रापयन् । एषां विद्यापतिप्रभृतीनाम् । उपयामः, परि-  
यः । समयमानै, प्राप्तुवति । अयमयताम्, शुभावहविधिवाप्तताम् ।  
खुक्तं क्षेमम् । भवा जाता ।

ललनायां सकललोकलोचनचमत्कारिणी चन्द्रकला  
प्रतिपदीव, अभितससमुद्धासयन्तीकान्तिशराणक-  
पणोल्लिखितमणिसंहताविव, प्रोद्धामातप निवारयित्री  
पयोदप्रभा प्रावृष्टीव, सुमनश्शतानन्दिनी विपिनवी-  
थी सुरभिशोभायामिवान्वचायसमवायप्रदीपनायसम  
जायतवालिकानाम । वचौचतदा रजसापरिशीलित  
स्त्रवन्तीसलिलकणशीतलः प्रसुनपरिच्यामोदसुर-  
भिर्भाविभुवनसौभाग्यमभिशंसन्निव मालयोनभसि-  
नभस्वान्, प्रचकाशेपरमनावृतोभास्वान्, प्रमोद  
यन्त्यस्सकलानभिवभुः पूञ्जीभूतप्रभूतघनसारपराग  
धवलाः कलाः कलोकरस्य. अतितरामर्दीप्यतप्रद-  
क्षिणाचिरसञ्चयसंसूचित मङ्गलागमा डागमाभयो  
डगारेष्वाहिताग्नीनाम्, अक्षस्मादेवसतामुल्लास हृद-  
यम्, विमलतमनीलाम्बरतामापेदिरे हरिदङ्गना स्त-

---

१ मङ्गलागमाश्वर्योत्तरेष्वान्नराजाहिताग्नीनां मर्त्त्वान्दरेषु, इति वा पाठः ।

मिसाभिसारिकाहव, अवापच क्षणदा सान्वयाम्  
सिख्याय । ततस्सङ्कलितगणितसारो दैवपण्डितः  
प्रमादादिरहितः पुरोहितः पुरोहितश्च कुत्सि-  
तदैवसुत्सारयितुकामाबुत्साहेन विहितोत्सवं जनक-  
मकार्यतां विधिवोधिताधिगमोपेत चेतसा श्रील-  
क्ष्मीत्यभिधानसंविधाना दिक्रियाकदम्बक मेकादरे  
दिवसे, उक्तरूपश्चायं स्पर्शमणेलक्ष्मी समुद्रवः  
कोड़ कीड़त्पोततया द्वादिनीवशुशुभेतदीया धात्री ।  
ततः प्रभृति परिपोष्यमाणासा तसा समेघमानाप-  
घनाशदिवसमुदित शैशवसुधांशुमण्डला नैकविध-  
मनुभवन्ती शिशुतोचितसुखं, सखीभिस्सममूहवह्लैः  
कुतूहलै रातन्वती परमं प्रमोदं, परचीनार्चीन  
पुरन्ध्रीजनोपचीयमानकुलव्यवहृतिपरिचयाऽपजहार-  
करणमान्तरं समेपाम् । एवमतियातेषुकति

सकलेत्याद्युभयपक्षे विशेषणं योजनीयम्, प्रतिपदि द्वितीयापाम्  
“प्रतिपद्यन्द्रमिवपजानृपम्” इतिभारविश्लोकव्याख्यायांमछिनायेनाभि-  
वानात्, याणः निकृपः, आतपः खेदो रोदथ, सुपनश्चतं स्त्वेतां  
पुष्टाणांच धनम्, धीर्यीपंक्तिः, सुरभिर्वमन्तः, अपरिशीलितः असंपृक्तः  
मूरन्तीनदी सुगमि र्घनोद्धः मादयः पञ्चयमम्बन्धी, अर्चिदिशवा, आग-  
मादयः श्रीतामयः, नीलाम्बवर्णानीलस्याकाशस्य वसनस्यचमयन्प्रतीक्ष-  
न्यां शमसूनमवंददार्त्तिक्षणदेतियोगबसीम्, अमिद्यापमिषानम्

पुरोहितः, पुरोहितकारकः पुरोहितः पुरातर्क्युक्तः पुरोहितः पुरोधाः, प्रादिनाग्रहदानपरिग्रहः, स्पर्शमणेः स्पर्शमणिठवकुरात् चिन्तामणेश्व, लक्ष्मी तमाम्नी धनंच, परम्परितरुपकम्. पोतशिशशुस्तरिश्व, हादिनी नदी, अपघनोवयनः, ऊहस्तर्कः तेन विमलबुद्धिमत्त्वं व्यज्यते पुरन्ध्री ज्ञी, आन्तरंकरणंपनः ।

पयहायनेषु कामकामिनीमपिकेनाप्य विश्रामराम-  
णीयकभरेण ह्रेपयन्ती, सुचिरस्थायिशोचिषाचक्षण  
प्रभामप्यधः कुर्वती, मृदुलविशदपेशलावितथभारती,  
नवसुधामर्यो वसुधामातन्वती, सम्विदा विषममपि  
विषयं विशन्ती, श्रेयसि मानसं निदधती, जनयितृ-  
प्रभृतिधरणि विवुधा नाराधयन्ती, पदनख समतया  
साधुषु सुधादीधिति साधयन्ती. सांसिद्धिकमधुरह-  
शापरिशीलितसेविनी, मेधाविनी, विनीताऽपि नी-  
तिशालिनी, मनोरमाऽपि चारुहासिनी, मध्यक्षामाऽपि  
प्रमिताक्षरा, सुवर्णालङ्घारभूताऽपि सुवर्णालङ्घकृता,  
शुचिस्वरूपाऽपि तपोऽनुगता, अपण्याऽपिज्योति  
प्रती, वैश्रवणश्रीरिवालकोद्घासिता न्यायविद्येवसद-  
वयवलक्षणा, प्रसून समयस्थितिरिव सुप्रसन्नकानना,  
विद्योतितदशनवासन्तिका सब्यसाचिनेव विलङ्घ-  
धितकर्ण स्थितिना नयनयुग्लेन राजिता, सत्कवि-  
तेव दृष्णविरहिता सद्ग्रावशोभिता मुकुमाराऽलङ्घार-  
सङ्खीणा वारुवृत्ता रुचिरचरणाच, दमयन्तीवसद्सनेत्र

मिस्त्राभिसारिकाहव, अवापन्न क्षणदा सान्वयम्  
भिख्याय । ततस्तद्विलितगणितसारो देवपण्डितः  
प्रमादादिरहितः पुरहितः पुरोहितः पुरोहितश्च कृति  
तदैवसुत्सारयितुकामाद्वित्सहेन विहितोत्सवं जनकं  
मकारयतां विधिवोधिताधिगमोपेत चेतसा श्रील-  
क्ष्मीत्यभिधानसंविधाना दिक्रियाकदम्बक मेकादशे  
दिवसे, युक्तरूपश्चायं स्पर्शमण्ठेलक्ष्मी तसुद्ववः  
क्रोडं क्रीडत्पोततया द्वादिनीवशुशुभेतदीया धात्री ।  
ततः प्रभृति परिपोष्यमाणासा तरसा समेधमानाप-  
घनाशरदिवसमुदित शैशवसुधांशुमण्डला नेकविध-  
मनुभवन्ती शिथुतोचितसुखं, सखीभिस्सममूहवहलैः  
कुतूहलै रातन्वती परमं प्रमोदं, पराचीनार्वाचीन  
पुरन्ध्रीजनोपचीयमानकुलव्यवहृतिपरिचयाऽपजहार-  
करणमान्तरं समेषम् । एवमतियातेषुकति

सकलेत्याद्युभयपक्षे विजेषणं योजनीयम्, प्रतिपदि द्वितीयायाम्  
“प्रतिपञ्चन्द्रमिवप्रजानृपम्” इतिभारविश्ळोकव्याख्यायांमछिनायेनाभि-  
धानात्, शाणः निकषः, आतपः खेदो रौद्रश्च, सुपनश्चतं सच्चेतसा  
पुष्पाणांच शतम्, वीथीपंक्तिः, सुरभिर्विसन्तः, अपरिशीलितः असंपृक्तः  
सूवन्तीनदी सुरभि र्घनोङ्गः मालयः मलयसम्बन्धी, अर्चिशिखा, आग-  
माप्रयः श्रौताग्रयः, नीलाम्बरतांनीकस्याकाशस्य वसनस्यचतुर्म्बन्धिताम्  
५ सणमुत्सवंददातीतिभगदेतियोगवतीम्, अभिष्यामभिधानम्



विश्मयकारिणी, कृष्णमूर्तिरिदाकुरसदयहृदया शोभ  
नव्यजनाकृतिरिव सदंशसम्भवा, उमेव गौरी आर्या  
शिवार्चनं निरताच, हुँगेव निरस्तचामरा चरणावधी  
रित ताम्राभिमाना आवर्त्यमानचारित्राच, कलोलि-  
नीच लावण्यस्य, यष्टिकेवहाटकस्य, शलाकेवकर्प्पर

केनापि अनिर्वचनीयेन, हैूपयन्तीलज्जयन्ती, शोचिषाकान्त्या, अथ  
इति विद्युतोदीप्तेः क्षणिकत्वादित्पाशयः, अतएव क्षणप्रभापदोपादानम्,  
विशदास्वच्छा, संविदेति तेनात्र सौक्ष्म्यं व्यञ्जयते, धरणिविबुधोद्विजः,  
पृथ्वीदेवक्ष, कौमारे पृथ्वीपूजनस्यमिथिलायामाचारात्, साधुषु सुन्दरेषु  
साधयन्ती अनुमापयन्ती, सेविनीशासी, विनीतानीतिरहिता विनयवती  
च, मनोरमाच्छन्दोपनोद्घाच, एवमग्रेऽपि सुवर्णलिंकारः हेमोपादानकोऽ-  
लङ्घारः शोभनस्वरूपस्यताटशस्वरूपायावाभूषणं च, शुचिः ग्रीष्मः प्रयतश्च,  
तपोमाघः तपस्याच, अपण्यज्योतिष्ठतीपदाभिषेयालता ज्योतिष्ठर्ताज्यो-  
तिर्युक्ताच, वैथ्रेणः कुषेरः अलकोद्धासिता अळकेनाळकायां चोद्भासि-  
ता, अवयवलक्षणानि अङ्गेषु गमुद्रोक्तानिचिन्नानिप्रतिज्ञाहेत्वादीनां ऋक्ष-  
णानि च, सुप्रसन्नकानना सुप्रसन्नक माननं यस्याः सुप्रसन्नं काननं पस्यां  
सा, सव्यसाचिनाऽर्जुनेन, कर्णस्थितिः वीरकर्णस्यपर्यादा श्रवसः स्थिति-  
श्च, अदूषणाद्वेषादिभिः श्रुतिकद्वत्वापुष्टिर्थत्वाच्यरसत्वादिभिश्चबार्थ-  
मगतैः दोषिविद्युरा, सद्वावः साधुतासतीभक्तिसन्तोविभावादयोभावाश्च,  
सुकुमाग अतिमृदुला सौकुमार्यगुणोपेनाच, अळङ्कारसङ्कीर्णा अलङ्कारै  
स्ताट्कादिभिर्वर्यासा सदकरालङ्कारवतीच, चारुवृत्तारुचिचरित्रा ता-  
रुच्छन्दस्काच, चरणः पदं इछोकपादश्च, भद्रस्त्रेविश्मयः सहस्रसङ्ख्य

## ॐ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ॐ (१७५)

स्य नयनरेण्ड्रस्यचाइर्यम्, अङ्गरमदपद्मया अङ्गरमदित्तम् अङ्गरेत्तद  
भिषानेवा मद्यं हृदयं परयास्पा, सद्गः सर्वाच्चिनं कुक्कुत्याविधोद्युष्म,  
गौरी गौरदण्ठातदभिषेषाच, एवम्प्रेऽपि आण्डिष्टाच, किंवाच्चिनं शिदाच्चाः  
पार्वत्याद्विद्यस्य च पूजनम्, कौपारेतस्याचारात् । चापरः च सर्वामुगदेन  
स्तदारयोरासमय, ताम्रोषाहुरतदभिषानोरक्षमत्र, काष्ठोलिनामर्द्वाणी ।

पूरस्य, आशुतिरिवोऽज्ज्वलस्य, यस्मीवपीचूपरय, द्वेष  
पाटीर द्रवस्य, बल्लभिकाऽचनस्य, द्विजपति मो-  
हनाग्नमिव अप्रतिहतशामनेव विजयवेजयन्तीव मा-  
नवरुपमिव यदनस्य, अधिदेवतेव मौनदर्थस्य, म-  
न्दुरेव लोचनतुरद्वापरय, (रसणीय) मनोत्तमर्गदित्तदा-  
गमक पदभिवक्तव्यलपाभवरय, सूर्णितिदागेदत्तकमा-  
पस्य आलोदमर्यादेददीक्षिणिः, तमोगर्णाददृत्तद  
पान्तिभिः, चित्रमर्यादाभृण मसाभिः, शेदधि रहो  
न्द्रीणां, गौलिमालामणिरुद्दीणां, ३ विति शेषाः ।  
शाला शालानकानाम्, आएत्तिर्त्तीनाम्, लाला,  
पुलीन पत्तयानां, देवत्तहितिस्त्तेत्तिस्त्तां च  
रितिपत्तामपिदूरतः परपत्ता, परिषेषत्तामपत्ता ।

१५ गैपिल शोणि शोरालस्त्रियः ॥

रविते यात्तमादस्त्रियं हृषीकर, १५ ॥

प्रत्येकाय विष्णवाः १५ गैपिल, शोणि १५ गैपिल, १५  
गैपिल शोणि, शोराल, रवितः १५ गैपिल, १५ गैपिल  
शोणि, शोरालस्त्रियः १५ गैपिल, १५ गैपिल ॥

१५ गैपिल शोणि, १५ गैपिल ॥

विश्मयकारिणी, कृष्णमूर्तिरिदाकूरसदयहृदया शोभ  
नव्यजनालूतिरिव सदंशसम्भवा, उमेव गौरी आर्या  
शिवार्चनं निरताच, दुर्गेव निरस्तचामरा चरणावधी  
रित ताम्राभिमाना आवर्त्यमानचारित्राच, कल्पोलि-  
नीव लावण्यस्य, यष्टिकेवहाटकस्य, शलाकेवकर्पूर

केनापि अनिर्वचनीयेन, ह्रैपयन्तीकज्जयन्ती, शोचिषाकान्त्या, अथ  
इति विष्णुतोदीप्तेः क्षणिकत्वादित्याशयः, अतएव क्षणप्रभापदोपादानम्,  
विशदास्वच्छा, संविदेति तेनात्र सौक्ष्म्यं व्यञ्जयते, धरणिविवुधोद्विजः,  
पृथ्वीदेवक्ष, कौमारे पृथ्वीपूजनस्यमिथिलायामाचारात्, साधुषु मुन्दरेषु  
साधयन्ती अनुमापयन्ती, सेविनीदासी, विनीतानीतिरहिता विनयदती  
च, पनोरमाच्छन्दोपनोङ्गाच, एवमग्रेऽपि मुवणालिंकारः हेमोपादानकोऽ-  
लङ्घारः शोभनस्वरूपस्यताहशस्वरूपायावाभूषणं च, शुचिः ग्रीष्मः प्रयतश्च,  
तपोमाघः तपस्याच, अपर्णाज्योतिष्ठमतीपदाभिधेयालता ज्योतिष्ठमतीज्यो-  
तिर्युक्ताच, वैथ्रवणः कृष्णेऽपि अलकोऽन्नासिता अब्देनाक्कायां चोद्यमासि-  
ता, अवयवलक्षणानि अङ्गेषु गमुद्रोक्तानिचिद्रानिप्रतिज्ञाहेत्वादीनां बक्ष-  
णानि च, सुप्रसन्नकानना सुप्रसन्नक माननं यस्याः सुप्रसन्नं काननं यस्यां  
सा, सव्यसाचिनाऽर्जुनेन, कर्णस्थितिः वीरकर्णस्यमर्यादा श्रवसः स्थिति-  
थ, अदूषणाद्वेषादिधिः श्रुतिकदुत्वापुष्टित्ववाच्यरसत्वादिभिश्चवार्य-  
सगतैः दोर्यैर्विधुरा, सद्वावः साधुतासतीभक्तिसन्तोविभावादयोभावाश्च,  
सुकुमाग अतिमृदुला सौकुमार्यगुणोपेनाच, अलङ्कारसङ्कीर्णा अलङ्कारै-  
स्ताट्वकादिभिर्यासा सहकरालङ्कारवतीच, चारुष्टुत्तारुचिचरित्रा ता-  
दशच्छन्दस्काच, चरणः पदं श्लोकपादश्च, सहस्रनेत्रविश्मयः सहस्रसहस्र-



॥ कनिष्ठार्थी श्रुतोऽप्यस्तवद्वाचमि ॥

कनिष्ठा अप्यर्थः

।

१  
श्रुतिः

२  
कनिष्ठा

३  
कनिष्ठः

४  
दृष्टः

५  
चाननः

६  
देशः

७  
सत्त्वः

८  
कनिष्ठः

९  
कनिष्ठः

१०  
कनिष्ठः, श्रीहर्षः

११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८  
१ म०म० म०म० म०म० म०म० म०म० म०म० म०म० म०म० आगमानायः तत्त्वानामः कण्ठशोदामकारक  
ठक्कः, विषापति, दावोदरः, गधनायः, देशायः, गोपीनायः, प्रधुमुखः, जनायः,

१९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६  
म. अनिहङ्गः म. अभ्युतः इरिकेशः पीताम्बरः म०म० म०हङ्गः म०म० रघुनन्दनः

२७  
गङ्गेशः

२८  
मधुरेशः

२९  
ट्रीकेशः

३०  
पौराणिकः थेवूकः

३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८  
उपापतिः किनूनः कुलपतिः उचपतिः चाननः जानकीनायः मिहारीः

३९  
महिधरः

४०  
जन्मुमायः

४१ ४२ ४३ ४४  
दुर्मिळः मनसिळः स्पर्शमणिः

४५  
सुरभरनः

४६  
मनभरनः

४७  
हिमरनः

४८  
कन्या

४९  
महाराज्ञी—श्रीश्रीनवीक्ष्णवीदेवी

५०  
महेशः

५१  
रघुनन्दनः

॥ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ॥ (१७७)

## अथ पञ्चमोच्छासः ।

अभृदभूतचराङ्गुतविशदपदतपोऽनलविभूतिभूमभूमिः,  
भूमीश्वरनिकरशिरश्श्रेणिकाविभूषणभूतातिभासुरविक  
श्वर चरणाम्भोजनिः, खण्डवलाभिधाविधान प्रतीता-  
न्वय हुरधोदधि विवर्धनपार्वणसुधा निधिः, कविता  
(कवन) वसुधाविधिः, बुद्धयावधीरितबुधावधिः, वि-  
हगराजइव पराभवभयभरभ्रान्ताहिसंहतिः, सीरध्वज-  
इव प्रविदितसम्बिदेतविदेहाधिपतिः, गिरिगदनप्रदेश  
इव जनितजगदुपयोग कारकागमगणः, मुकुरोज्ज्व-  
लसुकुट्टिव वर्णनीयसद्धीरमणिसुवर्णविसर सेवितः,  
सकलानहृकपाल यन्त्याऽपि सत्या कीर्त्या समत्या  
हृतः, भाविताशेषभुवनाभोगेनाऽपि दग्धेकद्वेषणेन  
प्रतापदहनेनोद्दीपितः, स्वच्छमाचरन्नपि श्यामाचरण  
परायणः, वदान्यसारोऽप्यनुदारः, अचलानन्दविधा-  
यकोऽपि विबुधमण्डलाखण्डलः, अलङ्घारोभसुरा-  
णां, कर्णधारः शास्त्रसागराणां, लज्जाकृरः सुरशाखि  
सुरभिचिन्तामणीनां, विहरणावनी पहुदर्शने। विला-  
सिनीनां, कारणिक गणाग्रेसरः क्षोणीश्वरः

म० म० महेशठककुरः

श्रीः । विशदपदेति॒ श्येतवत्पर्यार्थकं तपस्स्वरूपेऽनलेऽग्नुतत्त्वोपपादकं  
वोध्यम् अनक्षस्यक्षणवर्त्मत्वात् । विभूतिर्भसितपैश्वर्येच, भूमा अ-

क्यम् । बुधावधिः सकलवृष्टेष्टः । अहिन्दशनुशर्पश्च, सीरध्वजोजनः ।  
 संविदेतः ज्ञानेनचित्रः । विदेहो जीवन्मुक्तः मिथिलादेशश्च, । ।  
 आगमः शास्त्र मगमोदृक्षश्च । सद्वीरमणिसुवर्णानां ॥ ॥ ॥  
 सज्जातीनां, समीचीनहीरकमौक्तिकक्तनकानांच । अङ्गपालयन्त्या, आङ्ग  
 इन्त्या, सत्या पतिव्रतया कान्तयाच । अत्याहृतः दूरं प्रापितः । ॥ ॥  
 व्यापृतः इयामाचरणेति, इयाममाचरणं कालीपदंच । गारोमुख्यः,  
 दारः न उदारः दारिरनुगतश्च । अचकानन्दः अचकानां गिरीणा  
 पृथिव्याः, अचकः स्थिरोवा आनन्दः । विवुधोदेवः नि ॥ ॥  
 कर्णधारोनाविकः । सुरशाखी कल्पद्रुमः, सुरभिः कामधेनुः ।

य आशांशुक विहसितयशाः, प्रवृद्धवृषाविष्टिः, उत्त  
 माङ्गगृहीतगोविन्दपदारविन्दामृतः, परपुरतापकः  
 संजातपरमानन्दः, वाञ्छितप्रदः, शुभ्रांशुलाञ्छितः;  
 साक्षान्महेशइवामन्यतमानवैः । यमधिकोन्नमित शिरो  
 धि रोधितत्रपा यौवनमदालसाअपि लालसाविवशास्स  
 सङ्घकोचलोचनेन ललना व्यलोकयन् । येनसमातन्य  
 माने वैदुष्यनिकषे परीक्षणे समुक्तीर्णा विचक्षणाः  
 क्षणादेवक्षोणीतलचिरस्थायिनी मलभन्तसमन्ततो वि-  
 ज्ञाततरां समज्ञां प्राज्ञवहुलैरपि जनसमुदयैससमुद्रीय-  
 मानाम् । यस्मै सुकृतागमवनलवनलीन यवनवर्णं  
 वदामिलां मिथिलायाः कलयतेऽसोढ दुःखायाशेषपवि-  
 शेषपसङ्घर्ख्यावदतिक्रान्तवैदुष्यतोषितो भिलीकृत  
 ॥ ८ ॥ दिलीसार्वभौमो मिथिलाज्याराज्यं व्यसि-

❀ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ❀ (१७९)

सृजत् । यतः परोजयाशङ्क्येवाक्षपादः काणादश्चादि-  
मोदूरदर्शीनां पुरैव प्रयत्करणीमपि तीरभुक्तिधरणी  
मसुञ्चत् । यस्यचचन्द्रात्मजतया युक्तरूपैव बुधरू-  
पताऽभवत् । यत्रच शारदारमाच प्रत्नतरामल्युदस्य-  
सप्ततां यत्नात्सहर्षं सहसासहवसति मकरोद । यो  
गमायण निशमनसमुचितां दक्षिणामिव स्पर्शमणि  
सामीरणेस्सकाशादासादयत् । योऽधिदिल्लिक्षुपमल  
विभेदभल्लकवदाचरित दल्लकोल्लासिवलिन्दाचल  
कन्यकाजलेमज्ज्ववाप्यरवान्दशावेषण विषयीकृतां  
पापाणमर्यी भगवतीप्रतिमा मतितमां तमांसिगेन्निपा-  
तिरस्कुर्वती मग्नदीदादेण ॥०॥

विषयित यशारति । १८ विशेष्यविशेषणगाव भातिहोरपादापाणदं  
सोप्यए । ग्रद्धः एपितः एविरश्च, तृष्णः एष्णं गावशाल । गोवि-इष्टा  
विन्दाएं इतिरणोद्दूरं गंगा ष । परपृथिव्यः परस्य दाराः १८१८  
नगरप्रद्विपुररथ दार्यः । परमानन्दः सदभिधानो गोरुरु । एष्टाएः  
सदस्तापातिः दद्वाष । विरोधिः ग्रीष्मा । समव्याप्तोद्दूरं वार्षिक ।  
प्रमद्वारामातिप्रयत्नं ग्रावीनामृ । रात्रा रवात्र रात्रमुत्तार । गोरुरु भावा  
भिषानप्रसर, १८२८ रात्रारात्र । वर्षे गोरुरुवर्षम् ।

अपैतरय गोरुरुवर्षमुत्तारादिः ।  
वीग, पीरप्रेत्य, भृत्यग्निवभृत्यात्मानिःहुः ॥

त्वारः पुत्रा वभवुः । यत्र गोपालः किल्विष्टगल  
कालः पितरिकाशिकायां निर्वाणं सुपर्वीन्नित्रातेनापि  
दुरवापमाप्तुसुपयाते प्रसाधयामास महामढीपाल-  
पदवीम्, यदीच निदेश मासादयन्नेव दयादर्थिता-  
भ्युदयां तातेन दूरादानीर्ता, देर्वी, परिदारितारिपा-  
लिकां, निजपदसारससेवकालिपालिकां, कपालि-  
कामनापूरिकां, श्रीकङ्कालिकामच्युतस्समाराध्यतस्याः

“ महेश्वरनयद्रोही स्वगरीही भविष्यति ।

अचिरेणैव कालेन कङ्काली कवलीकृतः ॥ ”

इतिवरं प्राप्य प्रसुदितः पृतनासनाथस्तृणकमिव  
त्रिलोकीं कलयन् कलहाय निरयात् । ततः क्षणादेव  
क्षिप्रक्षणनक्षम कौक्षेयकच्छयाच्छेदित भौरजातीया-क्षी  
षमद विपक्षक्षत्रियतनुक्षेत्रक्षतोच्छलच्छोणिताच्छन्नाम  
दोमएवरणक्षोर्णीं व्यतानीत । अकांर्धीच्चस्वायत्ततावती  
ममरावर्ती तस्यनगरीम् ॥ अथ कदाचन दैवदुर्विपाका  
दनुजविप्रलभेनावधिसम्बन्धमदधानेन विमनायमा-  
नोऽन्तरायमन्तरादुष्कर तपश्चरणकामो वैमात्रेयं  
आतरं प्रतिभूपतिदलभयङ्करं शुभङ्करं भूमीभृतमभा-  
वयत् । येनग्रन्थनातिथीकृतास्तिथिनिर्णय प्रभृतयो  
~ “ ० सानिततरा स्तडामाश्र कृत प्रयतयागा  
~ “ तमाना उपकूर्वन्ति सर्वान् । यस्मिन्

विजयाय प्रयाणं विदधत्येव वारिदायन्तेस्म वैरिव-  
नितानां लोचनानि, । यत्र शास्त्रीय विचारं चिकी-  
र्पत्येव चिरं चकम्पिरे प्रतिविपञ्चितां हृदयानि ॥

अरिपालिकां रिपुपंक्तिम् । पृतनासेना । कक्षाय युद्धाय । सणनं  
पारणम् । कोक्षेयकः असिः । भौरजार्तायः भौरग्रामवास्तव्य एष आसी  
त् । अपरावर्ती नगरीत् मिथिकायां कपदानदी प्रान्तेऽवर्तत । अभावयत ।  
अक्षरोदिति यात्र ।

ततोऽस्यसुताशशात्रवसीमन्तनीसंहतिस्तुताः सद-  
पुषा रूपोन्मूलितकल्पाः पुरुषोत्तम नारायण सुन्दरा  
गुरुताद्युतधराधराः क्रमेण भृगालकप्रवरा अभूवन् ।  
येषु सुरमथन इव रुक्मिणी प्रेमस्थेपानमास्थितः  
प्रथमोनिगस्थायवर्लयिनीभिः परिपन्थिनां पृथि-  
वी मात्मसादक्षरोत् ॥ एतस्मात् सन्मतिपरिपाकस्या  
कर्णे लालाकः, ततश्च सुकृतब्रतति कन्दः गुणानन्दः  
ततश्च गुणिजनानां नाय एकनाथः, ततश्च कीर्ति-  
.विततः प्रतापसिंहो माधवर्णिहश्चाजन्यताम् ॥

अस्तोक सुश्लोकभरेण कविवरेण सकलादिना  
द्वितदरेण सुन्दरेण चानेकत्र दीर्घिका ससविशेषा अ-  
स्वानिपत । अघटित्र कूटचेष्टावेष्टिते प्रतिभवानां कूट  
सुत्पाटघ निष्कण्टकं गच्छपटलम् । अथइतांमदिनाय  
नरपती नरपतिप्रणतपादपद्मकजावजनिपाताम् ।

तयोराद्योऽनवद्यविद्या प्रधनवीरो विरोधितां दधानस्य  
 पृथुधनस्य गजसिंहाभिधानस्य दुर्गं दुर्गतं व्यता-  
 नीत् । परिणिनायचतदीयांश्रियं स्वयंवरेणविधिना-  
 नस्पतिश्च सङ्करेजङ्गम्यमानानभङ्गविक्रमान् प्रङ्-  
 या सङ्गतानपि मोरङ्गदेशीयान् प्रसर्णं पराभूय  
 भूयः सार्वभौममभ्यनन्दयां वभूव । उपचाययां च  
 पारच रणेन मणिवितरणेन च कलाकरमूर्तिजित्वरी-  
 कीर्तीः कुलानिच कवीनाम् ॥ अथामुष्य मेदिनी  
 शमुरयस्तुप्यद दूष्य वैदुष्यसंघो राघवसिंहस्तनूजो  
 ऽभवत् । यो भृपसिंह माहवे सदससाहसो विनिद-  
 त्य वाहन वदलकोलाहलां पचमदलामाहयेन तपा-  
 मसिर्दीपितदर्पालिग्रहीत । व्यजेएष्टसमरनमृता-  
 नत्तेष्टर्यव ध्रुवसिंह मधिपनिधरण्याः । यदीयत्रिदा-  
 दर्दी मद्यन्वर्गपि मद्योर्दीत हृदय मुद्दायन्ति वृद्धानि  
 दग्धनाम् ॥ ततस्तमादास्तन्देजिष्णुस्त्वा विष्णु-  
 सिंह तेष्टसिंहो ममस्तनयोग्य शास्त्र निष्णातो प्रा-  
 दुगम्भत्वा । यदोऽग्नः पायलिपुत्रपदप्रयित गुरुस्य  
 द्विवे पृत्वे विष्णोवितना मादाप्तं गार्वमीमग्नः ॥

तदस्तदाम् एतद्विष्णुपदप्रयितः । अस्तिदीप्ति गुरुस्य द्विवे ॥५५  
 इत्यत्तमादास्तन्देजिष्णुस्त्वा विष्णुसिंहः । शुक्लाः ॥५६३  
 शुक्लाः ॥५६४ ॥ अस्तिदीप्ति गुरुस्य द्विवे ॥५६५

॥ श्रीलक्ष्मीभूती चरितम् ॥ (१८३)

युद्धम् । हृष्पदित्यादि तृष्पन् अदूष्य वैदुष्यस्य संघोपस्मात्सद्यर्थः ।  
आदे युद्धे । सत्त्वं दासयुक्तम् । बाहेन खलेन । चमु सेना, यूधे युद्धे ।  
विधेयो विनयग्राही ।

विक्रमसमीकृतामन्दर्दर्पकन्दर्पदहनोऽधिकन्दर्पिकातर  
ङ्गिणीतीरं भीपणतरं समरमरोत् । यस्मिन्छात्रवक्षुभ्य-  
च्छरीरक्षरच्छोणितप्रोक्षिता यस्यकीर्ति रक्लितोपमानं  
श्वेतिमानमासादयामास । यस्यविश्राणनसलिलशैव-  
लिनीसञ्चयेषुव्यसिंसृजदसूनू निःस्वतास्वतएव ॥०॥  
अथासौसूनुशून्यशेष मिव रसाश्रितं भोगिनायकं च  
विभाकरमिव ओजोव्यासभुवनं राकापतिमिव विल-  
सितकलाकलापं, शमितचकोरलोचनप्रतापं च प्रताप  
सिंह मभिषिपेच । ततोऽयमध्यपत्यमनवाप्तो निज-  
पदेक्षितिपसुचितैर्युणै रूपचितं माधवसिंह मास्थाप-  
यदास्थया विधानैः । यः खण्डवलान्ववायावदातज-  
लजातजातविभातसमयः, सोऽधुव्रातमानसङ्कुमुदसमु-  
लास कलामयः, कात्यायनी चरणहृष्व सिंहाकलितः,  
कंसक्षयकारीद धर्मपक्षरक्षकः, सब्यसाचीव दुश्शासन  
सप्तलः, उदन्वानिव सन्तान सन्तोषित सुमनस्स-  
न्तानः, खगनायकहृष्व जिह्वगद्वेषणः, चन्द्रहृष्व समु-  
द्धृतपितृको जैवातृकश्च, वहुवाहिनीनाथोऽपि माघवः,  
वलगृहीतपरवस्तुमतीकरोऽपि पाप्मनाऽस्पृष्टः, शुचि-

रपि जीवनात्मा, सिंहोऽपि नरकुञ्जरः, धीरोदात्त  
 शान्तललितः, दक्षिणोऽनुकूलश्च, तिग्मधिषणः, दुर्ग  
 तैकशरणः, यो देशान्तर माश्रितेभ्यश्श्रोत्रियेभ्यो निज  
 राज्य आनाथ्य प्राज्यमास्चय्य निकाथ्य सत्तमं, पुरु,  
 प्रशस्य सस्य सम्पादनदशं सपदिपरमादेरण केदार  
 मददत् । यस्तदीयपरिणयानुवन्धिसाधुतासाधनंघनं  
 प्रतिपाद्यकौतूहलकमवध्नात् । यो घाम्ना नाम्ना  
 साम्नाच समाम्नातोऽनिभामभावयत्सभाशोभास् ।  
 यं सुदर्शनोज्ज्वलकलेवरं माधवमिवापरममन्यन्तज-  
 नाः । येन निष्ठया प्रतिष्ठाविधिना सन्निधापिताः  
 सुरधुनीधूर्जटिप्रधानविवृधा अधुनापि समुद्धरन्ति  
 निधनमधिगतानमितान् ।

निःस्वता दरिद्रता । रसाश्रितं रत्यादि विषयिण्याभग्नावरणयाचिता  
 पृथिव्याचाश्रितम् । भोगी भोगवान् अहित्य । ओङःपतापस्तेजश्च ।  
 अकोरेति प्रकृते सदृष्टितया चकोरसदृशस्यनयनस्येत्यार्थ्यः । कल्पामप-  
 थन्दः । सिंहेति सिंहेत्युपाधिना केशरिणाच आकलितः युक्तः प्राप्तश्च धर्मः  
 पुष्पं युविष्टिरश्च । दुश्शासनस्य दुष्प शासनस्य तद्भिधानस्यच, गन्तानः  
 मन्ततिः कल्पद्रुपश्च, सुपना इशोपनपनादेवश्च, सन्तानः समुदायः जिह्वगः  
 कुटिल दर्शनश्च । समुद्रतपितृकः समुद्रार कर्म्मकुल पितृका गम्भीतपितृ  
 गणश्च, जैवातृकः आयुष्मान् जैवातृकपदाभियेषश्च । वाहिनी नदी सेवाच,  
 पापदः विष्णुः माघवानिधानश्च । चक्र वक्षात्कारः संन्यन्त, परवसुमतीहरः  
 पराद्वनार्थः रिपुपूर्विर्वा वलिड्य । शुचिरग्निः पृतइच, जीवनात्मा

## ॥ श्रीलक्ष्मीश्वरी चरितम् ॥ (१८५)

जबसदक्षः जीदनकारकश्च । सिंहः केश्वरी पराक्रमेण सिंहसदाशः मात्रव  
सिंहश्च । नरकुञ्जरः नरोनागश्च नरभेष्टुश्च धीरोदात्तादिनायकमेदः अवि-  
क्त्यनादिगुणयुक्तः शान्तोऽकावण्पवलितश्च । दक्षिणः शृङ्गारीनापक  
विशेषः समर्पयश्च, अतुकूलः पूर्ववत् प्रकृतार्थः स्पष्टएव । निकार्यं दृहम् ।  
पुरु चतुर्भूम् । केदारं क्षेत्रम् । तर्दायेति भोविष्यस्येत्यर्थकम्, साधुता  
मणीयता, अनिभास् अपदशीम् । सुदर्शनोऽज्ञवक्त्वलेदरं सुदर्शनेनो-  
ज्ञवक्त्वलेदरं शोभनदर्शनं मुज्जडकं च कलेवरं यस्य तंच । समिवापिता  
इति, संनिवानमद्वारयमकारो ।

येन च गृहीतवलितयात्रपयेव पातालमन्तर्महोदधे  
रविशत् । यस्य यशोविरादशोचिः प्रतापतापनश्चाप-  
हाय विश्वविश्वुतश्चतुर्तामविरतं सममेवोदगात् ।  
यस्य चातुरुलितां निचारचातुर्णी विचिन्तयन् निज-  
दुहितुसम्प्रदाने वरव्यवस्थामपि समुदायश्चोत्रिपाणीं  
तदायत्तांहर्षादकार्षीत् । यस्तु कृतसंहत्येवजरयाऽपि  
परयावलक्षितं क्षेत्रमभिवीक्षमाणः क्षणेन श्रेयशशास्त्र-  
निदेशानुमारेण सम्भारेणाभिविच्यात्मजन्मानं ज्याय  
सं राज्य सिंहासने वरीकृतहृषीको वाराणसीं चिरस्य  
सुश्रूपमाणः प्रमोदयन्नमन्दं मन्दाकिनी सलिलास्वा  
दनेन शरीरवल्लर्णी कदाचिदाश्रितो मणिकणिकां तह-  
णिमनिवासरस्य मिहिरनिहितनयनाम्बुजन्मयुग्मःस्वा  
न्तेस्मरन्नरकान्तक ममरनिकरेणाप्यनवाप्यं भव्य मव्य  
यपदमवापत् ॥०॥ वहिर्वृत्तिजीवितमिवैतस्यात्मजवरः,

प्रोद्यत्प्रतापतपनसन्तापित प्रत्यर्थिसार्थाधिष्ठिततुषाग  
 द्विकन्दरोदरः, निरवशेषनीति निकरनिगृहार्थतत्त्वं नि-  
 कामनिष्णाततया नितान्तं निराकृतं निखिलनयनि-  
 पुणता निकेतनः, सुनासीरइव चित्ररथराजितं सगर्वं  
 गन्धर्वं शिरस्त्वीकृतं शासनः, प्रभावतीविभ्रमइव  
 समुद्दीपित प्रद्युम्नं द्योतितः, सदाशिवइव सोमामृतो  
 पचीयमानवदनशुतिः, मौक्तिकमणिमालिकाविशेष  
 इव कामिनीहृदयावस्थितः, खण्डवलान्वयगतोप्य  
 खण्डवलपटलान्वितः, यशः पाटीरपङ्कानुलेपिताशा-  
 ङ्गानावदनोऽपि धौरेयोधर्मवताम्, तपनावलोकनं  
 सपत्नोऽपि तपनोपस्थाता, प्रजापटलीप्रणयामत्र-  
 भूतः छत्रसिंह आसीत् । यश्वरुद्धयाधाणिविवुधो-  
 चित्यकृत्य विधानप्रवन्धमनुरुद्धानोऽपि धर्माविरोधि  
 राज्यमण्डलमतितमामवीवृथत् । यो नैपाल नृपालम्  
 ध्यरायप्रदर्शितपग्रकमो भारतकाश्यपीपतिप्रेमपात्रता  
 प्रापत् । यस्य वल्लभा कीर्तिकामिनी काननेऽप्येका  
 किनी भ्रमति भुवनेषु निर्भयम् । यद्विपक्षकान्ता  
 वहोज युगलमर्थतोऽपि पर्याधानांदधौ ।

वनिः द्विनैविः वरय । व्रद्यपरदं केवरय । निवानाः विश्वर्गी  
 रः, रव्यर्विष्वर, रव्यर्वः दुरामः देवयोनिविष्वर । श्रद्युम्नं धरय,  
 दुराम दद्युम्नं धरय । दीप्यर्पणि, मीप्यर्पणः अर्पण यमाया अवाप्तैः

चन्द्रामृतेन वा उमा चन्द्रामृताभ्यां वा इत्याद्यर्थः । हृदयं मनः वक्षश्च ।  
खण्डेत्पादौ विरोधः स्फुटपत्र, परीहारे खण्डशक्तान्वयः स्फण्टवलाभिधानो  
दंशः वलं सैन्यमित्यर्थः । तपनो निरयप्रभेदः सुर्यश्च । अपर्णं भाजनस् ।  
दधाविति मियशोरजनिताशुभस्यातेनेत्पर्यः ।

यः प्रोन्नतसुन्दरेषु मन्दिरेषु सदासुकृतोन्मुखो  
दानवदलद्वेषणेन्दुरेखरप्रसुखान् लेखान् प्रीत्याप्रत्य  
तिष्ठिपत् ॥ ०

ततश्छठत्र सिंहादमित्रमदमलिनकटतटकरटिकुम्भक  
पाट पाटन पाटवाद्वित्विकटकण्ठीरवः, प्रोञ्ज्वलदोजो-  
ञ्ज्वलनजाताञ्जनयशोजैवातृकः, सान्दहादेन चन्द्र-  
प्रिय प्रायोपलप्रकर निर्मापितेषु प्रोत्तुङ्गशृङ्गमनो  
पहारि मन्दिरेषु विधिस्थापिताराधितराधापतिः,  
अतिविशदसन्मतिः, सक्लसुकृतिलोकनकुलानुकूलः  
पाषण्डशर्मीशालकुलमूलकूलङ्घणः, ऊर्ध्वजठजानुः,  
तेजोविजितभानुः । वनीयककमनीयदायकः अव-  
नीपतिमालानायकः, अतिमानमानवातन्यमानवहु-  
मानः, धर्मसमानः, प्राचीनान्वार रक्षणचणः, मेदिनी  
तलमनितमनीषिभिः समंक्षपितप्रचुरक्षणः, संमिलन  
द्वीकृतदुर्जन गणः, शर्वइवसर्वमङ्गलोपचारवतुरः,  
प्रोन्नतवसुवंशइवसुरसम्भावितः, चित्रभानुरिव प्रति

प्रोद्यत्प्रतापतपनसन्तापित प्रत्यर्थिसार्थाधिष्ठिततुषारा  
द्विकन्दरोदरः, निरवशेषनीति निकरनिगृहार्थतत्त्वं नि-  
कामनिष्णाततया नितान्तं निराकृतं निखिलनयनि-  
पुणता निकेतनः, सुनासीरइव चित्रथराजितं सगर्वं  
गन्धर्वं शिरस्स्वीकृतं शासनः, प्रभावतीविभ्रमइव  
समुद्रीपित प्रद्युम्नं द्योतितः, सदाशिवइव सोमामृते  
पचीयमानवदनश्युतिः, मौक्तिकमणिमालिकाविशेष  
इव कामिनीद्वदयावस्थितः, खण्डवलान्वयगतोप्य  
खण्डवलपटलान्वितः, यशः पाटीरपङ्कानुलेपिताशा-  
ङ्गनावदनोऽपि धौरेयोधर्मवताम्, तपनावलोकनं  
सपत्नोऽपि तपनोपस्थाता, प्रजापटलीप्रणयामत्र-  
भूतः द्वन्द्वसिंह आसीत् । यश्श्रद्धयाधाणिविबुधो-  
चित्यकृत्य विधानप्रवन्धमनुरुन्धानोऽपि धर्मविरोधि  
राज्यमण्डलमतितमामवीवृथत् । यो नैपाल नृपालस  
म्परायप्रदर्शितपराक्रमो भारतकाइयपीपतिप्रेगपात्रता  
प्रापद् । यस्य वल्लभा कीर्तिकामिनी काननेऽपेक्षा  
किनां भूमति भुवनेषु निर्भयम् । यद्विपक्षकान्ता  
वक्षोज युगलमर्थतोऽपि पर्योधरतांदधौ ।

वल्लिः देवोननिः करम् । अवश्यपदं कैवल्यम् । चित्रायाः विशेषां  
रणः गन्धर्वं शुश्र, गन्धर्वः शुश्रः देवयोनिविशेषशः । प्रद्युम्नं भवते,  
दृष्ट्वा व्यज्ञय व्यदेः । दोषेभ्यः दि, मोषष्वान्नेत्रं श्रमावा अपाप्तैः

❀ श्रीलक्ष्मीशरी चरितम् ❀ (१८७)

चन्द्रामूर्तेन वा उमा चन्द्रामृताभ्यां वा इत्पार्थ्यः । हृदयं मनः चक्षश्च ।  
खण्डेत्पादौ विठोधः स्फुटश्व, परीहारे खण्डवक्तान्वयः स्फुटवचाभिषानो  
र्णशः श्लं सैन्यमित्यर्थः । तपनो निरयप्रभेदः सुर्यश्च । अमत्रं भाजनम् ।  
दधाविति विषयशोकजनिताशुभ्यातेनेत्यर्थः ।

यः प्रोक्षतसुन्दरेषु मन्दिरेषु सदासुरुतोन्मुखो  
दानवदलदेषणेन्दुशेखरप्रसुखान् लेखान् प्रीत्याप्रत्य  
तिष्ठिपत् ॥ ०

ततश्छत्रं सिंहादमित्रमदमलिनकटतटकरटिकुम्भक  
पाट पाटन पाटवाटितविकटकण्ठीरवः, प्रोञ्जवलदोजो-  
ज्वलनजातार्जुनयशोजैवातृकः, सान्द्रहार्देन चन्द्र-  
प्रिय प्रायोपलप्रकर निर्मापितेषु प्रोत्तुङ्गशृङ्गमनो  
पहारि मन्दिरेषु विधिस्थापिताराधितराधापतिः,  
अतिविशदसन्मतिः, सक्लसुरुतिलोकनहुलानुकूलः  
पाषण्डशमीशालकुलमूलकूलङ्घषः, ऊर्ध्वजठजानुः,  
तेजोविजितभानुः । वनीयककमनीयदायकः अव-  
नीपतिमालानायकः, अतिमानमानवातन्यमानवहु-  
मानः, धर्मसमानः, प्राचीनाचार रक्षणचणः, मेदिनी  
तलमनितमनीपिभिः समंक्षपितप्रचुरक्षणः, संमिलन  
दूरीकृतहुर्जन गणः, शर्वइवसर्वमङ्गलोपचारचतुरः,  
प्रोव्रतवसुः सुरसमभावितः, चित्रभानुरिव प्रति

रुद्धकेरवोदयः, प्रमत्तमातङ्गइव पदन्यासापद्वतजनं  
मानसः, द्याकृतिनिवन्धइव सप्रकृतिप्रत्ययः, पृष्ठद  
श्वसखशिखाश्लेषितोऽपिनयनराजितः, सुप्रीतगुरुपि  
द्विजराजः, रसास्थितोप्यवियातः, शाश्वनिकरनिकेतभू  
तोऽपिचेतोहरः, रुद्रसिंहोऽव्रततार । येनसांसिद्धिकश्र  
द्धया विश्वाशापावनं तीर्थकदम्बकं सममानि गम  
नेन ! येनच खानितः सुरससलिलः सामीरणिसेवि  
तः कासारससरस्वन्तमपि तिरस्करोति । यस्यवैमात्रे  
यो वासुदेवसिंहो मेध्यमूर्तिस्समेधस्समेधमानयशाग  
जगन्धवारिवन्धुरां गन्धवारिपुरीमध्यवात्सीद ॥०॥

कटः कपोऽः, करटी गजः, कण्ठी॒घः सिइः । वनीयङ्कः पाचङ्कः,  
नायकः पद्यमणिः । अतिमानमपरिमितम् । मनितः विदितः, गर्वपङ्को  
पचारः, सर्वेषांपङ्कुलायोपचारः सर्वपङ्कुञ्जाया उपायाः उपचारश्च । वहु  
पृथ्, सुरसः रसिक विशेषः शोभनोरमः, जलंच । कैरघो रिपुः कुमुदं  
ए केरवम् । पदन्यासः चरणगतिः सुसिद्धन्व रचनाच । प्रकृतेः मृदु  
प्रद्वृतेः सचिवादेवा प्रत्ययेनविश्वासेन प्रकृतिप्रत्ययाभ्यां वा सहितः,  
अन्यदृथारुद्यानं कवि मुखादृष्टान्तव्यम् विस्तरभीत्यानेहपद्मयते । पृष्ठ  
दशप्रस्त्रोऽग्निः, नयेननराजितः नयनाभ्यां रात्रितङ्ग । गुरुर्वचस्यतिः  
आवार्यादित्व, द्विजराजइचन्दः द्विजोनांपतित्व रमास्थितः एते रत्यादी  
रथार्या दृष्टिभ्यां चामित्वतः, अविवाहः अधृष्टः । शाश्वनिहरः वद्वाणां  
समृदः । विद्वाश्वापद्वादिक् । समेव, मेपार्थी ॥

चन्द्रमरीचिरुचिरः, शरदागम इव बन्धुजीवामोद ब-  
न्धुरः, हिमसमयइव नमज्जन प्रीतिदायकः, वैनतेय  
इव विहिताहितापकृतिः, उन्मदमातहगइव दानवा-  
रि विभासितकरः, वारिधिरिव वेलास्फुर्तिश्लाघनीयः,  
वासारइव दिजराजिराजितवनः, धवलदलाष्टमीतमी  
समयइव भालेन्दुशकलमनोरमः, लोचनविशदीकृत  
आनन्दवर्धनोदितोध्वन्यालोकोवा, शुक्रनाससम्भासि  
तः कादम्बगी प्रवन्धो वा, अधिगमिताधरप्रतिक्रिम्बिं  
म्बकसिसद्धान्तलेशोवा, शशिवदनोपेतोवृत्तदर्पणोवा,  
मणिस्त्रियालिङ्गितसुभ्रीवः प्राचेतसो व्छासोवा, विपुल  
स्कन्धवन्धो भागवतं वा, मण्डनविकाशितहृदयो मे-  
त्रेयीत्राह्मणोवा, विततवाहुशाखोवेदोवा, जहृघाका-  
ण्डमण्डितः पारस्करसूत्रसञ्चयोवा, चन्द्रकान्तललि-  
तपदोपस्कृतः पिङ्गलागमोवा ।

कामददर्शनः इष्टशालोकनः मदननाशकनपनश्च । न देशजा प्रणय  
विषयः देशीयानामपणयस्यन विषयः न देशाद्येजर्ताया रमायोः प्रणयस्य  
विषयः । लोकेशोविधिः, कमङ्गासनं कमङ्गायाः स्थितिः कमङ्गात्मकमासनं  
च । आम्नायः कुलं सदुपदेशोवेदश्च, एतेनमीनावतारसाहश्यं दर्शितम् ,  
ऐष्मेवाग्रेपिकूर्पाधवतारसाहश्यं वेदितव्यम् । गोपिनानन्तः रक्षिता अन-  
न्तापृथिवी अपरिमेषजनाश्च येनसः । गोत्रं कुलम् गोत्रा पृथ्वी । हिरण्याक  
प्रदः कनकदानदाता हिरण्याक्षाभिषानस्यामुरस्य स्तष्ठकश्च । बलिः करः

## युणोत्करा स्सोदरा विविदिरे ॥ ० ॥

अभिभूस्तिः याचितः, मानववंशः नरकुलं पनोः कुलं च । वाजिराजः तुरगराजः गरुड़श्च, पदं स्थानं चरणश्च । परिकरः परिवारः पर्य-  
द्वश्च । ईशो नृपतिः शिवश्च । गुणेति सामुद्रिके शाखे समुद्रेण गुणदोष-  
पोर्विवेकस्य विहितत्वादिति, पवनाशनः शर्पः वायुभक्षणेन तपः कुर्वाणश्च  
विनतामोदः विनताया विशेषेण नम्रस्यचमोदः । अकञ्जलीतनयोऽकञ्ज-  
लितो नयोवायस्यसः । इरामर्थं वचनं च । पुरः त्रिपुरोनगरं च पुरम् ।  
असमदर्शनः श्चिबः अनुपमद्विष्टश्च ॥ \* ॥

अथैतस्यतनयः त्रिनयनइव कामददर्शनः, केशव  
इवनदेशजाप्रणयविषयः, लोकेशइव कमलासनविभा-  
सितः प्रजापतिश्च, नारायणवतारनिकरइव पालिता  
म्नायः, गोपितानन्तः उच्छृतगोत्रः, हिरण्याक्षप्रदः, नि-  
यमितवलिः, वलविजितराजव्रजः, अमोघमार्गण गण-  
गमनः, उग्रसेनामोदनः, दर्शिताशेषज्ञणभावः, ज्वलन  
हुत यवनमदश्च । विभावसुरिववसुधाराज्यमोदितः,  
छायान्वितः, महलक्ष्मिनी नयनोत्पलविकाशकश्च ।  
सोमइवमुदितयोगिस्तोमः, व्योमाङ्गनाश्रितः, उदया  
नुरक्तमण्डश्च अङ्गारकइव धरणिवर्धनः, सौम्यइव  
काव्यप्रियः, वाचस्पतिरिव वृन्दारकप्रकरसेवितः,  
भार्गवइव कर्वृतमालाक्षिवतः, सौग्रिवि विरोचनाग-  
तिः । कुसुमाकरइव ग्रण्डवलाकुलकाननमृपमाकरः,  
निदावइव क्षणदामोदिसदागतिः, प्रावृदकालइव नस

चन्द्रमीचिरनिरः, शरदागम इव वनधुजीवामोद व-  
न्धुरः, हिमसमयेव नपञ्जन प्रीतिदायकः, वेनतेय  
इव विहिताहितापकृतिः, उन्मदमातहग्गेव दानवा-  
रि विभासितकरः, वारिधिरिव वेलासफुर्तिश्लाघनीयः,  
वासाराह्व द्विजराजिराजितवनः, धवलदलाष्टमीतमी  
समयेव भालेन्दुशक्लमनोरमः, लोचनविशदीकृत  
आनन्दवर्धनोदितोऽचन्यालोक्नोवा, शुकनाससम्भासि  
तः कादम्बी प्रवन्धो वा, अधिगमिताधरप्रतिविम्बवि  
ष्वकस्सिद्धान्तलेशोवा, शशिवदनोपेतोऽवृत्तदर्पणोवा,  
मणिस्त्रियालिङ्गितसुग्रीवः प्राचेतसो च्छासोवा, विपुल  
स्कन्धवन्धो भागवनं वा, मण्डनविकाशितहृदयो मे-  
त्रियीव्राक्षणोवा, विततवाहुशाखोवेदोवा, जडघाका-  
ण्डमण्डितः पारस्करस्त्रसञ्चयोवा, चन्द्रकान्तललि-  
तपदोपस्कृतः पिङ्गलागमोवा ।

कापददर्शनः इष्टशालोकनः पदननाशकनयनश्च । न देशजा प्रणय  
विषयः देशीयानामपणयस्यन विषयः न देशादव्येर्जिताया रमायाः प्रणयस्य  
विषयः । लोकेशोविधिः, कपकासनं कपकायाः स्थितिः कपकात्मकपासनं  
च । आम्नायाः कुलं सदुपदेशोवेदश्च, एतेनमीनावतारसाहश्यं दर्शितम् ,  
ऐवमेवाप्रेपिकुर्पायवतारसाहश्यं वेदितव्यम् । गोपिनानन्तः रक्षिता अन-  
न्तापूर्णिवी अपरिमेयजनाश्च येनसः । गोत्रं कृष्णम् गोत्रा पृथ्वी । हिरण्याह  
प्रदः कनकानदाता हिरण्याक्षाभिषानस्यामुरस्य स्पष्टकथ । वस्त्रिः करः

गुणोत्कर्ष स्सोदरा विविदिरे ॥ ० ॥

अभिश्वस्तः याचितः, मानववंशः नरकुलं पतोः कुलं च । वाजि-  
राजः तुरगराजः गहड़इव, पदं स्थानं चरणश्च । परिकरः परिवारः पर्य-  
द्धिश्च । ईशो नृपतिः शिखश्च । गुणेति सामुद्रिके शास्त्रे समुद्रेण गुणदोष-  
योर्विवेकस्य विहितत्वादिति, पवनाशनः शर्पः वायुवक्षणेन तपः कुर्वणश्च  
विनतामोदः विनताया विशेषेण नम्रस्यचमोदः । अकञ्जङ्गीतनयोऽकञ्ज-  
ङ्गितो नयोवायस्यसः । इरामथं वचनं च । पुरः त्रिपुरोनगरं च पुरम् ।  
असमदर्शनः क्षिवः अनुष्मदृष्टिश्च ॥ ० ॥

अथेतस्यतनयः त्रिनयनइव कामददर्शनः, केशव  
इवनदेशजाप्रणयविषयः, लोकेशइव कमलासनविभा-  
सितः प्रजापतिश्च, नारायणावतारनिकर्त्रं पालिता  
म्नायः, गोपितानन्तः उद्धृतगोत्रः, हिरण्याक्षप्रदः, नि-  
यमितवलिः, वलविजितराजव्रजः, अमोघमार्गण गण-  
गमनः, उग्रसेनामोदनः, दर्शीताशेषक्षणभावः, ज्वलन  
हुत यवनमदश्च । विभावसुरिववसुधाराज्यमोदितः,  
छायान्वितः, महलक्ष्मिनी नयनोत्पलविकाशकश्च ।  
सोमइवमुदितयोगिस्तोमः, ब्योमाङ्गनाश्रितः, उदया  
नुरक्तमण्डश्च अङ्गारकइव धरणिवर्धनः, सौम्यइव  
काव्यप्रियः, वाचस्पतिरिव वृन्दारकप्रकरसेवितः,  
भार्गवइव कर्वूरमालाजितः, सौरिवि विशेषनारा-  
तिः । कुसुमाकरइव खण्डवलाकुलकाननसुषमाकरः,  
निदाघइव क्षणदामोदिसदागतिः, प्रावृद्धकालइव नस-

चन्द्रमरीचिरुचिरः, शारदागम इव बन्धुजीवामोद व-  
न्धुरः, हिमसमयेव नमज्जनं प्रीतिदायकः, वैनतेय  
इव विहिताहितापकृतिः, उन्मदमातहगङ्गेव दानवा-  
रि विभासितकरः, वारिधिरिव वेलारफुर्तिश्लाघनीयः,  
वासाखेव दिजराजिराजितवनः, धवलदलाष्टमीतमी  
समयेव भालेन्दुशक्लमनोरमः, लोचनविशदीकृत  
आनन्दवर्धनोदितोध्वन्यालोकोवा, शुक्रनाससम्भासि  
तः कादम्बगी प्रवन्धो वा, अधिगमिताधरप्रतिक्रिम्बि  
म्बकस्सिद्धान्तलेशोवा, शशिवदनोपेतोवृत्तदर्पणोवा,  
मणिस्त्रियालिहितसुग्रीवः प्राचेतसो च्छासोवा, विपुल  
स्कन्धवन्धो भागवतं वा, मण्डनविकाशितहृदयो मे-  
त्रेयीत्राह्यणोवा, विततवाहुशाखोवेदोवा, जहूघाका-  
ण्डमण्डितः पारस्करसुत्रसञ्चयोवा, चन्द्रकान्तललि-  
तपदोपस्कृतः पिङ्गलागमोवा ।

कामददर्शनः इष्टशालोकनः मदननाशकनपतनश्च । न देशजा प्रणय  
विषयः देशीयानामप्रणयस्यन विषयः न देशाद्वयेर्जातिया रपायाः प्रणयस्य  
विषयः । लोकेशोविधिः, कमज्जासनं कपब्रायाः स्थितिः कमज्जात्मकमासनं  
च । आम्नायाः कुलं सद्यपदेशोवेदथ, एतेनमीनावतारसाहश्यं दर्शितम् ,  
ऐदमेवाग्रेपिकूर्माध्यवतारपाहश्यं वेदितव्यम् । गोपिनानन्तः रक्षिता अन-  
न्तापृथिवी अपरिमेयजनाश्च येनसः । गोत्रं कुलम् गोत्रा पृथ्वी । हिरण्याह  
पदः कलकाणानदाता द्विरण्याक्षभिषानस्पात्तुरस्य स्तुष्टकम् । वर्णिः करः

विरोचनिश्च । वक्लं सैन्यं शक्तिश्च, राजामूपः क्षत्रियश्च । मार्गणः याचकः  
 शरश्च । उग्रसेनामोदनः तीक्ष्णसेनायाः उग्रसेनाभिधानस्यचामोदनः ।  
 अशेषसणभावः भक्तोत्पवभवनं सद्गुरुक्षणिकृत्वंच । उवक्तनहुतयवनपदः  
 उवक्तनेऽग्नो हुतयवः नपदः हुतः यवनानांपदोयेनसच । ब्रह्मवा राज्ये  
 पृथ्वीराज्यं नसुवारासम्बन्धिघृतं च, छायाकान्तिः सूर्यप्रियाच, योगी  
 योगाभ्यामी अवियुक्तः कामोच । व्योमाङ्गनाश्रितः व्योमांगनामुमा मा-  
 काशाङ्गणं चाश्रितः । उदयानुरक्तमण्डलः उदये वृद्धौ प्रकाशविशेषेषा  
 अनुरक्तं प्रणयि रक्तवर्णंच पण्ठकं प्रजामण्डलं चक्रवाकं च यस्यसः वर्षन  
 इति पतित्वेन सुतत्वेनच वोध्यम् काच्यं कविकर्मणुक्षकाव्यः योतिर्निवन्धे  
 शुष्कयोस्त्सख्यस्य प्रतिपादनात् । वृन्दोक्तः सुरः श्रेष्ठश्च । कर्म-  
 पात्रा चित्रमार्यं राज्ञसपरम्पराच । सौरिश्शनिः विरोचनः कान्तिरहितः  
 सूर्यश्च । क्षणश्च उत्सवदा आमोदिनीसतीमागतिर्यस्य रात्रावामोदीसदा  
 गतिर्थयुर्यत्रसच । नखेत्यादि नखरेन्द्रोः कन्त्यारुचिरः आकाशेन्द्रु  
 कान्तिरुचिरोनेत्यर्थः । वन्धुजीवः वन्धुनांजीवः पुष्पविशेषश्च । नमेत्यादि  
 नपतां जनानां प्रीतिदायहः मज्जनेन प्रीतिदायक्तित्यर्थः । अहितस्याप-  
 कृतिः अहेस्तापकृतिः । दानेति उत्सर्गजलविभासितहस्तः मदजलविभा-  
 सितशुण्डशेत्यर्थः । वैक्ष अवसरो मर्यादाच, द्विजो विप्रो विहगश्च, वनं  
 गृहं विपिनं जलं च । शक्तं खण्डः लोचनेन नेत्रेण लोचनाभिधानया  
 दीक्षयाच, आनन्दस्य वर्द्धनाय उदितः आनन्दवर्षनाचार्येण भावितश्च  
 शुक्लासः शुक्लुलितनासिकः शुक्लासेनसचिवेन सम्भाषितश्च इत्ते  
 त्रैवयात् । अघस्य प्रतिविम्बं विम्बफलम् अधरः प्रतिविम्बोयस्मात्  
 ताहस्त्रोविम्बश्च । शशिवदनं शशिवदना तद्भिधाने छन्दश्च । सुप्रीवा  
 शोभनकन्धरा मुग्रीदश्च वानरः । पण्ठनं शूष्पर्णं पण्ठनामिष्टश्च मण्ठनः

ॐ श्रीलक्ष्मीशरीचरितम् ॥ (१९३)

रथं वक्षोररस्यं च, मैत्रेयीक्रांत्सनोवृद्धारण्यकम् । चन्द्रुचिरेण ब्रह्मिने  
पदेन, चन्द्रकान्तब्रह्मितपदाभ्यां छन्दोभ्यांचोपस्थृतः ।

परिपालितप्रजोऽपिनरक्षणकरः, केशवोप्यवामनावता-  
रः, परमदाशेषितोऽपिधुरीणोधार्मिकाणाम्, प्रोदित-  
प्रतापदहननिर्दग्धेष्वणसम्भूतभूत्याभृषितोऽपि पूतः,  
अनेकपनायकोऽपि नगजानुगतः, निरस्तद्विजि-  
द्धोऽपि धरणिभृत्, सवनश्रितोप्यवनपरायणः, छुमु-  
दावर्धकोप्यक्षयिवस्तु स्तमसानासादितश्च, सकलाशा-  
पुरककरोऽपि अमिततुरङ्गमो दोषानभिभूतश्च, लोके-  
शोप्यनाभिजातः, विजितदर्षकोऽपि भनोजवशः, भो-  
गवानपि मन्त्रानुचारिपाकमः, अद्वितीयोऽपि द्वि-  
तीयानुरक्तः, सुन्दरदर्शनोऽपि कविः, आतदण्डकोऽ  
पि परिगोपिताशेषतापसः, सृग्याशीलोप्यनाकलित  
काननक्लेशः । भीमेनापिशिरसास्वीकृतशासनः,  
कुलपालिपालनः । वदान्यतमः, सर्वदागृहीततारः ।  
सत्यव्रतः आस्वादितरमणीरसः ।

न रक्षणकरः न हि रक्षणकरः न रस्य क्षणकरथं केशवो एवः शुनाग  
श्च, न वापनोदत्तारः अनामनः अखर्दः अदत्तारोयस्य स च । परमदा-  
शेषित परेषां प्रेषदया परेण प्रमदेनचाह्लेषितः । भूत्याभस्मनारेष्येष  
च । अनेकपोगजः अनेकेषां पादकथ, न गजेनानुगतः न गजासुमाशब्द-  
गतश्च । द्विजिः सर्पः रुद्रः, धरणिभृत् पर्वतो राजाव । सदर्थं इन्द्रुतं

(१९४)      श्रीलक्ष्मीश्वरीचरितम्

पञ्चनं च, अवनं वनरहितं पाकनं च । कुमुदं कैरवं पृथिव्या इष्टच कु-  
मुद, वसु कान्तिः धनं च । तमसाराहुणा ब्रह्मानेनच सकलाशो समस्ता  
दिशो, सकलजनानां तुष्णा च । द्वः किरणः हस्तश्च, अभिरेति, रवे-  
ससप्ताश्वत्वाद्विरोधः, दोषया दोषैश्वानभिभूतः । लोकेशोविधिः लोका-  
नामीश्वश्च, अनाभिजातः नामेनजातः सुन्दरश्च । मनोजवशः कामा-  
धीनः, पितृसभिभश्च । भोगवान् फणी सुखीच, मन्त्रोपत्तुर्विचारश्च ।  
अद्वितीयः एकमात्रं सजातीयद्वितीयरहितश्च, द्वितीयानुरक्तः द्वितीयस्मिन्  
द्वितीयायां श्रीतारिण्यांचानुरक्तः । दर्शनं नयनम्, कविः शुक्रः, कवयिता  
च । आचदण्डकः गृहीतदण्डकाभिषानविपिनः गृहीतदण्डश्च, राम-  
मादाय विरोधः । मृगयेत्यादि मृगयाच्चास्तेऽभीमः भीमसेनः भयं-  
करश्च, एताभ्यां युधिष्ठिरपेक्षयाव्यतिरेकः । गृहीततारः गृहीता तारा  
हश्चन्द्रस्यजाया भगवती च येन सः, एतेन तदपेक्षयाव्यतिरेकः ।  
सत्यवत इति एतेन भीष्मपेक्षयाव्यतिरेकः ।

प्रवीरो मङ्गलकरः, परसमाधिसहिष्णुः जिष्णुः । अक्लूः  
गोकुलानन्दनः । चन्द्रकान्तः सुकुमारः । सूरतः शूरतः  
उपायप्रयोगकुशलः, द्विषददलितदलः, कुतलक्षणः,  
नवपेशलक्षणप्रदर्शनः, विचक्षणप्रतीक्ष्यः, रक्षणमस्तदी-  
क्षितः स्वच्छयाशयावलक्षः । उदारदयेक्षितप्रजः कुल-  
पर्यायप्राज्ञः, रसाभिज्ञः विद्वितवह्नयज्ञः । सप्रतीक्षुति  
समृतितन्त्रसन्ततिस्वतन्त्रेण, यजनजपनहवनध्यान  
प्रधानधर्मानुष्टानपरम्परापरायणेन, अनुदिनं वदन

समुदयेनहितानि कथयता पृथिवीनाथं प्रथयमानेन,  
राजाद्वारागतोहितेन, पुरोहितेन, धर्मगमगहनसशार-  
पश्चान्तनेन, सदभिजनजननयातेन, श्रीतलतरशील  
शालिना, सुकृतसचिवेन,, सदगारधारकैः स्तम्भैरिः  
सारसङ्कृतैः, अद्विजितवृत्तिभिः प्रवृद्धैः, असद्विसन-  
महापदनेनात्यनवधीरितधीरभावैश्च, परार्थानुमानैरिव  
न्यायानुयायिभिः, शक्तिसाधकैरिव संवृतमन्त्रैः, साधु-  
साधनैरिव विपक्षाननुवन्धिभिः, कविप्रवरैरिव रहसि  
पदानि चिन्तयानैः, महामुनिवनैरिवाछुव्यैः,  
गणितनिपुणैरिव देशकालकोविदैः, नीतिविशारदैः,  
प्रतिभातिविशदैः, प्रगल्भैः, समज्यारञ्जनैः,  
मन्त्रिजनैः,, दार्शीरिव भुवनाशयशयितग्राहकैः,  
योगिपटलैरिवास्पृष्टव्यसनैः, रतिस्थायिभावैरिव  
शुचिताज्ञितैः, क्षोणीश्वरैरिव क्षमारक्षकैः त्रिदशा-  
स्थानकैरिव स्फुरितधिपूर्णैः, यथाभिहितभाषणैः, तृष्ण  
याऽकृष्णैः क्रोधानवधूतैः, दूतैः,,

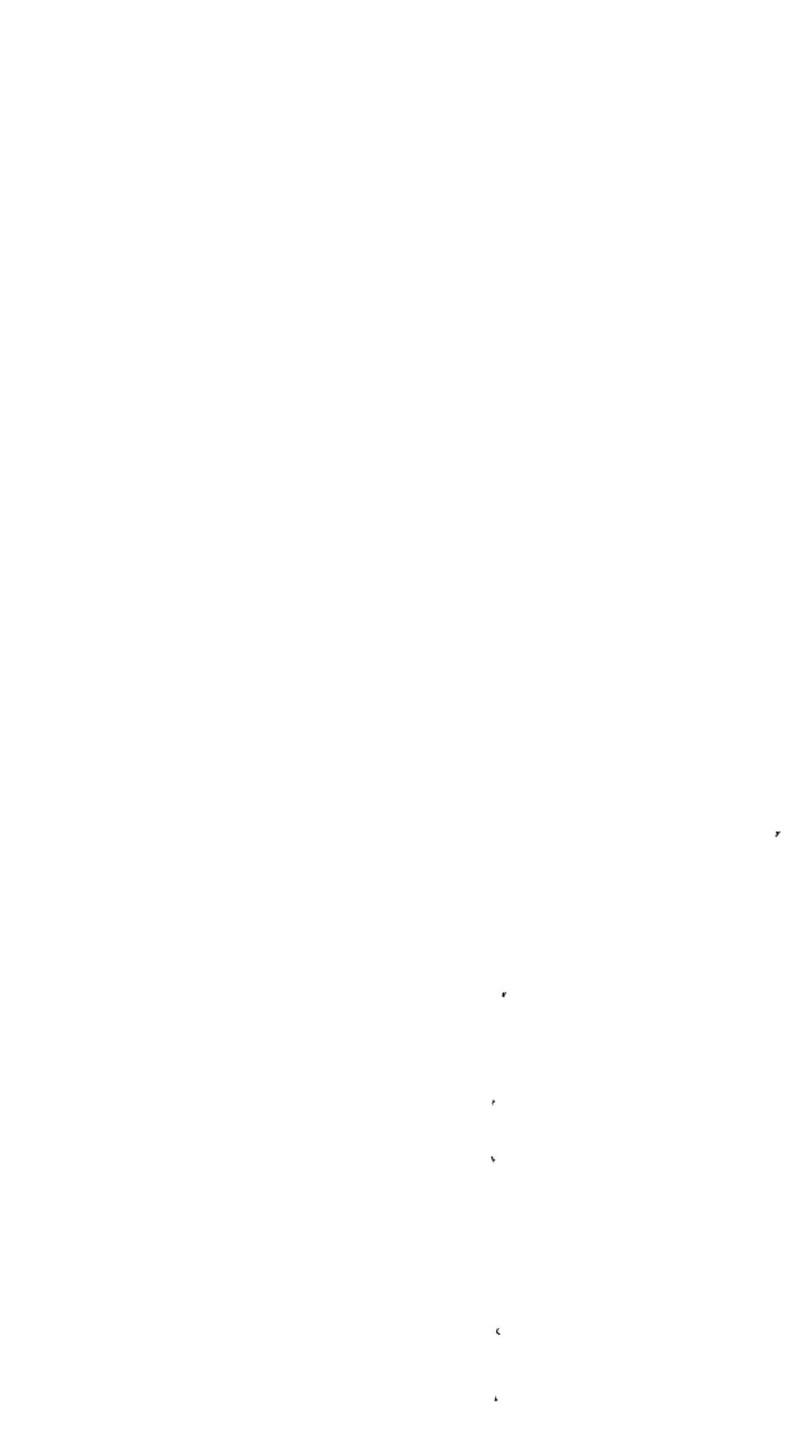
प्रवीरेति, एतेन यमापेक्षयाव्यतिरेकः । जिष्णु । जयनशीळ इन्द्रध,  
एतेनेन्द्रपेक्षयाव्यतिरेकः । अकूरेति, एतेनाकूरपेक्षया व्यतिरेकः ।  
चन्द्रकान्तः इन्द्रुसुन्दरः चन्द्रकान्तशिकाच, एतेनोक्तशिलापेक्षयाव्यति-  
रेकः । द्यूरतः दयालुः शुराद्वा उपायेति, सामदानादीत्यर्थः । कृतस्वर्णः  
गुणैः प्रतीकः । पेशलः चारः । पर्यायः क्रमः । प्रतीकः अङ्गम् । सारं न्यायर्थं

यजनं च, अवनं वनरहितं पाकनं च । कुमुदं कैरवं पृथिव्या हर्षश्च कु-  
मुद, वसु कान्तिः धनं च । तमसाराहुणा अङ्गानेनच सकलाशो समस्ता  
दिशो, सकलजनानां तृष्णा च । छरः किरणः हस्तश्च, अग्निरेति, रवे-  
स्सप्ताश्वत्वाद्विरोधः, दोषया दोषैश्वानभिमूतः । लोकेशोविषः लोका-  
नामीशश्च, अनाभिजातः नामेनजातः सुन्दरश्च । मनोजवशः कामा-  
धीनः, पितृसभिभश्च । भोगवान् फणी सुखीच, मन्त्रोमनुर्विचारश्च ।  
अद्वितीयः एकमात्रं सजातीयद्वितीयरहितश्च, द्वितीयानुरक्तः द्वितीयस्मिन्  
द्वितीयायां श्रीतारिष्णांचानुरक्तः । दर्शनं नयनम्, कविः शुक्रः, कवयिता  
च । आचदण्डकः गृहीतदण्डकाभिधानविषिनः गृहीतदण्डश्च, राम-  
मादाय विरोधः । मृगयेत्यादि मृगयाङ्गाखेटः भीमः भीमसेनः भय-  
करश्च, एताभ्यां युधिष्ठिरपेक्षयाव्यतिरेकः । गृहीततारः गृहीता तारा  
हरिश्चन्द्रस्यजाया भगवती च येन सः, एतेन तदपेक्षयाव्यतिरेकः ।  
सत्यवत इति एतेन भीष्मपेक्षयाव्यतिरेकः ।

प्रवीरो मङ्गलकरः, परसमाधिसहिष्णुः जिष्णुः । अक्षरः  
गोकुलानन्दनः । चन्द्रकान्तः सुकुमारः । सूरतः शूरतः  
उपायप्रयोगकुशलः, द्विपददलितदलः, कृतलक्षणः,  
नवपेशलक्षणप्रदर्शनः, विचक्षणप्रतीक्ष्यः, रक्षणमखदी-  
क्षितः स्वच्छयाशयावलक्षः । उदारदयेक्षितप्रजः कुल-  
पर्यायप्राज्ञः, रसाभिज्ञः विहितवह्नयज्ञः । सप्रतीक्षुति  
स्मृतितन्त्रसन्ततिस्वतन्त्रेण, यजनजपनहवनध्यान  
प्रधानधर्मानुष्ठानपरम्परापरायणेन, अनुदिनं वदन

स सुदेन हितानि कथयता पृथिवीनाथं प्रथयमानेन,  
राजादुरागरोहितेन, पुरोहितेन, धर्मगमगहनसञ्चार-  
पश्चाननेन; सदभिजनजननयातेन, शीतलतरशील  
शालिना, उक्तसचिवेन,, सदगारधारकैः स्तम्भैरिः  
सारसङ्कृतैः, अबृजिनवृत्तिभिः प्रवृद्धैः, असद्यसन-  
महापवनेनाप्यनवधीरितधीरभावैश्च; परार्थानुमानैस्ति  
न्यायानुयायिभिः, शक्तिसाधकैरिव संवृतमन्त्रैः, साधु-  
साधनैरिव विपक्षाननुवन्धिभिः, कविप्रवरैरिव रहसि  
पदानि चिन्तयानैः, महासुनिवनैरिवाछुब्धैः,  
गणितनिपुणैरिव देशकालकोविदैः, नीतिविशारदैः,  
प्रतिभातिविशदैः, प्रगल्भैः, समज्यारज्जनैः,  
मन्त्रजनैः,, दाशैरिव भुवनाशयशयितग्राहकैः,  
योगिपटलैरिवास्पृष्टव्यसनैः, रतिस्थायिभावैरिव  
शुचिताञ्चितैः, क्षोणीश्वरैरिव क्षमारक्षकैः त्रिदशा-  
स्थानकैरिव स्फुरितघिषणैः, यथाभिहितभाषणैः, तुष्ण  
याऽकृष्णैः क्रोधानवधृतैः, दूतैः,,

प्रवीरेति, एतेन यमापेक्षयाव्यतिरेकः । जिष्णु । जयनशीङ् इन्द्रम्,  
एतेनेन्द्रापेक्षयाव्यतिरेकः । अफूरेति, एतेनाकूरापेक्षया व्यतिरेकः ।  
चन्द्रकान्तः इन्दुसुन्दरः चन्द्रकान्तशिळाच, एतेनोक्तशिलापेक्षयाव्यति-  
रेकः । सूरतः दयालुः शूराद्वा उपायेति, सामदानादीत्पर्यः । कुत्रक्षमः  
गुणैः प्रतीकः । पेशलः चारः । पर्यायः क्रमः । प्रतीकः अङ्गम् । सारं न्यायं



वेषः, प्रसरनखखुरोत्खातखर्वीकृतोर्वीधरशेषनिश्चेष  
समुत्कुलफणः, विस्मापितानिमेषलेखगणः, समर-  
प्रकरचतुरै स्तुरङ्गैः, अवितथाचडुलचाडुसंलापपदुता  
सुपगतैः, प्रभावभव्यभाव भाजनैः, लोभानभिभूत-  
हृदयैः, गहनगरुगणितविज्ञानगेहैः भाण्डागारिकैः,  
प्रभोर्भालनिभालकै रथ्यलालाटिकैः, भक्ति-  
वारिभरितैः, भृत्यै, रसिराजितः । गिरिराजननिदनी  
पदारविन्दमकरन्दमिलिन्दमानसः, विस्मभूमिः  
सार्वभौमस्य, घनसमयो जनवनसमवनस्य, पुरो-  
गतः कारुणिकानाम्, अवलम्बश्श्रुतालतानाम्  
आधारदण्डः छुक्तवैजयन्तिकानाम्, प्रालेयशिलो-  
च्चयोऽनेकविवेकमहाभेषजानाम्, गूलङ्कपनदोदीतता-  
द्वुपाणाम्, सन्तानपादपोर्धिसन्तानानाम्, तपस्सि-  
द्धिभरतीयानाम्, लक्ष्मीश्वरसिंहोवभूव ॥ योगुररिति  
कथकैः, उदयनइतिनास्तिरैः, प्रभाकरतिदोषोत्करैः,  
दवइतिवजिनिवंशीः, नासत्यमूर्तिरितियोदतैः कल्पा-  
न्तहृतिसपांशैः, रामहृति प्रजापुञ्जैः, चिन्तामणिरिति  
मार्गणैः, रग्यत ।

सार्थकारैः, हणिभिः, एवं दुर्दंशसंटा तुराः हस्तः तिष्ठ-  
त, वैदस्तो यमः । इवातः आसदः । लदासपादैः दानद्वादारैः ।  
पात्रः वर्षोऽः आसदः एतोपरिस्थिं दर्श । अस्तु अन्तर्बं

(१९८)      ❁ श्रीलक्ष्मीश्वरीचरितम् ❁

विगतं धाराभिवीनोगतिविशेषः । अर्बः कृत्स्तः, अर्बन् अशः, अव-  
स्यायशर्वरैः अभिपानतमोभिः । हेषाशब्दभेदः । विस्मापितेत्यनिमेष-  
त्वोपपादकम् । भावोभक्तिः, गहनं कठिनम् । निभाककैः द्रष्टुभिः, अका-  
कादिकैः प्रभोर्मालादर्शिभिः अकार्याक्षमैश्च । जनयनं जनानां समृद्धयवनं  
विपिनम् । सन्तानतहः कल्पवृक्षः । गुरुः वाचस्पतिः, उदयनः उदय-  
नाचार्यः, दोषोत्कर्त्रैः दोषाणा मुत्करससमुदायएव दोषाणां रात्रीणामुत्क-  
रस्तैः । द्वोवनान्निः, वृजिनिवैशैः वृजिनिनां पापिनांवैशः कुक्मेव वंशो  
वेणुस्तैः । कल्पान्तः प्रलयः, उष्णेखालङ्घारः ॥

यो गौखेणवर्णेनचकाञ्चनाचलमप्यधश्चकार । यशा-  
त्रवायशोऽन्धमसप्रवन्धविध्वंसितधर्मानुसन्धानजगर्ति  
जगतीप्रातन्यमानोऽप्यस्तुयतएव धार्मिकैः । यः  
सकलकाश्यपीश कमनीयकीर्तिं कन्यकयासाकं क्रिय-  
माणेपरिणयेपिप्रायनिजस्थापितप्रोञ्जलत्प्रतापपावकं  
परिपान्थिना यशोलाजैः । विनाशितवैरिजीवनो  
ऽपियः पृथपतमपि निरभितुं नापारयदेतदीयनारीनयन  
नलिननिस्सरन्नीर्गनिर्हरान् । यं च नगरमयमानमीप  
दपि निशमयन्त्येव काविदिलोकयितुकामा निष्का-  
भ्यन्ती निकेतनात्कृतकलं विकलितमपि कनक-  
काञ्चीयुणं नाकलयन् । हतरात्र व्रजनजवधुटितामपि  
मौक्किकावल्लीनात्रोघयत् । अपगच्छ केशपारानिपतित  
प्रसुनपट्टैः पृथिवीमप्यन्नयत् । अन्या च विनिवृत्ता-

वरणवसन्तवष्णोजगिरीशनाक्षात्कारेणतरुणाननतिशय-  
मनायामानन्दमविन्दयत् । पराचाधिप्रसाधनविधि-  
विष्णीयमानार्थविशेषके एथिपश्यतां प्रतिपादयन्ती  
प्रत्यश्वकौवृद्धलानि तिलकानवसितिनाचिन्तयत् ।  
किंवद्दुना, दाचिद्वाढुमालिङ्गपरिच्छुभ्यमानाधर-  
किसलया सहसा निरस्यैव स्वामिदृढवाहुयुगनिगड-  
निविद्वन्धनं केलिकेतनान्निरगात् । यमोजसाऽ-  
धिकमवधायातिगाढ़लानिग्लपनगोचरीकृतोवाढ़वा-  
मिरन्तकामनाश्रितोदन्वदन्तस्तुधावाधितचेताभपि-  
नितान्तप्रभिर्निष्क्रमितुमनीहमानो जीवनकाल-  
जालं यापयत्यद्यापि । निमीलितेऽपिनयनकमलेक-  
मलोलासकारकं यमालोकयन् लोकाः । येनरुषा  
विषयीकृतानांद्विष्टतां नावनीवनीचप्रत्यपादयतां  
लेशमपि विश्रयस्य । येनसकृदपि सम्भाषिता स्तुकृ-  
तसारसन्दोहशालिनंरवमसंशयंसाधयन्ति सकलाः ।

शाब्देत्पादि, व्याजस्तुतिः, गतिमञ्जिनहोत्रादिक्रियाम् । पिशाय  
श्रीणातिस्म । जीवनोपीति, विनाशितं-वैरिणो, जीवनमेवजीवनंजलंयेन-  
साइत्यर्थः । गिरीषः गिरिशाज इश्ववश, अनायास भित्यनेन मोक्षानन्दापे-  
क्षया घ्यतिरेकोबोध्यते । आनवसितिम् अस्तमासिम्, अन्तकामना मरणेच्छा,  
वाधितचेताइति मरणाभावादित्याशयः । आलोक्यनिति, कमले निमी-  
लिते कमङ्कोट्टासकारकस्यरवेरदर्शनाद्विरोधाभासेन सकललोकादयव-

तिंत्वं ध्येयते । प्रत्यपादयतापिति, तथा च विरुद्धावपितदनुवर्त्तनार्थमेक-  
कार्यं कुरुते इतिध्वन्यते । साधयन्ति, अनुमिन्वन्ति न चासंशयपदंनि-  
ष्फलं, इत्नकोशकारेणानुमितेरपिसंशयत्वस्याभ्युपेतत्वादिति सत्प्रतिपद-  
दीधितौ स्पष्टम् ॥

यस्मै सकलान्तरीपवर्तिनाममानसमानभारभागिने-  
स्पृहयन्त्यशेषभूमीभूजः । यस्मादधिकद्वयक्लृप्तसप्त-  
तिकलाङ्कशलताकलितकीर्तेः कृत्सा निकारं कल्प-  
ञ्जुचोलाञ्छनञ्छलेन श्यामलिमानंदधानशशशधरः  
प्रसाधयत्यधुनापि षोडशकलोहरिपदंकरामृतैः ।  
लक्ष्मीश्वरं वीक्षितुमिवविच्छातेन कासारकैतवात्पका-  
शतेस्तरस्वतासोरसालयेवहृदयस्थितपुरुषोत्तमा, दृश्य-  
रतभूता, मदोत्कटकटघटितकरटिघट्याभिहिटिता, कनक  
कान्तिकनिता, दर्शितदुर्गतोदारदरभंगा, दरभंगा-  
भिधाना यस्य प्रधानराजधानी । यस्य न वासवस्येव  
दुससहपरतपस्यानि शीलानि, नवा गण्डीविमण्डल-  
स्येवञ्छललांचितानि चरितानि । यस्य कीर्तिरेव सकल  
कालमालोककास्त्रिका, आचाररक्षणं क्षणदासु प्रदीप-  
न्यासः, विद्यात्रतिकुसुमामोद एव ग्राणसन्तर्पणः,  
सुषमैकफलानि वकुलकमलकेसरकुलानि, एक विक्रम  
एव परमस्सहायः, राजश्रीविचेष्टितमनुचरप्रपञ्चः,  
तारिणीगुणगानग्रहणमेवश्रवणालङ्कारः, भारभूते

ॐ श्रीलक्ष्मीश्वरीचरितम् ॥ (२०१)

विविधमणिकिर्मीरिते कुण्डले, निपतिताः कोमिनीनां  
मेचकच्छङ्गः कटाक्षाएव विकचक्षुभ्यवलयविरचिता  
मालिका युणवदनुरागितानुमापनं मरक्तमणिमाल्य-  
परिधानम् । सदुपभोगेलिमापरिमितरत्नरमणीयता-  
मवसाययस्मिन्नसोदशोकस्यदक्षोभतस्सापस्मारइवे—  
दोनीमपि विजृम्भतेऽभोनिधिः । यत्रच धरित्रीशा-  
सनाधायके राजविरोधिताध्वान्तेषु, सद्वृत्तमुक्तता  
हारेषु, भोगिविद्वेषः शिखावलेषु, न लोकेषु । उत्तर-  
लतावादेषु, छटिलता तरुणीविलोकनेषु, भक्तिभङ्गो  
विलासिनीकपोलेषु, नस्वान्तेषु । सीमाविवादःशास्त्री  
यकल्पनेषु नक्षेत्रेषु । शब्दानुशासनेऽपवादः, मा-ध्य  
मिकदर्शनेशून्यवादः, न्याये प्रतिज्ञाहानिः, समासेविग्रह  
विचारः, किञ्चावसरिकवृष्टिसृष्टिकारितावारिधरेषु,  
सामायिकविषुलशालिशालिता केदारेषु, समृतप्रसव  
ता पादपेषु पूर्णकामता प्रजास्वासन् ॥ क्षितिभृत्यक्ष  
विच्छेदनाय पावेयपरमाणुभिरिवोदपादयद्यदीयदृढ-  
विग्रहं वेधाः । यदवलोकनकालविगलितवीटिकानीवि  
वन्धना युवतयोऽभूवन् । चिराय माधवंसाधयन्नपि ना  
द्यत्वेऽपि दधातिसहस्रदीधितिर्यदीयप्रतापतुलनाम् ॥५॥

अन्तरीपं द्वीपः । निकारं परिभवम् । हरिपदमाकाशं विष्णोधरण-  
ज्वच । करामृतैः करजैः किरणरूपैरमृतैश्च । विच्छातेनायातेन हृदयं

तित्वं घण्यते । प्रत्यपादयतामिति, तथा च विरुद्धावपितदनुवर्त्तनार्थमेक-  
कार्ये क्रूरत इतिध्वन्यते । साधयन्ति, अनुमिन्वन्ति न चासंशयपदंनि-  
ष्फलं, इत्नकोशकारेणानुमितेरपिसंशयत्वस्याभ्युपेतत्वादिति मतप्रतिपङ्ग-  
दीधितौ स्पष्टम् ॥

यस्मै सकलान्तरीपवर्तिनाममानसमानभारभागिने-  
स्पृहयन्त्यशेषभूमीभूजः । यस्मादधिकद्वयक्लससप-  
तिकलाङ्कशलताकलितकीर्तेः कुत्सा निकारं कलय-  
च्छुचोलाञ्छनञ्छलेन श्यामलिमानंदधानशशगधरः  
प्रसाधयत्यधुनापि बोडशकलोहरिपदंकरामृतैः ।  
लक्ष्मीश्वरं वीक्षितुमिवविच्छातेन कासारकैतवात्प्रकां-  
शतेसरस्वतासोरसालयेवहृदयस्थितपुरुषोत्तमा, हृदय-  
रत्भूता, मदोत्कटकटघटितकरटिघटाभिहटिता, कनक  
कान्तिकनिता, दर्शितदुर्गतोदारदरभंगा, दरभंगा-  
भिधाना यस्य प्रधानराजधानी । यस्य न वासवस्येव  
दुस्सहपरतपस्यानि शीलानि, नवा मण्डीविमण्डल-  
स्येवच्छललाञ्छितानि चरितानि । यस्य कीर्तिरेव सकल  
कालमालोककारिका, आचाररक्षणं क्षणदास्त्रं प्रदीप-  
न्यासः, विद्याप्रतिकुसुमामोद एव ब्राणसन्तर्पणः,  
सुषमैकफलानि वकुलकमलकेसरकुलानि, एक विक्रम  
एव परमस्सहायः, राजश्रीविचेष्टिमनुचरप्रपञ्चः,  
तारिणीगुणगानग्रहणमेवश्रवणालङ्कारः, भारभूते

विविधगणिकिर्मीरिते कुण्डले, निपतिताः कामिनीनां  
सेचकच्छयः कटाक्षाएव विकचक्षुलयवलयविरचिता  
मालिका युणवदनुरागितानुमापनं मरकतमणिमात्य-  
परिधानम् । उद्घोगेलिमापरिमितरत्नरमणीयता-  
सवसाययस्मिन्नसोदशोकस्यदक्षोभतस्सापस्मारहवे-  
दोनीमपि विजृम्भतेऽभोनिधिः । यत्रत्र धरित्रीशा-  
सनाधायके राजविरोधिताध्वान्तेषु, सद्वृत्तमुक्तता  
हारेषु, भोगिविदेषः शिखावलेषु, न लोकेषु । उत्तर-  
लतावादेषु, कुटिलता तरुणीविलोक्नेषु, भक्तिभङ्गो  
विलासिनीकपोलेषु, नस्वान्तेषु । सीमाविवादःशास्त्री  
यकल्पनेषु नक्षेत्रेषु । शब्दानुशापनेऽपवादः, मा-ध्य  
मिक्दर्शनेशून्यवादः, न्याये प्रतिज्ञाहानिः, समासेविग्रह  
विचारः, किञ्चावसरिकवृष्टिसृष्टिरारितावारिधरेषु,  
सामायिकविपुलशालिशालिता केदारेषु, समृतप्रसव  
ता पादपेषु पूर्णकामता प्रजास्वासन् ॥ क्षितिभृत्यक्ष  
विच्छेदनाय पावेयपरमाणुभिस्वोदपादयद्यदीयदृढ-  
विग्रहं वेधाः । यदवलोकनकालविग्लितवीटिकानीवि  
वन्धना युवतयोऽभूवन् । विराय माधवंसाधयन्नपि ना  
द्यत्वेऽपि दधातिसहस्रदीधितिर्यदीयप्रतापत्तुलनाम् ॥४३॥

अन्तरीपं द्वीपः । निकारं परिभवम् । हरिपदमाकाशं विष्णोश्वरण-  
ज्ञच । करामृतैः करजैः किरणरूपैरमृतैश्च । विच्छातेनायातेन हृदयं

मध्यदेशोपनश्च । पुरुषोत्तमः पुरुषेषु उत्तमः हस्तिश्च । कनिता री  
दरभङ्गोपीतिनाशः । गुणवत् मालयं गुणीच । स्यदीयेगः । राजा च  
भूपथ । सद्वृत्तमुक्तना ममीचीनवर्तुलपौत्रिकता ममीचीना । गत्य  
ताच । भोर्गा सर्पः भोक्ताच । शिखावलो मयूरः । उत्तरकता ॥  
परम्परा चाञ्चल्यश्च । भक्तिः इचनोविशेषो देवादिविषयिणी गतिश्च  
शून्यवादः विवयविषयिणोरसत्त्ववादः अर्थशून्यमभिधानं च । नति  
दानिः प्रथमं निग्रहस्थानं, प्रतिधुतेर्दानिश्च । विग्रहः समाः नति ॥  
वाक्यविशेषः इण्ठ' क्षितिभृत् राजा पर्वतश्च, पक्षः सुहृत् गत  
पावेयपरमाणुभिः वज्ञारम्भकपरमाणुभिः, वीटिका कञ्चुकी,  
नारायणं वैशाखमासंच ॥ \* ॥

यस्यानुजो हरइव परमदनाशनः, केशव इव क्र-  
मोपचितकीर्तिकायः, भार्गवइव सदाराधितशङ्करचर-  
ण । ङ्कंजः, दासरथिरिव विदेहजानन्दनः, धर्मइवकृष्णा  
लङ्घकृतालयः, सरस्वानिव शिशुमारमनोरमः, सरो-  
जन्मस्तोमइव भ्रमरहितः, उपवनप्रदेशइव तिलका-  
लितप्रियालयनसप्रमोदः प्रलयप्रथज्जनहृव धरणिधर  
प्रकरकम्पकारकः, कासारसाइव सप्रसादानिमिष  
विसरः, ब्रह्मविविषद्विविषयोपायचतुष्टयो-  
पेतः, ज्योतिषनिवन्धइव विवस्वन्मङ्गलविकाशकः,  
जैमिनिमुनिरिव शक्तित्रयसाधकः, गोविन्दविग्रहइव  
गुणाक्रान्तकुबलयः, संयमितचेताइव संजातानेकसि-  
द्धिः, गगनाभोगइव षड्गुणागारतामुपगतः, हिम-

दग्धयद्व दद्धान्योपकारकः, मखमण्डपद्व सर्वतोभद्र-  
भासितः, इन्दनाचलद्व चक्रिचितचौरः, वैदेहप्रदेश  
द्व सफलसदनः, अन्तर्मतृकान्यासद्व सन्मूलमणि-  
षुगधिष्ठानानाहतविशुद्धाज्ञा चक्रज्ञितः, उरि-  
हृदयस्थलद्व वहलसस्मेरकाश्मीरजन्मासेवितः, नन्द-  
नन्दनितोऽप्यपारिजातः, विवर्धितवाणविप्रहोऽपि  
विश्वकंतुः, धनदोऽपि सुन्दरकलेवरः, स्थिरास्थितोऽ  
पि सुधर्माधिपः, गुणाकृष्टभुवनोऽपि पञ्चाकरः,  
मन्दरात्तिरप्यविरोचनः, अस्तमितसपस्तेतिहासोऽपि  
समानितसकलेतिहासः, निस्सपत्नोऽप्यधिकारिताम-  
वासोऽभ्युदयकृत्येषु, चरणानाहतद्विजगण्डलोऽपिप्र-  
धमकीर्तनीयसमुक्तिनां कलापेषु, काञ्चीपरिवीक्षणा  
क्षिसदामासीकोऽप्यक्षो णिरेवाक्षिणाम्, धनधूमधाराद्व  
स्तातपोऽपि सुरभिः, कृष्णपक्षप्रियोऽपि कलाकरः,  
शूरोऽपि शुचिरुचिः अचलोदितोऽपिवृष्टः, गुरुपिङ्गिः,  
कालीदासोऽपिगुणाद्यः, शातवाहनोऽपिगोवर्धनः,  
वर्धमानोऽपि पार्थमारथिः, सिंहसंहननः, सहनः,  
धन्यः, राजन्य मान्यः, वर्णि वर्ण्यः, धरणिपात्रगण्यः,  
सत्क्रियासुलीनः, विश्वजनीनः, सुकलः शुकुकलः,  
कृकुदः, कलितकुदः, सफल प्रस्तावकः, अनन्त-  
संस्तावकः, परिगोपितान्धमुकः, दर्शाध्वरदहन-

दशादभ्रदेशितद्वदाकुदलदीर्घशूकः, अशुलवदयः  
सुधमेशणः, चोमिनविपक्षः, विकमविलवाकृतविनि-  
पलक्षः स्वक्षाश्रितः वलक्षाशयः, अममसमजः व्यद्वय  
विशेषज्ञः, कृतज्ञः, प्रथमपोतलदितप्रवृत्तिप्रोतसंज्ञः,

परोऽन्यो रिपुश्च, मदोगर्वोर्ध्वश्च, अन्यत्रपदनेनिच्छेदः । विदेहजो  
मेधिडः, विदेहजा सीमान् । कृष्ण; वासुदेवः कृष्णा द्रौपदीन् ! गिरुमानः  
स्मरोपमोवान्नः, जलजन्मविशेषश्च । भ्रमोऽन्यत्रभ्रमर इति । हितस्तकार  
कः अतपवपुस्त्वम् । प्रियाङ्कपनं परत्र प्रियाङ्कपनमौ योज्यौ । अनिमियोदेवो  
मीनश्च । विषयोदेशः ल्पाक्षिद्व, उपादस्तेना शमादिमम्पत्तिश्च । विव-  
स्वान् पण्डितः सूर्यश्च । शक्तिकर्यं कालयादि आधेयशक्त्यादिच । कुबुच्येति  
पृथ्वी पण्डलं नीलकमलं च । सिद्धिः प्रभुमत्रोत्साहाख्या मनोजवित्वादिश्च ।  
गगनाभोगोविस्वतं गगनम् । पद्मुणः सन्द्यादि संख्यादि च । चक्रीहरि-  
स्तर्पस्सार्वभौमश्च । ब्रह्मनं यागः परत्रफलसानां द्रुमविशेषाणां वनमिति ।  
आधप्रानेतिच्छेदः चक्रं समूडः, युलेत्यादि आज्ञान्तानि कमङ्गद्वानि  
शरीरान्तःस्थितानि तत्त्वामधेयानि चक्राणि । काश्मीरजन्मेति काश्मीर  
जातः कुङ्कुमं च । नन्दनेति इद्रोद्यानं हर्षकारितनयश्च । अपेति परिहारे  
च्छेदः । विश्वकेतुः प्रद्युम्नः, जगत्पताकः जगत्पताका च । स्थिरापृथ्वी  
स्थिरोपुक्तिः जीनन्मुक्तिरितियावद् । भुवनं जलं जगच्च । मन्दश्शनिर्भाग्य  
रहितश्च विरोचनः सूर्यः कान्तिशून्यश्च । ईतैर्हसिः इतिहासश्च क्रमेण  
वोध्यः । अघिकेतिभद्रगः । द्विजोविप्रश्चन्द्रश्च । काञ्ची रमना तद्भिषा  
नगरीच । आक्षिसा गृहीता द्वष्टाच, वामाक्षी वामङ्गोचना देवीच । अक्षि  
पापम्, सुरभिः वसन्तः मनोजश्च । कृष्णपक्षः श्यामकदलं वायुदेवभक्तश्च

❀ श्रीलक्ष्मीश्वरीचरितम् ❀ (२०५)

शुरस्सुयो वीरश्च शुचिरुचिरिन्दुः, शुचीतिशुलु पवित्रयो, रुचीति  
कान्तिलिप्सयोर्वेषकं च । अवलोदितः कुजःस्थिरष्टुदिमांश्च । शातेति  
भङ्गः सुखार्थकः, वर्धमानः तद्भिघानः दार्शनिक पण्डितः वृद्धिपाप्नु-  
दानश्च, पार्थ सारथिः तन्नामा मीर्मांसकेशः पठ्ठने समर्थसारथिकः ।  
षुक्लोदाता भोक्ता च, ककुदं शाधान्यं राजकाञ्छनं च, अनन्तोहरि-  
परमितश्च ।

नगनायकतनयाचरणमरालमिलितमानसः, देश-  
कदम्बकृष्णविदितोदारतोद्विक्त दानोदकनदी दूरीकृत-  
दृढदीर्घ दैन्यद्रुमः, द्रविणप्रादेशनामोदित द्रिजन्म-  
दम्पति समुदय हृदयदिश्यमानसमुदयः, सत्तमाशना-  
सनकौशेयांशुक्र मुकुर्मसृणपर्मास्तलमरकृतकमल-  
राममणिमौक्तिकप्रवालहारकार्त्तस्वरश्वेतालङ्घारप्रकार  
परिष्ठितकुमारिकानिकृः, अवलम्बो ब्रह्मवर्चसानाम्,  
निधानं शुजनतासुधानाम्, वीजं शुकृतशास्त्रिनाम्,  
निदाधवासरो वैरिजीवनानाम्, उच्छवसितं भारतो-  
त्साहानाम्, कुलरिपुः पापण्डानाम्, अग्रणीरन्त-  
र्वाणिकानाम्, पुण्यपरिणतिः, प्राणिपटलानाम्, खण्ड-  
बलाकुलाकूपारकौस्तुभमणिः, अभिघातिगहनाशु  
शुक्षणिः क्षोणीपतिः श्रीमान् रमेश्वर सिंहः ।

मानसं मनस्सरोविशेषश्च । जीवनं प्राणनं जलं च । अन्तर्वाणिकाशास्त्रदित्

यो नवयोवनावतारे पुण्यपदावलोकनकुत्तुहला-  
कुलितहृदयो भूयो भुविभ्रमणेन सैकतकोदरुचिरदक्षो-  
दधिरोधः प्रसाधिकामारभ्य कुमोरिकामाप्रालेयालय  
गिलोचयमाचनीलाचलाच्छण्डकाचरणचंचिताद्यावद्  
द्वारकां विद्यमानेन पवित्रयांवकार कलेवरं तीर्थ  
जातेन । गमनगोचरीकृतार्णवाभ्यर्णगोकर्ण स्तीर्ण-  
सागरो गोत्राण्यपि जगतीसागराद्वुदतारयत् । यो  
दिवसनिशेविभज्यकृत्यत्रजाय सायामयामास्वपि त्रि-  
यमाप्तु घटिका त्रितयमेवानुकम्पते स्वापेन । यः  
परिपन्थिपश्चभूति भीत्यवच्चोर्गीतकार गजलक्ष्मीपि ।  
यः मतोकृतोऽपि पुण्यप्रतीपपनितान् प्रेषप्रोऽपि  
नियमयति । यो वस्तुधासुशामन विशारदताप्रसा-  
दिना दसदृशमन्तोषमाजमग्राजमस्ताशान्मदाग्ना  
विग्रजपद्वीं प्रथमापत्यपम्पाप्रापिकासुपार्विजत् ।  
यो द्वैपायनदेशनादर्शितमंविधानेशेषाम्नागपद्म-  
वादताविदण माश्चित्यन्तयां पुण्यतारकायां कामिता-  
न्तिकः सुप्रभापमित्यापेतु पुण्यन् पनिशेषमाप्तय-  
ति इत्यहृतमुखान् सर्वादिः । यत्तादित्यस्तोत्र  
त्रिदिवदर्शनविद्यरुदित् विदितप्रगतनमताशत-  
कमिति तद्विद्वान्मौल्येभिर्विदेन गत्यामात्रप्रवर्त्तयां  
तद्विदेन यद्यपि विद्वान्तद्वेषमां विद्वान् विद्व-

वाचकतोचितमभिमानं विपश्चितां निचयस्य । ये  
होमस्तोमकोटिपटितकोटिप्रमित स्वतन्त्र मन्त्रणा  
नियन्त्रणादितसावित्रीमन्त्रहोमापरिमितश्यामामनुज  
पनविगलितकलिमलामतिमेध्यतयाऽमोदिनीं मि-  
थिलामेदिनी मतनोत ।

विबुधधुनीसोतः प्रतिरोधकमधरीकृतधराधरं नीहार-  
मदीभ्रसविधवर्तिनं हादिनीहृदैर्वषद्विग्रावद्धं जगदनु-  
द्धारहेतुं सेतुभेदंविच्छेदयन्नापादितप्रसन्नतालताप्र-  
तानविततातिविनताशेषजनताकृतार्पण कर्मधर्मरत्ना-  
करोपाधिमधिदधानोविस्मृतिपथपथिकं यः प्रथित  
कथमगीरथमकरोत । यससहपूर्वाविर्भवान्ववायैः प्रो-  
दधत्प्राच्याचलपदे प्रतिष्ठापयांवभूव शोभनं भवनं  
सुवनेशीपदाभ्मोरुहणाम् । योऽपचितपुण्यपादपेषु  
पदेषु पीडां साधारणतरेणाऽपि नरेणसोङ्गमशङ्गमीष  
दप्यविगणप्य सत्सवप्यनवार्यराजकीयशार्यवर्येषु मा-  
ध्वीकाधिक माधुरिका दधूतवानिमधौरय व्यलीक  
विख्यातव्याख्यानतः किलिविषाभिनद्धुद्विसामान्य-  
समुद्धारवद्धप्रतिज्ञोविशुद्धतमामाधायक्षडालुनांमद्ध-  
र्मवर्धनेन समस्ताराद्धवरणसरोरुहोविजयते जनपदेषु  
सकलेषु । मिथिलामगधाङ्गकामरूपपाञ्चालादिदेश  
संहतौ निष्पादिते सकललोकलोचनालाने निलयनि-

करे प्रतिष्ठापितदेवतोऽपि यस्ततो लेशतोऽपि तोषं  
मनागप्थ्यलभमानस्साधयतिसाधुसौधं सुधाशिनां  
शिल्पिसारैः। जीर्णेद्धरणकामनया च मृगयते पुरातनं  
केतनं तेषाम् ।

नियमयतिदृष्टयति । द्वैपायनदेशना मीनपुराणम्, दलेनेत्यत्रोप-  
ब्लज्जेत्रतीया । कोटिश्रम्, कोटिः संख्या । प्राच्याचेहपदं नीडाचलः  
पुरातनाव्ययपदं पोक्षइतियावत् । सावयति निर्भाष्यति, सुधाशिनां देवा-  
नाम्, सारैः श्रेष्ठैः ।

विलुप्यमानातिसनातनसुकृतवनांवनाय प्रयतमाना  
भारतधर्ममहामण्डलाभिधाना महासमिति यमेव प-  
तितयाऽबृणोत्सत्यपि सुवेशविशदवसुराशिराजितेऽ  
पि राजके । यमतिशयेन शाम्भवनगरदृश्य विश्व  
विद्यालयारम्भमूलस्तम्भभूतं सम्भावयन्ति विश्ववा-  
सिनः । यन्त्रन्यासस्यीता नोपस्त्रिंतुं प्रभवन्ति यं  
परभुजङ्गमाः । यमेवचोपजीवति परिणये शास्त्रविषये  
च भवन्ती जातिमीमांसा । यमालोक्यास्तोकसतोक  
स्थविरलोकोदीरितैः जयजय महाराजाधिराजेत्यालो  
कारावकोलाहलैरनवकाशतामासादयत्याकाशम् ।  
वासरावसाने विहरणायवद्विरारहितमाकर्णयन्तएवपरि  
हृतस्वकृत्या शृङ्गाटकं यमभिवीक्षितुमितस्तोनिक्षिप्त  
चष्टुपो मिलन्तिजनास्तत्र तत्र नगरेषु । चातकवदा-

चरितानिच प्रापादवलभी विभूषयन्तीनां भवन्ति  
वदनानिकामिनीनाम्, कुवलयमयानिचायनान्तिक-  
निलयवातायनानि लसन्तिसुन्दरीनयनैः । येन  
प्रकृतिभावं प्रोपिताअपि नैव सन्धिविधुराः । येन स-  
सुदायशातितशरीराअपि शात्रवससुदायाशशूरमण्डल  
भेदिनो वभुवुः । येन सप्तधाऽधुनावधि श्राद्धमधि  
गयमाविधाय पितृननीयतातुलातृप्तिः, येन भूयसा  
निशासु साक्षात्क्रियन्ते परमप्रीतिपद्धतौ सपासीना-  
आशीराशिविश्राणनपरायणाअङ्गणागताः पितृ-  
गणास्त्वप्नेषु । येनानेकत्रक्लिपतश्चिकित्सालयोवि-  
द्यालयोवह्नचर्याश्रमश्च मानवानुपकरोति नितराम् ।  
यस्मैयुणश्रवणसाक्षात्करणं प्रवणान्तः करणेन विती-  
र्णा सार्वभौमेन जी. सी. आइ. ई. के. बो. ई. इतीय-  
मूर्वीपति दुरासदार्थयुर्वी वहुमानं प्रपापयन्ती पदवी  
प्रमोदतेऽतितराम् । प्रणीतश्रोत्रियपरिणयसिद्धा-  
न्तरीति सन्निवन्धाय यस्मै व्याहृतानि श्रोत्रियसन्त  
तीनां वितरन्ति शंततं सततम् । यतः कथा प्रसङ्ग-  
सङ्गतममङ्गलाभिषङ्गकरं पुराणकृदम्बकोदन्तमारु-  
ण्य कौतुकादेव पौराणिक धुरीणतासुपगतास्तत्सवे  
शासिनः । क्रतुशतविहापितस्वापते यस्य यस्यद्रविण-  
हीनतां वजन्ति प्रत्यर्थिनः । यस्य शासनेनसमन्तर्तः



त कुम्बानिकुरम्बावृत नडागतल्लजाध्वर कुण्डप्रकाण्ड-  
मण्डलीप्लुष्यमाणेन्द्रनोद्भूष्ठव्यामल्लविधारिष्ठम-  
धाराच्चान्तसंजातधवलधामयशस्तुधानिधि रनारतं  
ससुद्धासयतिसुवनोदराणि । यत्समरसमज्ञां सपत्ना  
अपिनापहसुवते किं इनस्तुहृदः ॥

मन्त्रो विचारो मतुष्ट । बालोक्तारोजयश्वदः । बोरहिन मागत-  
म् । प्रहृतिमादः मविवत्त्वं व्याकरणे भसिद्धः मन्त्रिविरोधो । समुदायो  
युद्धम्, शूरमण्डरं वीरसमूहः सूर्यमण्डलं च युद्धेन्द्रतस्य सूर्यमण्डलपथेन  
गमनं भद्रत्त्वान्नयः । अभिषङ्खः पराभवः । द्रविणेति घनपराक्रमयो-  
द्वौष्ठकम् महगङ्गदन्तु ग्रामेऽकल्पयापयोः । क्षमापृष्ठी तितिष्ठाच । जट-  
जां बहुजातालहाजाताच । व्यभिचारिभावोऽस्त्राह्ननाम, मित्वं निर्वेदाद-  
पश्च । इतीति नाम्नोऽक्षयोत्तंचक्षम् । पारशवतःशूद्रायां विष्ववनवज्ञाऽह्न-  
ताद । नीवीमूढधनमपि । नामपरेति गजचरणः शूरतामनविशेषश्च ।  
संक्रम्भनेति रोदनक्षरोवामवश्च । ज्ञाष्टेविश्वरुदिशाच आम्नायमिति,  
अन्तेतापहृति शुतिरित्यर्थः । स्वपःस्युतः स्वदन् अस्तुतोवक्तः स्वदा-  
स्युतेष्व । जह्ननिधिः अविदिः विश्वयेनाह्वश । कुम्बा गहनमावरणम् ॥

स चासौतयालक्ष्म्यापरमोदारयुणपरम्पराभिगत्तिसो-  
लक्ष्मीश्वरसिंहः क्षोणीपरिवृद्धस्तातानुमतंतासुपयेमेऽनु-  
मत त्वक्षीयकुलकमादागतां व्यवस्थाम् । ततोऽगति-  
मेहुरेण श्रणयेन पेव्यमानस्य प्रेयसः प्रेष्टतां शर्मिष्ठेव  
यपातिभृपतेः प्रवातिस्म । अय सास्मितस्तुधात्वपित-

मूर्तिरधरकिसलयाश्रिताकृशानुशिखामिव व्याहृतिभि-  
 रशुतिसुददीदिपलक्ष्मीश्वरस्य । अभिनवप्रभासलिल-  
 प्रङ्गवाहमञ्जुला त्रिवलितरङ्गसङ्गता नाभिसमावर्तिता  
 लोमावलिशैवला प्रतिभासिताङ्गुष्ठनखवदनानेकचन्द-  
 चक्रवाला लोचनवैसारिणविचेष्टिता व्याकोशशश्य-  
 कुशेशया तरङ्गिणीव रराज । शितिपलक्ष्मीश्वरक्ष-  
 सिस्थिता सरससुमनोरमणीया प्रौढगुणयुक्तिता-  
 प्रवोधितमन्मथा तरणिमतरणि मोदितारोपप्रतीका  
 सुललितसन्निवेशा अभिसुरभितप्रदेशा आनन्दिता-  
 लिमण्डला मालिकेवविललास । शुचिरसभरसम्भृता  
 त्रिवलिसोपानशोभिता विलसदास्य सारसा प्रियलो-  
 चनरोलम्बावरम्भिता हंसस्फणितनीतरामणीयका सर-  
 गीव मगाम । गुणव्यासभुवनाऽपि लक्ष्मीर्घेरककल्प  
 पादगावमिनी प्रियप्रयणरङ्गवलिपूरिनाऽपि अप-  
 णीयिता, नवदल्लगीवचकाश । दोषाकरेणादृश्याऽपि  
 द्विजगजलोचनप्रमाणिनी, शुचेरगोचराऽपि शुचि-  
 द्वयमानशतदला, रिमतविषयीकृताधगाऽपि 'पनिबन',  
 मदेतत्त्वाऽपि देयादृपिता दिदेव । यथामाजगर्तीयु,  
 द्रेतसाप्रियनिर्दिग्भितेयु, भरतयाभवनीपदामोजेयु

दानेन दिजातिहृदयेषु, अनुज्ञया परिचारिकाषु  
एकाप्यतेकधाधृतविभागेव वभ्राज । तस्यास्तुरभि-  
मासयुगं तदा पलमिव पलायतेस्म, प्रणतसतीचिक्षुर  
चश्वरीकसश्यरुचिरंचिरं चरणाम्बुजं रुचे इति ॥

इति मैथिलश्रोत्रियश्रीवालकृष्णमिश्ररचिते  
लक्ष्मीश्वरीचरिते पञ्चमोच्छवासः ॥

पेत्यमानस्य सेव्यमानस्य, व्याहृतिभिः वचनैः भूः स्वाहेत्यादिभिश्च ।  
शयोऽस्तः, दृष्टिः पुष्पं शोभनं मनथ । गुणः सौन्दर्यादि दामच,  
आलयाः सख्याः अलेश मण्डदय । शुचिरसः शृङ्गाररसः प्रीतिरिति  
योवत्, शुक्लजलं च । इंसकः पाद कटकः मराकथ, समास रराज ।  
अपर्णाभिता न पर्णाश्रिता पार्वतीमाधिताच दोपाकरेण चन्द्रेण द्विजराज  
श्रन्दः लक्ष्मीश्वरसिंहश, शुचिः सूर्योऽनक्षश, अवरोनीचः अवरौष्ठश,  
समेखला समेपाधौ खला रसनान्विताच । युगं द्वयं कृतयुगादिच ।

इति पञ्चमोच्छवासटिष्ठणी ।

## अथ षष्ठोच्छवासः ।

सचैषाऽनश्वर शोचिषा यशसा शारदशशिजित्वरी  
 श्रीलक्ष्मीश्वरी सौवर्णकलसोलसित सौरसरितसलिलै-  
 खुमासं वसुमतीसुरेण समानायितैः कर्पुगपूरपेषितपा-  
 टीरपंकपृक्तैः प्रतिवासरं लेशतोऽपि स्नेहसामान्यम-  
 स्पृशन्ती स्नाति विधिदेशितैः प्रकारैः । तृणकतुलि-  
 तां तनुमनुमन्यमाना पूजनजप्त्यानदानाद्वैतवेदान्त-  
 विद्यानिषुणपुण्याचरणवणजरत्पूर्णपौराणिक श्राव्य-  
 माणपुराणाकर्णनैः, कचनदिवसे पायसेन पानेन कच-  
 नचफलमूलाशनेन, कुहच नरजन्या यदभ्रदर्भगर्भयां,  
 कुहचनच कुरंगचर्मनिर्मितायां शयनेन शय्यायामति  
 तिवाहयति दिवानिशम् । नहिवर्ततेव्रतमुपोषणोचि-  
 तं किमपि, यदनया नसम्भावितं तेन, मध्यमाङ्गुलि-  
 चरमलेखा मेषा नाममात्रशेषतामापिपतजपनीय  
 कुशमूलादिमालिकाऽवर्तनैः । यस्यानयने कान्ति-  
 विलोकने, श्रवणे कथाश्रवणे, वदनं गुणकीर्तने, रस-  
 नं पदसारसरसस्वादने, मानसमनुचिन्तने, करौ  
 परिचरणे, चरणौ प्रदक्षिणे, धनमुद्घवसं विधाने,  
 नारायणस्य परायणान्यासते । या शिविप्रकृतिरिव  
 सदासदया, सन्ध्येव वन्दनीया, कादम्बिनीव समावि-

स्कृत शतऋद्दा, स्वर्णदीव स्वर्णदायिनी, प्रावृद्धिव  
दानोदकाद्वा, परशुरामसंसिद्धिरिव परस्वधवल प्रसु-  
दिता, अदितिरिव ( नागतगरीव ) अनन्तास्तिक्षा-  
ज्ज्वता, अर्णीष्टकम्बलावस्थितिश्च, विष्टपसृष्टिरिव  
सत्यकाधिष्ठिता, सौदामिनीवकन्दाश्रया, आयुर्वेद-  
विद्येव विज्ञातगिरिजागतगुणा, मधुसूदनशेषुषीव  
जीणोद्धानविधायिका । काननइव शालग्रामश्याम  
लेमन्दिरे चिरेणादासमातन्पथाना, सुनिभूमिरिव  
सरलप्राह्यणीसेविता, विश्वोपासिताच, समीत्सखशि-  
खेवोदर्चिष्पती, कुलशैलसंहतिरिव सुस्थिरस्थितिः,  
आनिविक्षिकीवरक्षितानेकजातिः किन्त्वहृष्टदृष्टान्ता,  
देशेषिक ( काणाद ) शिक्षेव सविशेषगुणा किन्तुद्देष-  
कल्पोभ्या मदूपिता, समीक्ष्येव सत्प्रकृतिमहत्तत्ववि-  
मर्शीनी सत्कार्यसाधनीच, किन्त्वनभिमाना तमसा-  
नासादिताच, योगानुशिष्टिरिव निर्विकल्पनियमवि-  
शिष्टा, किन्तु क्षिष्टवृत्तिपटलासृष्टा, मीमांसेव स्वतः  
प्रामाण्य माश्रिता महामनोश्च, किन्तु श्रुतिसवल  
वाक्या आर्थभावनाशून्या स्वप्रेऽपि शवरेणागृहीताच,  
वेदान्तवागिव विवर्तमानविश्वा, किन्तु श्रुति माया-  
वादरहिता । व्याकृतिरिव वर्णसाधुताव्यापृतप्रक्रिया,  
प्रत्याहारसहिताच, किन्तु गुणवृद्धिवाधविधुरा,

सादित्यविद्येव सद्रीत्यनुकूल समासोक्तिसारदीपको-  
 दाच्च समविशेषगुणसमुच्चया, किन्तु प्रतीपव्याजोक्ति-  
 पतत्प्रकृष्टामतपरार्थताभिरघटिता । दण्डकानास्थि-  
 ताप्यनसुया, स्पृहणीयविवेकपूर्णाऽपि समीकृतनैकव-  
 णी, वामाऽपिदक्षिणा, विलक्षाऽपि शालीना, कुलीना  
 ऽप्यकौलीना, अवसुधाऽपि मङ्गलस्यजननी, कर्णा-  
 नन्दकरेणाऽप्यर्जुनचेष्टितेन विश्रुता, गृहीतविग्रहाऽपि  
 कलिविगलिता, सुप्रसादितपरिजनाप्य प्रसन्नाश्रिता,  
 सर्वमङ्गलाऽपि विभवस्थिता, क्षमोपरिस्थिताप्युद्धता-  
 नन्ता, अगुरुपुजनपराऽपि गुरुपुजनरता, शीतल-  
 शीलाप्यशीतका, द्वितीयास्थितिमत्यपि दशमीस्था,  
 मरुमेदिनीकामकीलालस्य, ऋद्धः क्रोधवैश्वानरस्य,  
 अधिमासोलोभाध्वरस्य, मध्यवासरो मोहतिमिरस्य वि-  
 भावरी दम्भप्रचण्डमार्त्तिण्डोदयस्य, शैलेयशंकलमह-  
 ङ्कारानोकद्वाङ्कुरस्य, गगनमालवालं स्पृहालतायाः,  
 विष्टिसमथो मायाप्रयाणस्य, केरलकाश्यपी श्रीष्यांवि-  
 सूचिकायाः, कृतनिर्यातिना, नव्यसना, वृसीसमासी-  
 ना, अकुहना, अशौष्कला, नत्यक्तनक्त्रता, नन्द-  
 तवन्धुता, वाचं यमा, निर्जितेन्द्रियग्रामा, अरुशती,  
 सती, अनुपमितमतिपती, विनयवीजक्षोणी पारि-  
 काद्विणी ।

## ॥ श्रीलक्ष्मीश्वरीचरितम् ॥ (२१७)

स्वर्णं कनकं शोभनजलं न । दानेति, दीयमानोदकादर्निक्षत्रयुक्तेत्य-  
र्थोऽन्यप्रवोधः । परस्नमन्यथनं परथ्वधोऽस्त्रविशेषः । कन्दः सस्पमूलं मेघश्च ।  
गिरिजा उपा अभ्रकं तु गिरिजम् । जीणोद्धारो मणेस्टीकाऽपि । सरले-  
त्यादयस्तरुभेदा । रक्षितास्यापिताऽपि; जातिरसदुत्तम्, प्रामाण्यं प्रमा-  
दुताऽपि, प्रहृत विभु, श्रुतिर्निरपेक्षोरवः श्रुतिलिङ्गादीनां पूर्वपूर्वस्यप्राचल्यं  
पीपांसासिद्धान्तः, आर्यमावनाप्रवृत्तिः घनमावनाच, विवर्तमानं विशेषेण-  
वर्तमानं विवर्तरूपं च, । प्रत्याहारो योगाङ्गम्, सदिति मक्तुविशेषणानां  
षहुदीहिषटितः कर्मधारयः, पात्रातुकूलाद्योऽङ्गाराः । विक्षा निर्बज्ज  
दितीर्ण ऋक्षाच, कौलीनोऽपवादः । अवसुधा अवनेऽमृतस्वरूपा, प्रसन्ना-  
मुरा, अगुरुराजाईम् शीतकाऽङ्गा, दग्धपीस्या क्षीणरागा, निर्यतनंदा-  
नम्, वृसीवश्चर्यासनविशेषः । कुहना दम्पत्र्या शौकका आपिषाशिनी,  
रुक्षती अकल्याणीवाङ् पारिकाङ्क्षिणी तपस्विनी ।

यस्या विशेषेणलिखितं स्यादतिपतेदाम्नायन्तरुष्यं  
महाभारतं च पवित्रचास्त्रिम् । यदीयसमज्ञाशुभ्रांशु-  
समुदये विकसन्ति सतां स्वान्तसारसानि, उन्निष-  
न्ति च पुरातनीनामपि सतीनसन्ततीना मयशस्त  
मांसि समन्ततसान्द्राणि । यस्या यशसासदृशता-  
मप्यनासादय दालोकयन्ती दिग्ङुना नित्रुलयति  
कुत्तुकिनी पुराऽतिशयेनविशदयितुं सिन्दूरमेहुस्ति-  
मपि स्वादर्शमिन्दुमण्डलम् । यामभ्विकापदाभ्वुजनम-  
नोः पूजनेमनुमनुजपन्ती, निषवनप्रदीपमप्यतितरां

त्रपातोयनिधौ निपातयन्ती मपघनैर्घनध्यानास्पन्द-  
 मानप्रमोदवाष्पासारवर्षिनयनकमलां, कलकलकला-  
 पेनाप्यनपनेयसमाधिष्ठिगच्छतां योगिनामपि  
 मन्दाक्षमार्छन्ति चक्षुंषि । यस्या स्सौमनसस्ववन्ती-  
 वीचिविसरशुचौ यशसि शरीरशेषुषी, न विनाशिनि  
 मांससञ्जिवेशे । या पयांसीव पश्यति स्वापतेयानि  
 प्रादेशनेषु, यदा पञ्चकाञ्चनोऽकिञ्चनोऽपिकाञ्चन-  
 शोभां विवृण्वन् यदीययथोभरं विभरांबभ्रव । या प्रति  
 वोसरमाशयति सहस्राणिभृषुरणाम् । या मङ्ग्नया  
 समं समुद्धायन्ति गृहेगृहे सानुरागमग्रजन्मानः ।  
 यया स्वकीयकीर्तिकदम्बकेन साकमजर्याणि प्रतिष्ठा-  
 मनायिषत सज्जानि दैवतानाम् । या पदारविन्ददा-  
 नादनुकम्पितयादोलिकया देवदर्शनायगच्छन्तीदिष्टु  
 भिक्षुकांनदापयतद्रव्याणि दयाभिः । सेय मवगाहते  
 स्म त्रिजगतीवन्दितेनाऽपि त्रिपुरारातिना शिरसा-  
 विधृतां, प्रतीततीव्रतरतपः प्रीततया भगीरथस्थानु-  
 यातां, तर्पणवितीणासिततिलततिलसितशीततोयां,  
 छुकृतिकलापकलिपतकुटीरक्कुलां, मज्जनंकलयन्तीनां  
 ( कुर्वतीनां ) कामिनीनां कुचकलसकुद्धकमेन, लो-  
 चनकमलकब्लेन हृदयहासिहरिचन्दनद्रवेण वदन-  
 विधुविशेषकेण शवलीकृतविमलवारिकां, दुर्गति-

गिरिदारिकां, कलुषायकुप्यन्तीमिव कम्पमानकमल-  
कलेवरां, यमभयान् हसन्तीमिव हिण्डोर कपटेन,  
शिगिरादिवकृशतासुपाश्रितां, प्रियसागरेण सङ्गति  
श्रीलयितुमिवानुरागेण गृहीतवेगां, क्षितिपतिकरदयी-  
मिव प्रदर्शितपृथुरोमरूपां, साधुसास्वतीमिव विश-  
दाशयां, वृहदारण्यक श्रुतिमिव उपनिषद्बरां, नरनाथ-  
नारीमिवनदीर्णा, त्रिपथगामपि अनन्तपदप्रापिका  
निम्नगामपि समुन्नयित्री, भ्रमाकुलामपि भ्रमभज्जिर्णा,  
सुवनोद्धारिकामप्यङ्गीकृतभुवनविग्रहाम्, अनङ्गा-  
रातिसङ्गतमप्यनङ्गानां नयन्ती, पञ्चतिमिव निर्वा-  
णविश्राणनस्य, सरणिमिव सुरपुरप्रयाणस्य, मौक्किक-  
स्वजमिव भारतक्षितेः, प्रोत्तुङ्गरिङ्गतरङ्गभङ्गा-  
हितचन्द्रचन्द्रोचयमरीचिसहचरपलवीचिनिचयचन्द्र  
नार्चितचारुनीलाचलां, हरिद्वारे हरिपदप्रसूततया  
क्रियमाणकोतुकासङ्गां गङ्गाम् । अहिमक्तेऽधिनिष्ठति  
मकृतत्वमनत्पवारं चक्कारकल्पवासं प्रयागे । यस्मि  
न् वयस्येव मिलतिकलिन्दकन्यकया कवीनां संह  
तिरिवान्तः सारस्वतसान् वहन्ती भगवती मन्दा-  
किनी, वालवीजवपनेन च प्रसवोभवतिकैवल्यस्य ।  
हेरिचरणसंचरणपवित्रितरजोत्रजेत्रजे च तपततनूजा  
पुण्यपयः पावितपरिसरे कृतयुगारम्भइव राधाराधिते

सत्याश्रितेच, मेदिनीशसीमन्तनीविग्रहइव ललितो-  
ल्लसितचित्राभरणशोभने, भरतानुशासनइव समु-  
ल्लासितरासके, क्वचिद्क्षुततनूजन्मजननिजन्यप्रमो-  
दजाताश्रुसम्पातिनयनजलजाभ्यां वसुदेवदेवकीभ्या-  
मुपश्लोकथमानस्य, क्वचिदासगंसं कंसं विध्वंसितुमव-  
तंसकृतवीर्वेषस्य, क्वचित् वृषभानुतनुजया सरोषं  
सकटाक्षं वीक्षितस्य, क्वचित् सान्द्रमालिंगितस्य,  
क्वचित् परिदिमितकालियपृदाकुपतिप्रेयसीभिः स्तुति-  
विषयीकृतस्य, क्वचिदवाप्तसंस्तवेनवल्लवकदम्बके-  
नाऽपि विहितस्तवस्य, केशवस्य, सवनेन, क्वचित्  
राधिके ३ इति सप्रेमोदीरितगिरां निशमनेन, क्वचित्  
कृष्ण २ कृष्णेत्याकर्णनेनाकलयां चकार परां प्रीतिम् ।

कमङ्ग जलम् । उपनिषद् धर्मः वेदान्तश्च, निषद्रोजम्बाडः ।  
नर्दीना सरिच्छेष्टा, अदीनाच । अपः वावर्तः भ्रान्तिक्षानंच । भुवनं  
जात् जलंच, चन्द्रोच्चयः कर्पुरपुञ्जम् । मकरोराशिविशेषः, राधागोपी  
वैशाखद्यरातः । सत्या, सत्यभाषासत्यम् अवितयम् । ब्रह्मिता ब्रह्मितंच  
चित्रा चिरचेतिच्छेदः । रामकृष्णोपस्थपकविशेषयोर्विद-  
वय । वासनोग्रामाः, गंस्तव एविचयः ।

अनयाऽसकृत सौरोपरागं सहदयहव सारस्वतरसा

थ्रिते, प्राचीभागद्व इरिपादपुताचले, कलेः काले-  
ऽपि धर्मचाणयुगलोद्धासिते, नकुलकुनपराक्रमेऽपि  
वहृवीरनागवलिते, कर्णकृत कायान्तः कवचवितरण-  
प्रसुदितकेशवे निर्वर्णक्षणक्षेत्रभूते, कुरुक्षेत्रे, वितनित-  
विधिविदितकृत्यपाऽतितमां सममानिषत द्विजन्मानो  
दानैः । गिरिशप्रेयैसीमित्युत्तरगामिभिस्तरङ्गैस्सङ्ग-  
तयागङ्गयाऽलिङ्गितां, सुक्तिक्षितिरिति सुसुक्षुलक्षे-  
ण लक्षितां, कैलासनगरीमित्र भैरवरक्षितां, श्यामा-  
मिव तारकाविकाशिकां, काशि रामाश्रित्य हशोर्विं-  
पयीकृतो विश्वेश्वरः । परितोऽवचाय परिपदिपरितो-  
षितश्च सञ्चयोविपश्चिताम् । अनयैव विन्ध्याभिधाने  
धरणिधरे भगवतीसमाराधिता, साकेतेसरयूसोतसि-  
स्त्रातयासीतासहकृतोरामोऽवलोकितः । चित्रकूटगिरो  
गोदावरी अवगाहिता, बैद्यनाथस्सर्पयाप्रसादितः  
जगन्नाथोऽपिनयनपथातिथीकृतः । प्रातिदैनिका-  
नेकजनभोजनसमुचितकुसीद फलान्यदीयन्तदेवद्वि-  
जाय द्रविणानि तीर्थेषुतेषु । यवानां तिलानाऽच्च  
भूयसीराशीनिराशीकृतविभासिशिखप्रांशुताः, शर-  
दाशनीयान् सपरिम्लैः सर्पिणादिपरिकर प्रकर्म-  
णिष्ठान् तण्डुलानपीयमर्पयति विश्राय । गाङ्गे-

यशृङ्गालङ्कृतशृङ्गसङ्गतं, शृङ्गीकनकवन्धुर-  
 स्कन्धवन्धं, रजतराजिराजितस्फुरितशकं परमपीव-  
 रान् धरणितलामर्शिनोधवलिमाधिकान्, पयोधरान्,  
 दधानं, घेनूनामजसं सहस्रमुत्सृजति । क्षमाभूतमिव  
 प्रोच्छ्रुतं, शममिवश्रितसज्जनं, दक्षिणनायकमिव  
 वशीकृतवशं, सगोवरमिवोल्लसितपद्मकाननं, साव-  
 ग्रहमपि शीकरासारकारकम्, अदूष्यमपिवरत्रानुव-  
 निधनं, तैमिरीमहङ्कृतिमपहरते व हठितसंहननं सत्त्व-  
 विमृत्वरेण कालकान्तिजालकेन, अजगरभुजगगात्रे-  
 णेव गृहीतमौवेण शुण्डादण्डेन पश्चिमसन्ध्यामिव  
 सन्धारयन्तं, परिणतिललितलब्लीफलकनितकोदण्ड-  
 बदरालतारकार्तस्वरसारशृङ्गलित प्रतीकत्रिकरदद्यं  
 कदलीदलवदाचरितपृष्ठुदेशं, विहितवृंहितोत्थापित-  
 पृथुवेपथुपृथिवीमण्डलं, पाश्वतश्युगललम्बमानवि-  
 शङ्कटघण्टाटङ्कारटङ्कपाद्यमानश्रुतिपुटीपटलं, हाट-  
 कादिलुठितसगावगुणित कठिनकण्ठदेशं, परिमेलि-  
 ताधिकस्नेहदीसिगेहडेहमन्यमिव श्यामलिमानमाश्र-  
 यन्तं, गौरादिरागरज्जितातिविशालभालस्थलं, चरण च  
 तुष्ट्यीचञ्चित चामीकरकृतकलकिङ्गिकाकलापकणि  
 तकान्तम्, अहंयुतान्धतयेवमन्दमन्दगमनेन मानसम  
 पद्मन्तमवलोकमानानां, दिगुणिकृतकमलरागयुटिका

वलीकिरणाकलित्कर्णदर्णं, हेमहीरङ्गमहामौक्तिकप्र-  
वालजालजडितलम्बमानास्तरणदर्पणप्राप्तप्रतिविम्ब-  
कैतवेनजननिवहं वहेन्तमिवपार्वभागयुगलेन, सि-  
ताग्रशृणिक्षितपनाथासनं, जगतीगतगन्धप्रहणलुच्छ  
तरमुखस्मधुकरनिकरलोलश्यामलतमकपोलपालिसन्त  
तस्य न्दमान दानोदकामोदमेदुरितमेदिनीमण्डलं, द-  
न्तावलं प्रत्यपादयदवदान्यावदान्यतान्यकतोपमान-  
स्थानप्रतीतानवरतवहुमानदानउमुद्रसन्दर्शितातन्द्र-  
यशश्चन्द्रसान्द्रधरणिपतिशताऽधिभागीस्थीप्रतोरम् ।  
नर्मदामिव वेणीरमणीयां, ज्योतिनीमिवचन्द्रभूषणां,  
गणितविद्यामिव नक्षत्रमालालुभितां, नृतनानुराग-  
प्रक्रियामिव रचितविचित्रपत्रलेखां, स्रोतरवतीमिव  
लावण्यमलिलस्य, प्रधानराजधानीमिव मन्मथपार्धि-  
वस्ता, प्राङ्गणप्रान्तसुरभीकरणदक्षयक्षकर्दगसम्भित्त-  
वर्तिवाभिरुत्सादितां, सुगन्धशुचिसलिलरनापितां,  
महाधनाधिवासितकौशेयान्तरीयचञ्चत्काशनश्चु-  
काञ्चिताम्, आस्थास्थापितस्थासकां, कङ्कनसश्चु-  
विन्यस्त प्रबुरतरवासरानुसारि परिमललितमालनी-  
प्रभृतिप्रसुनप्रसूतस्नेहरान्दीकृत धिलादलश्यामल-  
विमलकंशपाशा, सुगमदामोदनिष्ठन्दिनादिन्दिना-  
काश्मीरादिनिर्मितेन तमालपलासेनच दिलहित-

लीकां, कज्जलकलाशलाकाकलितलोन्नोत्पला, हाटकघटिताटङ्गतटमिलितमेच रमुत्तमणिमतलिलका मरीचिमालया शातक्रतवकासुर्केणेव किर्मीरितवक्ष- कान्तिम्, उज्ज्वलरसासारं सम्पादयितुमिवाभिनव नवग्रहाध्यासितां, कनककृतकेयूरकटककङ्गणकलाप किङ्गिणिकाहुलाङ्गोटिहंतकपरिस्थृतकलेवरां, प्राल- म्बिकोरससुत्रिकाहारलतानतां, परिस्थितमानचम्पक- प्रालम्बाम्, आपादितपरिणयप्रणयिरूपां, समुचिता- धिक शुक्लशुल्कक्रीतां, भ्रातृमर्तीं, कन्यकां, सत्कृत्य वरायानुरूपाय प्रदाय कूकूदेतिपदवीमवापत् ।

सारस्वतरसः सरस्वतीकुण्डजलं, वाणीरसश्च । हरिः कृष्णः सूर्यश्च, पादः पदं किरणश्च । अचलेतिभड्डेन पृथ्वीपर्वतयोर्वैवकम् । धर्मः सुकृतं युधिष्ठिरश्च ! नकुलः पश्चौपाण्डवेच विशेषः । वीरनागः वलवानसर्पः वीरवरश्च । तारकेति, रामेतिमनोर्नशत्रूस्यच शोषकम् । गाढ्गेयशृङ्गं प्रकृष्टकनकम्, शृङ्गीकनकम् पण्डतसुवर्णम् । सज्जना कलेना, सोदुश्च सज्जनः । घशाकरिणी कामिनीच । पद्मकाननं विन्दुजाळकयुक्तमुखं क- मङ्गवनंच । अवग्रहो वृष्टिप्रतिवन्धोऽङ्गार्दं च । अदूष्यं कक्ष्यारहितमनिन्दितं च । वरश्चाकक्ष्या । इटिवं राजितम् । शृणिरङ्गकृशः । आसनं स्कन्ध- देशः । वदान्यावाग्मिनी दानशौण्डा चारुवादिनी च । वेणीकेशवन्धः प्रबाहश्च । चन्द्रोभूषाविशेषइन्दुश्च । नक्षत्रमाङ्गा शरभेदः तारापरम्परा । पत्रलेखातिलकविशेषः पत्रलिपिश्च । यक्षकर्दमेति, कुञ्जकुमारगृ-

ॐ श्रीलक्ष्मीश्वरीचरितम् ॐ (२२५)

इस्तुरी कर्पुरं चन्दनं तथा । महासुगन्धमित्युक्तं नामतोयक्षकर्दपदिति घन्त-  
न्तरिः । दर्तिकागात्रानुलेपनीउत्तरादनसुदृत्वनम् , अन्तरीयपर्षोऽशुक्लम् ।  
स्पासदः चाच्चिक्यम् । कङ्गतंकेशमार्जनी । तमातपकासं तिलकविशेषः ।  
जलीकोमाहदेशः । उज्ज्वलरसोदिमलजलं शृङ्गारश्च, नवगूहोभूषाविशेषः  
नवमितोग्रहश्च अभिनवत्वं तत्र प्रसिद्धनवशृणिपरीतफलकत्वाद्विशेषण-  
म् । तृदाकोटिर्नूपुरः । प्रालभिक्षा स्वर्णैः उरस्सूत्रिना मौक्तिकैः कृता  
माला । प्राक्तम्बं कण्ठाद्युलभिमाल्यम् । शुक्लशुक्लम् न्यायोपात्तमूल्यम् ।

दरभङ्गेत्यभिधानं दधानेपुटभेदने शर्वरीशमरीचिरचि-  
जालं चतुश्शालं प्रासादमयं सामवेदकोविदायद्विड-  
जनपदायविप्रायप्रायच्छत् । अनुगृह्णाच्च  
वाराणस्यां विश्वविद्याप्रदनसम्पादनाय सहृद्भुवितसुर-  
तस्तस्तरुण रुग्यास्वर्णसहस्राणां वितरणेन पूर्णमेव  
जगतीमूर्नैदाघप्रौढतमतपनातपसन्तानसन्तापितान्  
सन्तोपयति पीयूषसातिशायिना शुचिश्येतशिशिरेण  
पानीयशालिकासु कीलालेन किङ्करैः । विपुलोपलो-  
पकृतसोपानादलीशोभिगभीरसुरभिक्षीरनीरसतीर-  
दीर्घिकाणां तेषुस्थलेषुखाननेन व्यपानयदपामनवा-  
पादापादितां तृष्णं जनिजुषाम् सत्वरं संस्कारयतिस्मया-  
स्साङ्गनिगमसागर्पार्गैरुष्टीयमानाभिश्वरणचतुष्ट-  
येन घटिताभिरिषिभिः । प्रावृषेण्यपूलिनिनीपरमोच-  
यचाचल्यमानप्रविसारिपयः (वारि) प्रवाहैः, प्रलय-

पयोदपदलयः पूर्णिव. प्रत्याययद्विः पायसामेव  
 स्तपिद्व्यरूपतां, स्मृतिपदोपनीतपस्त्यपादपूरुत्वे  
 प्रयाणकर्माकृतेषुस्यलेषु गविमपिद्वदनया, यज्ञतानपि  
 प्रांशुभावेन परिहसन्तीश्चेतुसंहती सप्तहस्रेणापिस्रोतः  
 स्वतीनामभिदेलिमाअवन्धयत् । प्रत्यतिष्ठिपदन्त्य-  
 निष्ठनिष्टया निज धिष्ठानोपकण्ठं सौष्ठवपुषावपुषा-  
 मनोहरे मन्दिरे मिलितविस्मयानामपि मर्मसुरचनक-  
 र्मणां विश्वकर्मसधर्मतासुपगतै धर्मिकैश्चारुचरितैः  
 कारुभिर्यथा शर्मनिर्मायं निर्मापितेऽधिकृद्विम् श्वेतम-  
 सृष्टैः, परत्रच मानसनिकंतनानन्तिक माकाश्यद्विः,  
 दम्भोलिदम्भं स्तम्भयद्विः प्रशस्ततरैः स विस्तरैः  
 प्रस्तरशकलैः कलधौतकलसिकाविलसितोदवयवे,  
 रमणीयबुमणिमैत्रीसुदमंशुकैतवेन वेदयाने, मन्द-  
 स्पन्दमानमारुतान्दोलिताना, मन्यदीयमञ्जुलता  
 विजयमनुमापयन्तीनामिव, सौवर्णकिङ्किणीगणज्ञ-  
 णत्कार मधुरमृदुनिनादमोदित श्रुतिसन्तनीनाम्,  
 अरुणिमरागरञ्जितनवीनचीनचैलवैजयन्तीना म-  
 न्विते शतेन, कालायुद्युग्युलसरलप्रभृतिवहलसौरभ-  
 दव्यदहनधृमसुरभिते, हरेणापि हदयगृहीताद्युग्रि-  
 सरोहाँ, प्रावृष्टमिव ॥ ५ ॥ १ ॥

प्रत्यक्षरिणोत्तमिदं पितृनिलयवामप्रियाम् उदीक्षा  
दित्यमिदं सद्ग्रहोदयां विभान्तदेलमिदं पादपगग-  
सांमिद्यानस्त्वां, एरिदंशुक्षामपि विगलितावाणा-  
इ, एषांश्चयांमपि गदनाशिर्णी, भोग्यलभ्यामपि  
शोगिभृषिता, इस्तार्थच्छुष्टी विनातीतुमिव शय-  
च्छुष्टी श्रयन्ती, गलद्विषिभारानिलम्बमानसुण्ड-  
मालवागलदर्तां, दिव्यरात्मानिधानपूर्णमानसोहित-  
लांचनां, सुक्तमेव चामरोऽशाति चारुचिक्षाचयाच्चि-  
न्द्रणां, विश्वविरचनसुज्ञुना निरेणानन्पचेतसा  
विभित्तचनाल्लुदित्ततां, चेतनाचेतनाक्षणचणेनाऽपि  
पुरुषच्चिन्द्रियक्रियाशितेनाव्युतेनापि चिन्तयामो-  
र्हीरुतां, शुचिन्तेरुनितरचिनिचितैराजकीयोश्चार-  
निचयेरनिधामचितां, चश्चद्व्यर्गीरुपञ्चयोचिष्ठैर्ती  
इयाम् ।

—पितृस्य एविष्यादिष्यम् । एवंस्वरोमनष्ठ । पयोषस्तनोपनष्ठ ।  
सहनाशिरा दाढ्चीक । रक्तः शोणिहपतुरक्षय । पितृनिलयः स्पदानं  
गात्मगृहं । एषोनिधित औत्तानपादिष्य ददयोदृद्धिः प्रकाशम् । पादेति  
पदः अन्यथपादपेति, दृपनाति देवपुष्पयोर्वेष्वरम् । एरित्वर्णविशेष  
आदाच । आधरणं वसनमहानं च । भवदिशबसंसारम् । भोगीभोगवान्  
पर्ष्य । शयोरुक्तः दासामधम् । मुक्तः गलितवन्धनः कैवल्यवाँश

१. गोलापदस्यापाददिष्यमर्थेष्वरा भिति वा पाठः ।

चुच्चुनार्घ्यातेन ॥

यदीयप्रात्यहिकचन्द्रेतरारातिंककालिकोऽवधीरितवारिधिरघनध्वनिगतस्त्रितस्वान्तरस्सन्ताङ्गमानभेरी-  
मृदग्गाद्यनेकवाद्यनिनदस्समाक्रामतितमांदिक्रकवक्रवालम् । यामनुसमाअपचिन्वत्यमायां मनीषिशेषुषी-  
सीमानमतिपतितैः, भुजगपतिगिरामप्यगोचरैः, पुरु-  
हूतलोचनैरपि परिच्छेत्तुमश्कैः प्रकारैरधिज्ञाहुल्वहुल-  
दलम् । सत्कुरुतेचयत्र निकुरम्बं कुदुध्वकानां कदम्ब-  
कं च कोविदाना मम्बवसुविहापनैः । ययान्वर्थनाम-  
धेयं प्रसाध्यते निजसन्निधानमूर्त्यमिनोरमेण मन्दिरेण  
प्रावृद्ध विटपिटलमिवाविपङ्क्षवं, रोहिणीचरणसरसी-  
रुहमिवलाङ्गलिप्रगतं, सुरजादिवन्धविशेषलेखमिव  
असङ्कीर्णवणकीर्ण, विलासिनीवपुरिव विभ्रमोद्दी-  
पितं, चम्पककुसुममिव मधुपगतिवियोगितं, द्वारका-  
पुरमिव उज्ज्वान्युतं, सुरनगरमिव सर्वतश्श्रयमाण-  
गैर्वाणवाणीकमैरावतविलसितंच, आम्नायमिवसत्प-  
दक्रमं, गगनभागैरिव विक्रमान्वितैः, सत्त्वाव्यैरिव  
सरससरस्वतीप्रवणीकृतरसिकमानसैः, इक्षुकाण्डैरिव-  
च्छेदक्षोभक्षीणैरपि सुरसमेवसन्ददानैः, दण्डैरिव भ्र-  
मणेनापि परकीयकार्यकारकैः, पाटीरत्नण्डैस्वि स्व-

ॐ श्रीलक्ष्मीश्वरीचरितसू ॐ (२३३)

आत्मादितकादम्बरीप्रभृतिजातशतेन ।  
 अपिकृतरेषा नवतया हृश्याकविजातेन ॥ ३ ॥  
 रसराहिंतमिस्तेन मिते (१८३९)विक्रमवत्सरे ।  
 श्रीवालकृष्णमिश्रेण काव्यमेतत्समापितम् ॥ ४ ॥  
 इति राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयाध्यापकमैथिल  
 श्रोत्रिय श्रीवालकृष्णनिश्ररचिते लक्ष्मीश्वरीचरिते  
 ॥ ५ ॥ षष्ठोच्छ्वासः समाप्तः ॥ ५ ॥

उपयमन कुशो देणीरुपः कर्मकाण्डे प्रसिद्धः । श्रमीकिंगुकृष्टः, एनांसि  
 पापानि 'कल्पोलपः कल्पक्ता, क्षोकोयशः । स्पंष्टनम्, शंतवं विस्तृतं  
 कल्पाणम् ॥ ० ॥ न्यायस्तर्कशास्त्रम् । आचितंव्याप्तम् । सम्भाव्यम् । आ-  
 दरणीयम् अनवधानताया इति कारके हेतौ पञ्चमी । कादम्बर्यो ग्राचीन-  
 त्वंतु प्रसिद्ध मेषेतिनतद्गुपादानेदोषः । समाप्तोक्त्यलङ्घारः ॥ ८ः रामः  
 तस्यत्रित्वसद्भव्याषोषकत्वम् । इनः पतिरिति शिवम् ॥ \* ॥

इति राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयाध्यापकमैथिल-धोत्रिय-  
 थी वालकृष्णमिश्रनिर्मिता निजनिर्मिते लक्ष्मीश्वरी  
 चरिते षष्ठोच्छ्वासटिष्ठणी समाप्ता ॥ \* ॥

६ रसराहिंतमाट, महारामाहिंतमाट, शते वा पाठः ॥

धरीकृतवधूजनाधरसुधामधुरतानां व्योहतीनां योग्ये-  
 ससुन्मेषाद् प्रयासेनैतया कृतार्थीकृताः कदयतां  
 कलापाः । इयामापदप्योजपूजंनाय चिगयास्मिन्नेव  
 पुरेनयन्तीसमयमियमियाय पुण्यश्लोकतया ज्ञनतया  
 स्वेष्टदेवतेव स्मरणीयतासुषसि । स्वस्वसमीहितं स्व-  
 माप्नुवन्तोऽति सन्तोषेणसन्तो विहितसेवाद्देवादेत-  
 दीयाभ्युदयं याचमानाससकलकक्षुभः कान्ताश्च आक  
 लिताङ्गावरणैतदीयकीर्तिस्तिव्याः (कण्ठिङ्गुतीकृत-  
 राजतताटङ्गकीर्तयः) मुकृतसन्ततीस्सन्ततं विदधनी-  
 सतीशंततं सन्ततमनुभवन्ती पालयन्तीच निजान्व-  
 वायोचितकरणीयमारजनीशतरणी राजतां धरणीतल  
 इत्याशिषां गशिभिरिमामभितोषर्ज्यन्तीतिशम् ॥१॥  
 न्यायानुचिन्तनचयाचितचेतसो मे  
 सम्भाव्यकाव्यकरणाभ्यसने श्रमस्य ।  
 प्राथम्यमेतदधिगम्य विलोकयानः  
 सन्तोषमेष्यति मनीषिजनो विशेषम् ॥२॥  
 स्थूलान्यपि स्वरचिते रचकस्यनैव  
 प्रायेणद्वक्षयिकता सुपयन्ति यानि ।  
 मानुष्यजन्मसुलभानवधानतायाः  
 संशोधयन्तु सुधिपैः सखलितानि तानि ॥३॥

आस्वादितकादम्बरीप्रभृतिजातशतेन ।

अपिकृतरेषा नवतया हृश्याकविजातेन ॥ ३ ॥

रसराहिंतमिस्तेन मिते (१८३९) विक्रमवत्सरे ।

श्रीवालकृष्णमिश्रेण काव्यमेतत्समापितम् ॥ ४ ॥

इति राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयाध्यापकमैथिल

श्रोत्रिय श्रीवालकृष्णनिश्रांचिते लक्ष्मीश्वरीचरिते

॥ ॥ पष्ठोच्छ्वासः समाप्तः ॥ ॥

उपयमन कुशो देणीरुपः कर्मकाण्डे प्रसिद्धः । शमीक्षिगुरुद्वक्षः, एनांसि  
पापानि 'कल्पोलपः कल्पलता, क्षेत्रोकोषशः । स्वघनम्, शंतवं विस्तृतं  
कल्पाणम् ॥ ० ॥ न्यायस्तर्कशास्त्रम् । आचितंव्याप्तम् । सम्भाच्यम् । आ-  
दरणीयम् अनवधानताया इति कारके हेतौ पञ्चमी । कादम्बर्या शाचीन-  
त्वंतु प्रसिद्ध मेषेतिनतदनुपादानेदोपः । समाप्तोक्त्यलङ्घारः ॥ रः रामः  
तस्यत्रित्वसद्व्यापोषकत्वम् । इनः पतिरिति शिवम् ॥ \* ॥

इति राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयाध्यापकमैथिल-श्रोत्रिय-  
श्रीवालकृष्णमिश्रनिर्मिता निजनिर्मिते लक्ष्मीश्वरी  
चरिते पष्ठोच्छ्वासटिष्ठणी समाप्ता ॥ \* ॥

धरीकृतवधूजनाधसुधामधुरतानां व्याहतीनां योग्ये-  
 समुन्मेषाद प्रयासेनैतया कृतार्थकृताः कदयतां  
 कलापाः । श्यामापदपयोजपूजंनाय चिरायास्मिन्नेव  
 पुरेनयन्तीसमयमियमियाय पुण्यश्लोकतया ज्रनतया  
 स्वेष्टदेवतेव स्मरणीयतासुषसि । स्वस्वसमीहितं स्व-  
 माणुवन्तोऽति सन्तोषेणसन्तो विहितसेवाददेवादेत-  
 दीयाभ्युदयं याचमानास्मकलककुभः कान्ताश्च आक  
 लिताङ्गावरणैतदीयकीर्तिस्तित्रयाः (कण्ठलङ्घन्तीकृत-  
 राजतताटङ्ककीर्तयः) मुकुतसन्ततीसन्ततं विदधनी-  
 सतीशंततं बन्ततमनुभवन्ती पालयन्तीच निजान्व-  
 वायोचितकरणीयमारजनीशतरणी राजतां धरणीतल  
 इत्याशिषां गशिभिरिमामभितोष्ठ्र्यन्तीतिशम् ॥३॥  
 न्यायानुचिन्तनचयाचितचेतसो मे  
 सम्भाव्यकाव्यकरणाभ्यसुनं अमस्य ।

प्राथम्यमेतदधिगम्य विलोकयानः  
 सन्तोषमेष्यति भनीपिजनो विशेषम् ॥ १ ॥  
 सथूलान्यपि स्वरचिते रचकस्यनैव  
 प्रायेणहृक्यथिकता सुपयन्ति यानि ।  
 मानुष्यजन्मसुलभानवधानतायाः  
 संशोधयन्तु सुधिष्ठेः स्वलितानि तानि ॥ २ ॥

ॐ श्रीलक्ष्मीश्वरीनवित्ति ॥ (२३३)

आस्वादितकादम्बरीप्रभृतिजातशतिन ।  
 अपिकृतरेषा नवतया दृश्याकविजातिन ॥ ३ ॥  
 सर्वाहितमिक्षेन मिते (१८८९) विक्रमवत्सरे ।  
 श्रीवाल्लुष्णमिथ्रेण काव्यसत्त्वमापितम् ॥ ४ ॥  
 इति राजकीयसंस्कृतमाविद्यालयाप्यापद्यांश्चित्त  
 श्रोत्रिय श्रीवाल्लुष्णनिश्चरचिते लक्ष्मीश्वरीनवित्ते  
 ॥ ५ ॥ पठोन्तवासः नयात् ॥ ५ ॥

उपयामन इतां देवीरपः क्षमेकाण्डे गायत्रैः । शार्णांश्चित्तुरामाः, एतांनि  
 पापानि 'कर्त्त्वोत्तमः कवचक्षा, श्रोत्रोपयषः । इदंष्टव्य, ईति' विक्रम  
 दृश्यालयम् ॥ ० ॥ एषापरम्भशास्त्रम् । शादितंष्टव्यात्मम् । सर्वमाप्यम् । शा-  
 दितंष्टव्य अनवध्यानतामा इति कारके रेतो पञ्चमा । द्वादशंष्टव्य शार्णान-  
 वंतु पञ्चम, चैर्द्वितीयद्वुपादानेदोषः । सप्तासोपत्त्ववद्वारा ॥ ११ः शामा  
 उत्त्वविद्याद्वद्यामोपदत्त्वैः । इति पठिरिति वित्तव्य ॥ ५ ॥

इति पठकीणं एतामाविद्यालयाप्यवैष्णव-श्रोत्रिय-  
 स्त्री दृश्याल्लुष्णनिश्चरा निजनिष्ठिते लक्ष्मीश्वरी  
 नवित्ते पठोन्तवासावित्तणा । नयात् ॥ ५ ॥



